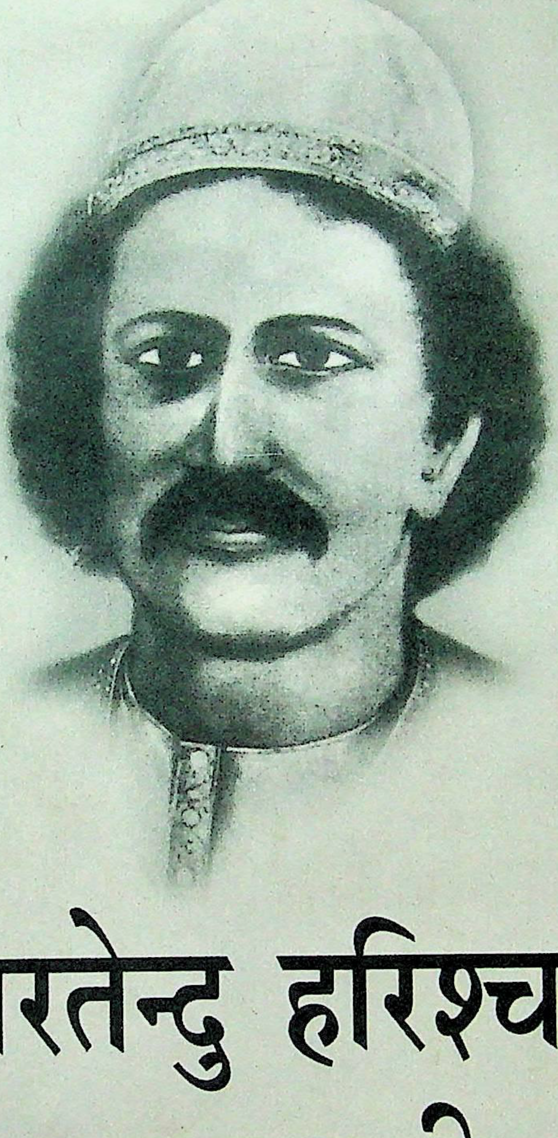

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली

सम्पादक

ओमप्रकाश सिंह

6

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल के प्रवर्तक के रूप में समादृत हैं। इनका जन्म इतिहास विख्यात सेठ अमीचन्द के घराने में हुआ था। भारत में अंगरेजों का साथ देने, पर लूट का माल न पाने के कारण अमीचन्द पागल होकर मरे थे। अमीचन्द के बेटे फतेहचन्द कलकत्ता से आकर काशी में बसे। इनके बेटे हर्षचन्द और हर्षचन्द के बेटे गोपालचन्द हुए। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इन्हीं गोपालचन्द के बेटे थे।

इस अंगरेज भक्त परिवार में भारतेन्दु 'विष बेलि अमी फल लागि रही' की तरह थे। उन्होंने अपना पूरा जीवन साहित्य की श्रीवृद्धि में झोंक दिया। आधुनिक साहित्य की समृद्धि में अद्वितीय योगदान के कारण ही इन्हें 'आधुनिक हिन्दी का जनक' कहा जाता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एक तरफ तो अपने नाटकों, निबन्धों, लेखों, कविताओं, यात्रावृत्तान्तों, जीवनियों तथा इतिहास और पुरातत्त्व पर लिखी पुस्तक-पुस्तिकाओं के लिए प्रसिद्ध हैं तो दूसरी तरफ प्रारम्भिक हिन्दी पत्रकारिता के विकास में महत्त्वपूर्ण योग देने वाले पत्रकार-सम्पादक के रूप में स्मरणीय हैं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की सर्जनात्मक प्रतिभा से ही हिन्दी भाषा, साहित्य और पत्रकारिता को नयी प्रेरणा तथा उचित दिशा-बोध प्राप्त हुआ।

भारतेन्दु साहित्य का अधिकांश भाग अब तक संकलित संगृहीत हो चुका है। यह जरूर है कि ये संकलन अब बाजार में मौजूद नहीं है। ब्रजरत्न दास द्वारा सम्पादित भारतेन्दु ग्रन्थावली अब आसानी से नहीं मिलती। पूरी ग्रन्थावली की योजना बनाकर शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' केवल पहला खंड ही सम्पादित कर सके थे। हेमन्त शर्मा द्वारा सम्पादित 'भारतेन्दु समग्र' बाजार में उपलब्ध है। भारतेन्दु की अनेक रचनाएं, टिप्पणियां, भूमिकाएं, पत्रों आदि का सम्पादन न होने के कारण अब यह सामग्री दुर्लभ हो गयी है। भारतेन्दु की पत्रिकाएं पुस्तकालयों में उपलब्ध नहीं हैं। अब स्थिति यह हो गयी है कि भारतेन्दु की अनेक रचनाएं प्राप्त होने वाली नहीं हैं। भारतेन्दु की सभी रचनाएं इस ग्रन्थावली में हैं, यह मेरा दावा नहीं है। हां, यह दावा जरूर है कि अब दो-एक रचनाएं और कुछ सम्पादकीय टिप्पणियां ही इस ग्रन्थावली से बाहर हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की यह ग्रन्थावली छह खंडों में तैयार की गयी है। इसमें तमाम ऐसी रचनाएं और टिप्पणियां हैं, जो अब तक कहीं भी संकलित नहीं थीं। ग्रन्थावली में भारतेन्दु साहित्य को इस क्रम से रखा गया है कि अनेक आरोपों-प्रत्यारोपों का स्वतः जवाब मिल जाएगा।

143765

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली-6

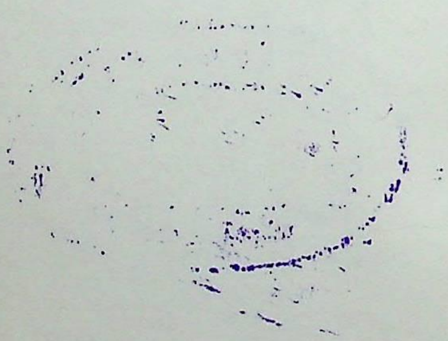

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली-6

[सृजन के विविध आयाम]

सम्पादक

ओमप्रकाश सिंह

143765

प्रकाशन संस्थान

नयी दिल्ली-110002

प्रकाशक
प्रकाशन संस्थान
4715/21, दयानन्द मार्ग, दरियागंज
नयी दिल्ली-110 002

R
082
सिंह-भ

मूल्य : 4800.00 रुपये (छह खंड)
प्रथम संस्करण : सन् 2008
ISBN 81-7714-312-3
आवरण : जगमोहन सिंह रावत

शब्द-संयोजन : कम्प्यूटेक सिस्टम, दिल्ली-110032
मुद्रक : बी. के. ऑफसेट, दिल्ली-110032

इस खंड में

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली का यह छठां और अन्तिम खंड है। इस खंड को 'सृजन के विविध आयाम' नाम दिया गया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जितने बड़े साहित्यकार थे, उतने ही बड़े पत्रकार भी थे। तमाम सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक संस्थाओं से उनका रब्त-जब्त था। तत्कालीन समाज के अनेक पक्षों पर उन्होंने विस्तार से लिखा था। जहां जरूरत महसूस हुई थी, वे व्यंग्य बाण चलाने से भी न चूके थे। आज जब हम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के योगदान पर विचार करते हैं तो अक्सर उनके साहित्यिक योगदान तक ही सीमित रह जाते हैं। भारतेन्दु की पत्रकारिता के स्वरूप, उनके शिक्षाशास्त्री योगदान, समाज निर्माण की उनकी आकांक्षा आदि प्रश्नों पर हम इसलिए बात नहीं कर पाते कि इनका लिखित रूप (भारतेन्दु द्वारा लिखा हुआ) हमारे सामने मौजूद नहीं है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का साहित्य तो उपलब्ध है पर उनकी पत्र-पत्रिकाएं अब दुर्लभ हो गई हैं। कविवचन सुधा, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, बालाबोधिनी आदि की मुकम्मल फाइल अब मौजूद नहीं हैं। नागरीप्रचारिणी सभा काशी, नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता, नेहरू मेमोरियल संग्रहालय और लाइब्रेरी, नई दिल्ली, भारतेन्दु भवन, वाराणसी आदि ऐसी जगहें थीं जहां से भारतेन्दु के प्रयासों के लिखित स्वरूप के प्राप्ति की गुंजाइश थी पर नेहरू मेमोरियल और भारत कलाभवन, काशी विश्वविद्यालय, वाराणसी को छोड़कर अन्य जगहों से निराशा ही हाथ लगी। यहां भी पत्र-पत्रिकाओं के कुछ अंक ही उपलब्ध हैं। जाहिर है कि भारतेन्दु ग्रन्थावली के लिए जितनी अधिक सामग्री की मैंने उम्मीद की थी, वह उम्मीद तो पूरी न हुई; हां यह सन्तोष अवश्य हुआ कि तेजी से विलुप्त हो रही सामग्री का उपलब्ध अंश मैंने सुरक्षित कर लिया। आप देखेंगे कि ऐसी तमाम दुर्लभ सामग्री इस खंड में दी गई हैं। 'टिप्पणियां, विज्ञापन और खबरें' शीर्षक से दी गई सामग्री को इसी रूप में देखें।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अंगरेजी में कुछ लेख लिखे हैं, इसे भारतेन्दु के पाठक जानते हैं पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अंगरेजी में कविता की है, इसकी जानकारी कम लोगों को ही होगी। इस खंड में भारतेन्दु की ऐसी ही एक कविता दी गई है। अंगरेजी

और हिन्दी शब्दों के प्रयोग से भारतेन्दु ने कविता के भावों के कम्यूनिकेशन में तो वृद्धि की ही है, उससे भी महत्त्वपूर्ण है उसमें आया हुआ जीवन के प्रति उनका फलसफा। यह कविता उनके बारे में बहुत कुछ कह जाती है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र खुद अपने जीवन को कैसे देखते थे इसका थोड़ा-सा रूप हमें 'एक कहानी कुछ आपबीती कुछ जगबीती' में मिलता है तो उससे कुछ अधिक ही इस कविता में।

इसी तरह से भारतेन्दु के जीवन से सम्बन्धित कुछ दुर्लभ सामग्री का संकलन भी इस भाग में किया गया है। हां, पत्रों के संकलन-क्रम में हमें एक बात कहनी है—यहां केवल वे ही पत्र दिए गए हैं जिन्हें भारतेन्दु ने लिखा था। दूसरों द्वारा भारतेन्दु को लिखे गए अनेक पत्र उपलब्ध हैं पर उन्हें ग्रन्थावली में शामिल नहीं किया गया है। दो पत्र ऐसे हैं जो इस कथन के अपवाद हैं। मल्लिका और राधालाल के पत्रों को जानबूझकर शामिल किया गया है। ये पत्र भारतेन्दु के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने के साथ-साथ जमाने की नब्ज पर भी संकेत करते हैं।

॥इति॥

—ओमप्रकाश सिंह

अनुक्रम

यात्रा वृत्तान्त

हरिद्वार-1 3
हरिद्वार-2 5
लखनऊ 7
जब्बलपुर 9
सरयू पार की यात्रा 12
वैद्यनाथ की यात्रा 18
जनकपुर की यात्रा 24

आख्यान

एक कहानी कुछ आपबीती कुछ जगबीती 29
मदालसा 33

भाषा सम्बन्धी लेख

हिन्दी कविता 41
हिन्दी भाषा 44
लेखक और नागरी लेखक 50

राजनीतिक महत्त्व के लेख

बलिया में भारतेन्दुजी 63
ऐड्रेस 65
भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है 66
पश्चिमोत्तर देश और पंजाब 73
पश्चिमोत्तर देश की कमेटियां 75
पब्लिक ओपिनियन 78

सामाजिक-सांस्कृतिक महत्त्व के लेख

स्त्री-1 87
स्त्री-2 89
मित्रता 91
भ्रूणहत्या 93
जातीय संगीत 102
खुशी 105
संगीत सार 117
ग्रीष्मऋतु 127
सूर्य्योदय 133

व्यंग्यप्रधान रचनाएं

लेवी प्राण लेवी 137
गुरु और महन्त 139
ईश्वर बड़ा विलक्षण है 141

स्तोत्र पंचरत्न

भूमिका 145
स्तोत्र पंचरत्न 147
स्त्री सेवा पद्धति 150
अथ मदिरास्तवराज 152
कङ्कर स्तोत्र 155
अंगरेज स्तोत्र 157
ईश्वर बड़ा विलक्षण है 161
स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन 163
क़ानून ताज़ीरात शौहर 168
भ्रमराष्टकम् 176
मुशायरा 179

परिहासिनी

परिहासिनी 187

भूमिकाएं

निवेदन 199
गुरसारणी की भूमिका 201
गोमहिमा के अन्त में भारतेन्दु की अपील 203
रणधीर प्रेममोहिनी 205

पत्र साहित्य

भारतेन्दु के पत्र राधाकृष्णदास के नाम 209
भारतेन्दु का पत्र अनुज गोकुलचन्द्र के नाम 210
भारतेन्दु का पत्र भतीजे कृष्णचन्द्र के नाम 211
भारतेन्दु का पत्र पं. सन्तोष सिंह के नाम 212
भारतेन्दु के पत्र बाबू रामदीन सिंह के नाम 213
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पत्र बाबू साहबप्रसाद सिंह के नाम 222
भारतेन्दु के पत्र बद्रीनारायण उपाध्याय 'प्रेमघन' के नाम 226
भारतेन्दु के पत्र राधाचरण गोस्वामी के नाम 228
भारतेन्दु का पत्र पं. चिन्तामणि शर्मा के नाम 236
भारतेन्दु के पत्र 'भारत मित्र' सम्पादक के नाम 238
भारतेन्दु का पत्र कलकत्ता के मित्र के नाम 239
भारतेन्दु का पत्र फ्रेडरिक के. हेनफोर्ट के नाम 240
हरिद्वार के पंडे के बारे में पत्र 242
मल्लिका का पत्र भारतेन्दु के नाम 243

टिप्पणियां, विज्ञापन और खबरें

टिप्पणियां 253
विज्ञापन 285
खबरें 333

चित्रावली 349

English Writing

Public Opinion in India 361
Failure of Munshi Peary Lall's Scheme of Reduction 364
Hindee Bhasa 366
Scope For The Educated Indians 369
Itihastimir Nasik Part III

A History of India in Hindee by Baboo Siva Prasad, C.S.I. 372
हंटर शिक्षा आयोग (1882 ई.) के समक्ष दिया गया
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का लिखित वक्तव्य 376
Self-introduction 422

विविध

भगवद्भक्तितोषिणी 427
कविवचन सुधा के मुखपृष्ठ पर प्रकाशित होने वाली पंक्तियां 431
बालाबोधिनी के मुखपृष्ठ पर प्रकाशित होने वाली पंक्तियां 432
हरिश्चन्द्रचन्द्रिका के मुखपृष्ठ पर प्रकाशित होने वाली पंक्तियां 433
न्यौछावर 434
चन्द्रग्रहण के अवसर पर सूतक के विषय में भारतेन्दु के विचार 435
ऋण का चस्का 436
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की लालसा 437
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की लिखी अन्तिम कविता 440
भारतेन्दु का अस्त 441
चन्द्रास्त 442
अनर्थ! अनर्थ!! अनर्थ!!! 443
रक्ताश्रु 445
'नागरी' के नाह 447
गोदड़ी में लाल 448
क़सीदा 450
आमन्त्रण पत्र 453
बाबू रामदीन सिंह को दिया गया अधिकार पत्र 454
'भारतेन्दु' की पदवी 456
संक्षिप्त जीविनी 457
A short account of Babu Harischandra 463

भारतेन्दु की जन्मकुंडली

जन्मकुंडली 471
वंश वृक्ष 483

यात्रा वृत्तान्त

हरिद्वार-1

श्रीमान् क. व. सु. सम्पादक महोदयेषु!

श्री हरिद्वार को रुड़की के मार्ग से जाना होता है। रुड़की शहर अंगरेजों का बसाया हुआ है। इस में दो तीन वस्तु देखने योग्य हैं एक तो (कारीगरी) शिल्प विद्या का बड़ा कारखाना है जिस में जल चक्की, पवन चक्की और भी कई बड़े बड़े चक्र अनवर्त खचक्र में सूर्य्य, चन्द्र, पृथ्वी, मंगल आदि ग्रहों की भांति फिरा करते हैं और बड़ी बड़ी धरन ऐसी सहज में चिर जाती हैं कि देख कर आश्चर्य होता है। बड़े बड़े लोहे के खम्भे एक क्षण में ढल जाते हैं और सैकड़ों मन आटा घड़ी भर में पिस जाता है। जो बात है आश्चर्य की है। इस कारखाने के सिवा यहां सब से आश्चर्य श्री गंगाजी की नहर है, पुल के ऊपर से तो नहर बहती है और नीचे से नदी बहती है। यह एक बड़े आश्चर्य का स्थान है। इस के देखने से शिल्प विद्या का बल और अंगरेजों का चातुर्य्य और द्रव्य का व्यय प्रगट होता है। न जानैं वह पुल कितना दृढ़ बना है कि उस पर से अनवर्त कई लाख मन वरन करोड़ मन जल बहा करता है और वह तनिक नहीं हिलता। स्थल में जल कर रक्खा है और स्थानों में पुल के नीचे से नाव चलती है यहां पुल के ऊपर नाव चलती है और उस के दोनों ओर गाड़ी जाने का मार्ग है और उस के परले सिरे पर चूने के सिंह बहुत ही बड़े बड़े बने हैं। हरिद्वार का एक मार्ग इसी नहर की पटरी पर से है और मैं इसी मार्ग से गया था।

विदित हो कि यह श्री गंगाजी की नहर हरिद्वार से आई है और इस के लाने में यह चातुर्य्य किया है कि इस के जल का वेग रोकने के हेतु इस को सीढ़ी की भांति लाए हैं। कोस कोस डेढ़ डेढ़ कोस पर बड़े बड़े पुल बनाए हैं वही मानो सीढ़ियां हैं और प्रत्येक पुल के ताखों से जल को नीचे उतारा है। जहां जहां जल को नीचे उतारा है वहां वहां बड़े बड़े सीकड़ों में कसे हुए दृढ़ तखते पुल के ताखों के मुंह पर लगा दिए हैं और उन के खींचने के हेतु ऊपर चक्कर रक्खे हैं। उन तखतों से ठोकर खा कर पानी नीचे गिरता है वह शोभा देखने योग्य है। एक तो उसका महान शब्द दूसरे उस में से फुहारे की भांति जल का उबलना और छींटों का उड़ना

मन को बहुत लुभाता है और जब कभी जल विशेष लेना होता है तो तखतों को उठा लेते हैं फिर तो इस वेग से जल गिरता है जिस का वर्णन नहीं हो सकता और ये मल्लाह दुष्ट वहां भी आश्चर्य करते हैं कि उस जल पर से नाव को उतारते हैं या चढ़ाते हैं। जो नाव उतरती है तो यह ज्ञात होता है कि नाव पाताल को गई पर वे बड़ी सावधानी से उसे बचा लेते हैं और क्षण मात्र में बहुत दूर निकल जाती है पर चढ़ाने में बड़ा परिश्रम होता है। यह नाव का उतरना चढ़ना भी एक कौतुक ही समझना चाहिए।

इस के आगे और भी आश्चर्य है कि दो स्थान नीचे तो नहर है और ऊपर से नदी बहती है। वर्षा के कारण वे नदियां क्षण में तो बड़े वेग से बढ़ती थीं और क्षण भर में सूख जाती हैं। और भी मार्ग में जो नदी मिली उन की यही दशा थी। उन के करारे गिरते थे तो बड़ा भयंकर शब्द होता था और वृक्षों को जड़ समेत उखाड़ के बहाए लाती थी। वेग ऐसा कि हाथी न संभल सके पर आश्चर्य यह कि जहां अभी डुबाव था वहां थोड़ी देर पीछे सूखी रेत पड़ी है और एक स्थान पर नदी और नहर को एक में मिला के निकाला है। यह भी देखने योग्य है। सीधी रेखा की चाल से नहर आई है और बेंड़ी रेखा की चाल से नदी गई है। जिस स्थान पर दोनों का संगम है वहां नहर के दोनों ओर पुल बने हैं और नदी जिधर गिरती है उधर कई द्वार बना कर उस में काठ के तखते लगाए हैं जिस से जितना पानी नदी में जाने देना चाहैं उतना नदी में और जितना नहर में छोड़ना चाहैं उतना नहर में छोड़ैं।

जहां से नहर श्री गंगाजी में से निकाली है वहां भी ऐसा ही प्रबन्ध है और गंगाजी नहर में पानी निकल जाने से दुबली और छिछली हो गई हैं परन्तु जहां नील धारा आ मिली है वहां फिर ज्यौं की त्यौं हो गई हैं।

हरिद्वार के मार्ग में अनेक प्रकार के वृक्ष और पक्षी देखने में आए। एक पीले रंग का छोटा पक्षी बहुत मनोहर देखा गया। बया एक छोटी चिड़िया है उस के घोंसले बहुत मिले। ये घोंसले सूखे बबूल और कांटे के वृक्ष में हैं और एक एक डाल में लड़ी की भांति बीस बीस तीस तीस लटकते हैं। इन पक्षियों की शिल्पविद्या तो प्रसिद्ध ही है लिखने का कुछ काम नहीं है इसी से इन का सब चातुर्य्य प्रगट है कि सब वृक्ष छोड़ के कांटे के वृक्ष में घर बनाया है। इस के आगे ज्वालापुर और कनखल और हरिद्वार है जिस का वृत्तान्त अगले नम्बरों में लिखूंगा।

पुरुषोत्तम शुक्ल 10

आप का मित्र

यात्री

[कविवचन सुधा, 30 अप्रैल, सन 1871 ई.]

हरिद्वार-2

श्रीमान् कविवचन सुधा सम्पादक महामहिम मित्रवरेषु!

मुझे हरिद्वार का शेष समाचार लिखने में बड़ा आनन्द होता है कि मैं उस पुण्य भूमि का वर्णन करता हूं जहां प्रवेश करने ही से मन शुद्ध हो जाता है। यह भूमि तीन ओर सुन्दर हरे हरे पर्वतों से घिरी है जिन पर्वतों पर अनेक प्रकार की वल्ली हरी भरी सज्जनों के शुभ मनोरथों की भांति फैल कर लहलहा रही है और बड़े बड़े वृक्ष भी ऐसे खड़े हैं मानो एक पैर से खड़े तपस्या करते हैं और साधुओं की भांति घाम, ओस और वर्षा अपने ऊपर सहते हैं। अहा! इन के जन्म भी धन्य हैं जिन से अर्थी विमुख जाते ही नहीं। फल, फूल, गन्ध, छाया, पत्ते, छाल, बीज, लकड़ी और जड़ यहां तक कि जले पर भी कोयले और राख से लोगों का मनोरथ पूर्ण करते हैं। सज्जन ऐसे कि पत्थर मारने से फल देते हैं। इन वृक्षों पर अनेक रंग के पक्षी चहचहाते हैं और नगर के दुष्ट बधिकों से निडर हो कर कल्लोल करते हैं। वर्षा के कारण सब ओर हरियाली ही दृष्टि पड़ती थी मानो हरे गलीचा की जात्रियों के विश्राम के हेतु बिछायत बिछी थी। एक ओर त्रिभुवन पावनी श्री गंगाजी की पवित्र धारा बहती है जो राजा भगीरथ के उज्ज्वल कीर्त्ति की लता सी दिखाई देती है। जल यहां का अत्यन्त शीतल है और मिष्ट भी वैसा ही है मानो चीनी के पने को बरफ में जमाया है, रंग जल का स्वच्छ और श्वेत है और अनेक प्रकार के जल जन्तु कल्लोल करते हुए। यहां श्री गंगाजी अपना नाम नदी सत्य करती हैं अर्थात जल के वेग का शब्द बहुत होता है और शीतल वायु नदी के उन पवित्र छोटे छोटे कनों को लेकर स्पर्श ही से पावन करता हुआ संचार करता है। यहां भी श्री गंगाजी दो धारा हो गई हैं एक का नाम नील धारा दूसरी श्री गंगाजी ही के नाम से, इन दोनों धारों के बीच में एक सुन्दर नीचा पर्वत है और नील धारा के तट पर एक छोटा सा सुन्दर चुटीला पर्वत है और उस के शिखर पर चंडिका देवी की मूर्ति है। यहां हरि की पैरी नामक एक पक्का घाट है और यहीं स्नान भी होता है। विशेष आश्चर्य्य का विषय यह है कि यहां केवल गंगाजी ही देवता हैं दूसरा देवता नहीं यों तो वैरागियों ने मठ मन्दिर कई बना लिए हैं। श्री गंगाजी का पाट भी बहुत

छोटा है पर वेग बड़ा है, तट पर राजाओं की धर्मशाला यात्रियों के उतरने के हेतु बनी हैं और दूकानें भी बनी हैं पर रात को बन्द रहती हैं। यह ऐसा निर्मल तीर्थ है कि काम, क्रोध की खानि जो मनुष्य हैं सो वहां रहते ही नहीं। पंडे, दूकानदार इत्यादि कनखल वा ज्वालापुर से आते हैं। पंडे भी यहां बड़े विलक्षण सन्तोषी हैं। ब्राह्मण होकर लोभ नहीं यह बात इन्हीं में देखने में आई। एक पैसे को लाख करके मान लेते हैं। इस क्षेत्र में पांच तीर्थ मुख्य हैं हरिद्वार, कुशावर्त्त, नीलधारा, विल्व पर्वत और कनखल। हरिद्वार तो हरि की पैड़ी पर नहाते हैं, कुशावर्त्त भी उसी के पास है, नीलधारा वही दूसरी धारा, विल्व पर्वत भी पास ही एक सुहाना पर्वत है जिस पर विल्वेश्वर महादेव की मूर्त्ति है और कनखल तीर्थ इधर ही है, यह कनखल तीर्थ बड़ा उत्तम है। किसी काल में दक्ष ने यहीं यज्ञ किया था और यहीं सती ने शिवजी का अपमान न सहकर अपना शरीर भस्म कर दिया, यहां कुछ छोटे छोटे घर भी बने हैं। और भारामल जैकृष्णदास खत्री यहां के प्रसिद्ध धनिक हैं। हरिद्वार में यह बखेड़ा कुछ नहीं है और शुद्ध निर्मल साधुओं के सेवन योग्य तीर्थ है। मेरा तो चित्त वहां जाते ही ऐसा प्रसन्न और निर्मल हुआ कि वर्णन के बाहर है। मैं दीवान कृपा राम के घर के ऊपर के बंगले पर टिका था। यह स्थान भी उस क्षेत्र में टिकने योग्य ही है चारों ओर से शीतल हवा आती थी। यहां रात्रि को ग्रहण हुआ और हम लोगों ने ग्रहण में बड़े आनन्द पूर्वक स्नान किया और दिन में श्री भागवत का पारायण भी किया। वैसे ही मेरे संग कल्लूजी मित्र भी परमानन्दी थे। निदान इस उत्तम क्षेत्र में जितना समय बीता बड़े आनन्द से बीता। एक दिन मैंने श्री गंगाजी के तट पर रसोई कर के पत्थर ही पर जल के अत्यन्त निकट परोस कर भोजन किया। जल के छलके पास ही ठंढे ठंढे आते थे। उस समय के पत्थर पर का भोजन का सुख सोने की थाल के भोजन से कहीं बढ़ के था। चित्त में बारम्बार ज्ञान, वैराग्य और भक्ति का उदय होता था। झगड़े लड़ाई का कहीं नाम भी नहीं सुनाता था। यहां और भी कई वस्तु अच्छी बनती हैं, जनेऊ यहां का अच्छा महीन और उज्ज्वल बनता है। यहां की कुशा सब से विलक्षण होती है जिस में से दालचीनी, जावित्री इत्यादि की अच्छी सुगन्ध आती है। मानो यह प्रत्यक्ष प्रगट होता है कि यह ऐसी पुण्यभूमि है कि यहां की घास भी ऐसी सुगन्धमय है निदान यहां जो कुछ है अपूर्व्व है और यह भूमि साक्षात् विरागमय साधुओं और विरक्तों के सेवन योग्य है। और सम्पादक महाशय मैं चित्त से तो अब तक वहीं निवास करता हूं और अपने वर्णन द्वारा आप के पाठकों को इस पुण्यभूमि का वृत्तान्त विदित कर के मौनावलम्बन करता हूं। निश्चय है कि आप इस पत्र को स्थानदान दीजिएगा।

आपका मित्र

यात्री

[कविवचन सुधा, 4 अक्टूबर, सन 1871 ई.]

लखनऊ

श्रीमान् क. व. सुधा सम्पादक महोदयेषु!

मेरे लखनऊ गमन का वृत्तान्त निश्चय आप के पाठकगणों को मनोरंजक होगा।

कानपुर से लखनऊ आने के हेतु एक कम्पनी अलग है। इस का नाम अ. रु. रे. कम्पनी है। इस का काम अभी नया है और इस के गार्ड इत्यादिक सब काम चलानेवाले हिन्दुस्तानी हैं। स्टेशन कान्हपुर का तो दरिद्र सा है पर लखनऊ का अच्छा है। लखनऊ के पास पहुंचते ही मसजिदों के ऊंचे ऊंचे कंगूर दूर ही से दिखते हैं, परन्तु नगर में प्रवेश करते ही एक बड़ी बिपत आ पड़ती है। वह यह है कि चुंगी के राक्षसों का मुख देखना होता है। हम लोग ज्यों ही नगर में प्रवेश करने लगे जमदूतों ने रोका। सब गठरियों को खोल खोल के देखा जब कोई वस्तु न निकसी तब अंगूठियों पर (जो हम लोगों के पास थीं) आ झुके बोले इसका महसूल दे जाओ। हम लोग उतर के चौकी पर गए। वहां एक ठिगना सा काला रूखा मनुष्य बैठा था। नटखटपन उस के मुखरे से बरसता था। मैंने पूछा क्यौं साहब बिना बिकरी की वस्तुओं पर भी महसूल लगता है। बोले हां, कागज देख लीजिए छपा हुआ है। मैंने कागज देखा उस में भी यही छपा था। मुझे पढ़ के यहां की गवर्नमेंट के इस अन्याय पर बड़ा दुःख हुआ। मैंने उन से पूछा कि कहिए कितना महसूल दूं। आप नाक गाल फुला के बोले कि मैं कुछ जवहिरी नहीं हूं कि इन अंगूठियों का दाम जानू मोहर कर के गोदाम को भेजूंगा वहां सुपरिंटेंडेंट साहब सांझ को आ कर दाम लगावैंगे। मैंने कहा कि सांझ तक भूखों कौन मरेगा। बोले इस से मुझे क्या? कहां तक लिखूं इस दुष्ट ने हम लोगों को बहुत छकाया। अन्त में मुझे क्रोध आया तब मैंने उस को नृसिंह रूप दिखाया और कहा कि मैं तेरी रिपोर्ट करूंगा। पहिले तो आप भी बिगड़े, पीछे ढीले हुए, बोले अच्छा जो आप के धर्म में आवे दे दीजिए। तीन रुपये देकर प्राण बचे तब उन के सिपाहियों ने इनाम मांगा। मैंने पूछा क्या इसी घंटों दुःख देने का इनाम चाहिए। किसी प्रकार इस बिपत से छूट कर नगर में आए। नगर पुराना तो नष्ट हो गया है जो बचा है वह नई सड़क से इतना नीचा है कि पाताल लोक का नमूना सा जान पड़ता है। मसजिद बहुत सी हैं, गलियां संकरी और कीचड़ से भरी हुई बुरी गन्दी दुर्गन्धमय। सड़क के घर सुथरे बने हुए हैं। नई सड़क बहुत चौड़ी

और अच्छी है। जहां पहिले जौहरी बाजार और मीनाबाजार था वहां गदहे चरते हैं और सब इमामबाड़ों में किसी में डाकघर कहीं अस्पताल कहीं छापाखाना हो रहा है। रूमी दरवाजा नवाब आसिफुद्दौला की मसजिद और सब मच्छीभवन का सरकारी किला बना है। बेदमुश्क के हौजों में गोरे मूतते हैं। केवल दो स्थान देखने योग्य बचे हैं। पहिला हुसैनाबाद और दूसरा कैसर बाग़। हुसैनाबाद के फाटक के बाहर एक षट्कोण तालाब सुन्दर बना है और एक बारहदरी भी उस के ऊपर है और हुसैनाबाद के फाटक के भीतर एक नहर बनी है और बाईं ओर ताजगंज का सा एक कमरा बना हुआ है। वह मकान जिस में बादशाह गड़े हैं देखने योग्य है। बड़े बड़े कई सुन्दर झाड़ रक्खे हुए हैं और इस हुसैनाबाद के दीवारों में लोहे के गिलास लगाने के इतने अंकुड़े लगे हैं कि दीवार काली हो रही है। कैसरबाग भी देखने योग्य है। सुनहरे शिखर धूप में चमकते हैं। बीच में एक बारादरी रमणीय बनी है और चारों ओर अनेक सुन्दर-सुन्दर बंगले बने हैं। जिस का नाम लंका है उस में कचहरी होती है। और औध के तअल्लुकेदारों को मिले हैं। जहां मोती लुटते थे वहां धूल उड़ती है। यहां एक पीपल का पेड़ श्वेत रंग का देखने योग्य है।

यहां के हिन्दू रईस धनिक लोग असभ्य हैं और पुरानी बातें उन के सिर में भरी हैं। मुझ से जो मिला उस ने मेरी आमदनी गांव रुपया पहिले पूछा और नाम पीछे। वरन् बहुत से आदमी संग में न लाने की निन्दा सब ने किया पर जो लोग शिक्षित हैं वे सभ्य हैं, परन्तु रंडियां प्रायः सब के पास नौकर हैं। और मुसलमान सब बाह्य सभ्य हैं, बोलने में बड़े चतुर हैं। यदि कोई भीख मांगता है या फल बेंचता है तो वह भी एक अच्छी चाल से। थोड़ी अवस्था के पुरुषों में भी स्त्रीपन झलकता है। बातें यहां की बड़ी लम्बी चौड़ी बाहर से स्वच्छ पर भीतर से मलीन। स्त्रियां सुन्दर तो ऐसी नहीं पर आंख लड़ाने में बड़ी चतुर। यहां भंगेड़िने रंडियों के भी कान काटती हैं। हुक्के की भंग की दूकानों पर सज सज के बैठती हैं और नीचे चाहनेवालों की भीड़ खड़ी रहती है पर सुन्दर कोई नहीं।

और भी यहां अमीनाबाद, हजरतगंज, सौदागरों की दूकानें, चौक, मुंशी नवलकिशोर का छापाखाना और नवाब मशकूरुद्दौला की चित्र की दूकान इत्यादि स्थान देखने योग्य हैं।

जैसा कुछ है फिर भी अच्छा है।

ईश्वर यहां के लोगों को विद्या का प्रकाश दें और पुरानी बातें ध्यान से निकालें।

आपका चिरानुगत
यात्री

[कविवचन सुधा, खंड 2, अंक 22, सन 1871 ई.]

जब्बलपुर

श्रीयुत कविवचन सुधा सम्पादक समीपेषु!

महाशय

मेरी इच्छा है कि मैं अपनी मध्य देशीय और बम्बई की यात्रा का सविस्तर समाचार लिख कर आप के पत्र द्वारा अपने देशवालों पर विदित करूं जिस में वे लोग इसे पढ़ कर सज्ञ हो जायं और आशा रखता हूं कि आप को स्थान देने में कुछ असमंजस न होगा।

मैंने आप की पवित्र नगरी से दूसरी तारीख को सन्ध्या समय दस बजे प्रस्थान किया और जिस समय राजघाट पहुंचा गाड़ी छूटने को केवल पांच मिनट का विलम्ब था। झट टिकट लेकर आरोहण किया और थोड़े समय में मोगलसराय में पहुंचा। वहां पर एक दूसरी गाड़ी में चढ़ा और निरन्तर चला तो सूर्य्योदय होते होते नैनी के स्टेशन पर पहुंचा और वहां उतर पड़ा क्यौंकि वह गाड़ी इलाहाबाद जाती थी और मुझे आना था जब्बलपुर। वहां हम लोगों ने (क्यौंकि एक मित्र भी मेरे साथ थे) नित्य शौच किया और चाहा कि कुछ खाएं पर वहां काहे को कुछ मिलता है। दूध के लिए एक मनुष्य को पैसा दिया तो वह मुंह बनाए हुए आया और बोला कि अभी दूध नहीं आया। फिर हम लोगों ने पूछा कि भला यहां जिलेबी मिलेगी उसने कहा हां। पैसा देकर भेजा तो वह तेल की जिलेबी उठा लाया परन्तु वैसी तेल की न समझिए जैसी बनारस में बनती है और टके की पाव भर बिकती है। यह उस से तो बढ़ कर थी। हम लोगों ने अपना अपना माथा ठोंका और इस द्रव्य को उसी मनुष्य के अर्पण किया। इतने में नौ बजा और गाड़ी आई। फिर हम लोग चढ़े और जसरा, शिवराजपुर, बरगढ़, दबोरा, माणिक्यपुर, मरकुंडी, मजगांवा, जेतवार, सतना, उचारा, मैहरी, अधरा, जोखई, कतनी, स्लीमानाबाद रोड, सिंहोरा रोड, देवरी नामक स्टेशनों को पार करते हुए सवा आठ बजे रात को जब्बलपुर पहुंचे। मार्ग में जो क्लेश हुआ वह अकथनीय है। एक तो मार्तंड की प्रचंड किरण से गाड़ी ऐसी उत्तप्त हो रही थी। यदि शरीर स्पर्श हो जाय तो यह भ्रम होता था कि फफोला तो नहीं पड़ गया, किसी प्रकार से चैन नहीं मिलता था। यदि एकाद बार खिड़की खुल जाती

तो मुंह मानो प्रज्वलित अग्नि की ज्वाल से झौंस जाता। प्यास के मारे कंठ सूखा जाता था और मुख से आखर नहीं निकलते थे। जो कहीं पानी मिलै भी तो अदहन के सहस। उधर क्षुधा अलग सता रही थी। आते आते जब सतना में पहुंचे तो थोड़ी सी जिलेबी लेकर खाया तब कुछ आंखें खुलीं फिर मैहर में पक्का आम विक्रय होता था वह लिया। इसी भांति ज्यौं त्यौं कर कर के जब्बलपुर में आकर उतरे। अब यहां कहीं टिकने का ठिकाना न मिले। थोड़ी दूर पर सुना कि एक सराय है। वहां गए तो देखा कि एक बड़ा भारी मैदान है और उस के किनारे किनारे छावनी सी बनी है पर वह क्या था मालूम नहीं क्यौंकि यात्री सब उसी मैदान में बिस्तरा लगाये पड़े थे। चौधरी के पास गए। (यहां भठियारे नहीं हैं) तो वह मारे मिजाज के किसी की कुछ सुनता ही न था। खैर बड़ी देर के अनन्तर जब हम लोगों ने पूछा कि यहां चारपाई इत्यादि मिलेगी कि नहीं, उस ने कहा जाकर बनिए से पूछो और बनिए की वहां कहीं सूरत भी नहीं दिखती थी। अन्त को असक्त हो कर वहां एक हलवाई था उस से कुछ ले कर हम लोगों ने क्षुधा शान्त किया और एक एक्केवाले को बुला कर पुल पर पंडित गोपालराव, एक्सट्रा असिस्टेंट नरसिंहरपुर के घर पर गए। परन्तु इस के पूर्व्व यह प्रकाश करना उचित कि यहां पैसा साढ़े पन्द्रह आने तो बिकतई है दोअन्नी और चरअन्नी भुजाने में भी एक पैसा भुजाना लगता है। ऐसा अन्धेर हम ने और किसी स्थान में नहीं देखा था। एक्केवाले को चरअन्नी दिया तो वह कहता है कि यह तो पन्द्रही पैसे हुए एक पैसा और चाहिए। एक और लड़के को सात पैसे के पलटे दोअन्नी दिया। हम नहीं जानते कि सरकार इन बातों को जानती है वा नहीं जान कर कान में तेल डाले बैठी है। अभी तक जब्बलपुर मैंने भलीभांति देखा नहीं पर दो तीन बात यहां नई देखने में आई। एक प्रत्येक चौराहे पर यहां लालटेन एक एक झाड़ टंगे हैं। जै सड़क उस स्थान पर मिलती हैं उतनी ही लालटेन एक खम्भे में लगी हैं। दूसरे यह कि सड़क बहुत परिष्कृत और प्रशस्त हैं। फिरती बार ईश्वर चाहैगा तो नगर को भलीभांति देख कर आप के पास लिखूंगा। रात भर तो उन महाराजजी (उक्त महाशय के शाले) के यहां रहे दूसरे दिन उन्होंने बड़े आतिथ्य से भोजन कराया और आदरपूर्व्वक विदा किया। जब्बलपुर से फिर हम लोगों ने 3 ।॥) ॥ (तीन रुपये चौदह आने) दे दे कर इटारसी का टिकट लिया और ग्रेट इंडियन पेनिनूसुला रेलवे कम्पनी की गाड़ी पर सवार हुए। यह गाड़ी एक विचित्र प्रकार की होती है। ईस्ट इंडियन रेलवे की गाड़ी में कई विभाग रहते हैं परन्तु यहां सरासर एकी रहती है और उस में छह बेंच लगे रहते हैं—तीन द्वार के एक ओर और तीन दूसरी ओर। इन गाड़ियों के एक कोने में एक शौच गृह (पायखाना) भी बना रहता है और गाड़ी की सूरत भी बहुत भद्दी होती है। यह तो तीसरी क्लास की गाड़ी है। यहां एक लोकल गाड़ी होती है जिस में कुली आदि नीच लोग भेंड़ की भांति भर दिए जाते हैं। उस में बैठने के लिए कुछ भी स्थान नहीं बने रहते। किराया उस में एक पैसे

कोस है। यह तो गाड़ी की प्रशंसा है। स्टेशन का प्रबन्ध ऐसा है कि खाने की वस्तु का तो नाम न लेना, लोग पानी पानी पुकारा करते हैं कोई सुनता नहीं। एक बेर दो तीन मनुष्य मेरी गाड़ी में बहुत चिल्ला रहे थे कि एक गार्ड आया तो एक पारसी ने कहा "Sir they (are) Complaining very much for water" (साहेब लोग पानी पानी बहुत चिल्लाते हैं) तो गार्ड ने उत्तर दिया Can't help (मैं कुछ नहीं कर सकता) अब कहिए ज्येष्ठ की दुपहरी में यदि कोई पानी बिना मर जाय तो क्या कम्पनी पकड़ी न जायगी? इस उत्तर से तो यही प्रगट होता है। जब्बलपुर और इटारसी के बीच में 7 स्टेशन (चिन्दवारा, नृसिंहपुर, गदावरा, बाकेड़ी, सोहागपुर, बाग्रा और इटारसी) पड़ते हैं। परन्तु रेल पथ के दोनों ओर जंगल और पहाड़ों के कुछ दृष्टि नहीं पड़ता। कोसों पर्यन्त कोई गांव नहीं दिखाई देता। इस से आप समझ लीजिए कि यह कैसा देश है। इटारसी और बाग्रा के बीच यहां भी एक सुरंग है जिस के भीतर से गाड़ी जाती है परंतु यह सुरंग जमालपुर के सुरंग से बड़ा है क्योंकि इस में जिस समय गाड़ी जाती है तो किंचित् अन्धकार हो जाता है पर उस में इधर से उधर तक बराबर प्रकाश रहता है। परन्तु अनेक लोग कहते हैं कि वही बड़ा है। इटारसी के स्टेशन से जो बाहर आ कर मैंने एक बेर दृष्टि फेरी तो स्पष्ट ज्ञात हुआ कि कैसे देश में आया हूं क्योंकि चतुर्दिक जंगल और मैदान दीखने लगा। इस के आगे मार्ग ऐसा है कि केवल सग्गड़ और घोड़े के कुछ नहीं जा सकती। हम लोगों ने भी एक गाड़ी पांच रुपये पर भाड़े की और चढ़ कर चले। आगे का समाचार दूसरे पत्र में लिखूंगा।

एक मध्यदेश

यात्री

[कविवचन सुधा, 20 जुलाई, सन 1872 ई.]

सरयू पार की यात्रा

अयोध्या

कल सांझ को चिराग जले रेल पर सवार हुए, यह गए, वह गए। राह में स्टेशनों पर बड़ी भीड़ न जाने क्यों? और मजा यह कि पानी कहीं नहीं मिलता था। यह कम्पनी यजीद के खानदान की मालूम होती है कि ईमानदारों को पानी तक़ नहीं देती। या सिप्रस का टापू सरकार के हाथ आने से और शाम में सरकार का बन्दोबस्त होने से यह भी शामत का मारा शामी तरीका अख़तियार किया गया है कि शाम तक किसी को पानी न मिलै। स्टेशन के नौकरों से फरियाद करो तो कहते हैं कि डांक पहुंचावें, रोशनी दिखलावें कि पानी दें। खैर, ज्यों त्यों कर अयोध्या पहुंचे। इतना ही धन्य माना कि श्रीरामनवमी की रात अयोध्या में कटी। भीड़ बहुत ही है, मेला दरिद्र और मैले लोगों का। यहां के लोग बड़े ही कंगालटिरें हैं। इस वक्त दोपहर को अब उस पार जाते हैं। ऊंट गाड़ी यहां से पांच कोस पर मिलती है।

कैम्प हरैया बाजार

अब तक तीन पहर का सफर हो चुका है और सफर भी कई तरह का और तकलीफ देने वाला। पहिले सरा से गाड़ी पर चले। मेला देखते हुए रामघाट की सड़क पर गाड़ी से उतरे। वहां से पैदल धूप में गर्म रेती में सरजू किनारे गुदारा घाट पर पहुंचे। वहां से मुश्किल से नाव पर सवार होकर सरजू पार हुए। वहां से बेलवां, जहां कि डांक मिलती है और शायद जिसका शुद्ध नाम बिल्व ग्राम है, दो कोस है। सवारी कोई नहीं न राह में छाया के पेड़, न कुआं, न सड़क। हवा खूब चलती थी इस से पगडंडी भी नहीं नजर पड़ती, बड़ी मुश्किल से चले और बड़ी ही तकलीफ हुई। खैर बेलवां तक रो रो कर पहुंचे। वहां से बैल की डांक पर नौ बजे रात को यहां पहुंचे। यहां पहुंचते ही हरैया बाजार के नाम से यह गीत याद आया 'हरैया लागल झबिआ के रे लैहें ना'। शायद किसी जमाने में यहां हरैया बहुत बिकती होगी। इस के पास ही मनोरमा नदी है। मिठाई हरैया की तारीफ के लायक है। बालूसाही बिलकुल बालू साही, भीतर काठ के टुकड़े भरे हुए। लड्डू 'भूरके'। बरफी अहा हा

हा! गुड़ से भी बुरी। खैर, लाचार होकर चने पर गुजर की। गुजर गई गुजरान—क्या झोपड़ी क्या मैदान, बाकी हाल कल के खत में।

बस्ती

परसों पहिली एप्रिल थी इस से सफर कर के रेती में बेवकूफ बनने का और तकलीफ में सफर करने का हाल लिख चुके हैं। अब आज आठ बजे सुबह रें रें कर के बस्ती पहुंचे। वाह रे बस्ती, झख मारने को बस्ती है अगर बस्ती इसी को कहते हैं तो उजाड़ किस को कहेंगे। सारी बस्ती में कोई भी पंडित बस्तीरामजी ऐसा पंडित नहीं। खैर अब तो एक दिन यही बसती होगी। राह में मेला खूब था जगह जगह पर शहाबे का शहाबा। चूल्हे जल रहे हैं। सैकड़ों अहरे लगे हुए हैं। कोई गाता है, कोई बजाता है, कोई गप हांकता है। रामलीला के मेले में अवध प्रान्त के लोगों का स्वभाव रेल अयोध्या और इधर राह में मिलने से खूब मालूम हुआ। बैसवारे के पुरुष अभिमानी रूखे और रसिकमन्य होते हैं, रसिकमन्य ही नहीं वीरमन्य भी। पुरुष सब पुरुष और सभी भीम, सभी अर्जुन, सभी सूत पौराणिक और सभी वाजिदअली शाह। मोटी मोटी बातों को बड़े आग्रह से कहते सुनते हैं। नई सभ्यता अब तक इधर नहीं आई है। रूप कुछ ऐसा नहीं पर स्त्रियां नेत्र नचाने में बड़ी चतुर। यहां के पुरुषों की रसिकता मोटी चाल सुरती और खड़ी मोंछ में छिपी है और स्त्रियों की रसिकता मैले वस्त्र और सूप ऐसी नथ में। अयोध्या में प्रायः सभी ग्रामीण स्त्रियों के गोल आते हुए मिले। उनका गाना भी मोटी रसिकता का। मुझे तो उनकी सब गीतों में 'बोलो प्यारी सखियां सीताराम राम राम' यही अच्छा मालूम हुआ। राह में मेला जहां पड़ा मिलता था वहां बारात का आनन्द दिखलाई पड़ता था। खैर मैं डांक पर बैठा बैठा सोचता था कि काशी में रहते तो बहुत दिन हुए परन्तु शिव आज ही हुए क्यौंकि वृषभवाहन हुए। फिर अयोध्या याद आई कि हा! यह वही अयोध्या है जो भारतवर्ष में सब से पहले राजधानी बनाई गई। इसी में महात्मा इक्ष्वाकु, मान्धाता, हरिश्चन्द्र, दिलीप, अज, रघु, श्री रामचन्द्र हुए हैं और इसी के राजवंश के चरित्र में बड़े बड़े कवियों ने अपनी बुद्धिशक्ति की परिचालना की है। संसार में इसी अयोध्या का प्रताप किसी दिन व्याप्त था और सारे संसार के राजा लोग इसी अयोध्या की कृपाण से किसी दिन दबते थे वही अयोध्या अब देखी नहीं जाती। जहां देखिए मुसलमानों की कब्रें दिखाई पड़ती हैं। और कभी डांक पर बैठे रेल का दुःख याद आ जाता कि रेलवे कम्पनी ने क्यौं ऐसा प्रबन्ध किया है कि पानी तक न मिले। एक स्टेशन पर एक औरत पानी का डोल लिए आई भी तो गुपला गुपला पुकारती रह गई, जब हम लोगों ने पानी मांगा तो लगी कहने कि 'रहः हो पानियैं पानी पड़ल हौ, फिर कुछ जियादा जिद में लोगों ने मांगा तो बोली 'अब हम गारी देव' वाह! क्या इंतजाम था। मालूम होता था रेलवे कम्पनी स्वभाव (Nature) की बड़ी शत्रु

है क्योंकि जितनी बातें स्वभाव से सम्बन्ध रखती हैं अर्थात खाना, पीना, सोना, मल मूत्र त्याग करना इन्हीं का इस में कष्ट है। शायद इसी से अब हिन्दुस्तान में रोग बहुत हैं। कभी सराय की खाट के खटमल और भटियारियों का लड़ना याद आया। यही सब याद करते कुछ सोते जागते हिलते हिलते आज बस्ती पहुंच गए। बाकी फिर। यहां एक नदी है उसका नाम कुआनय। डेढ़ रुपया पुल का गाड़ी का महसूल लगा।

बस्ती के जिले की उत्तर सीमा नैपाल, पश्चिमोत्तर की गोंडा, पश्चिम दक्षिण अयोध्या और पूरब गोरखपुर है। नदियां बड़ी इस में सरयू और इरावती। सरयू के इस पार बस्ती उस पर फैजाबाद। छोटी नदियों में कुंनेय, मनोरमा, कठनेय, आमी, बानगंगा और जमबर है। बरकरा ताल और जिरजिरवा दो बड़ी झील भी हैं। बांसी, बस्ती और मकहर तीन राजा भी हैं। बस्ती सिर्फ चार पांच हजार की बस्ती है पर जिला बड़ा है क्योंकि जिले की आमदनी चौदह लाख है। साहब लोग यहां कुल दस बारह हैं, उतने ही बंगाली हैं। अगरवाला मैंने खोजा एक भी न मिला, सिर्फ एक हैं वह भी गोरखपुरी। पुरानी बस्ती खांई के बीच में बसी है। राजा के महल बनारस के अर्दली बाजार के किसी मकान से उमदा नहीं। महल के सामने मैदान, पिछवाड़े जंगल और चारों ओर खांई है। पांच सौ खटिकों के घर महल के पास हैं जो आगे किसी जमाने में राजा के लूटमार के मुख्य सहायक थे। अब राजा के स्टेट के मैनेजर कूक साहब हैं।

यहां के बाजार का हम बनारस के किसी भी बाजार से मुकाबिला नहीं कर सकते। महज़ बेहैसियत। महाजन एक यहां हैं वह टूटे खपड़े में बैठे थे। तारीफ यह सुना कि साल भर में दो बेर कैद होते हैं क्योंकि महाजन पर जाल करना फर्ज़ है और उस को भी छिपाने का शऊर नहीं। यहां का मुख्य ठाकुरद्धारा दो तीन हाथ चौड़ा और उतना ही लम्बा और उतना ही ऊंचा बस। पत्थर का कहीं दर्शन भी नहीं। यह हाल बस्ती का है। कल डांक ही नहीं मिली कि जायं। मेंहदावल की कच्ची सड़क है इस से कोई सवारी नहीं मिलती आज कंहार ठीक हुए हैं। भगवान ने चाहा तो शाम को रवाना होंगे। कल तो कुछ तबीअत भी गड़बड़ा गई थी इस से आज खिचड़ी खाई। पानी यहां का बड़ा बातुल है। अकसर लोगों का गला फूल जाता है, आदमी ही का नहीं कुत्ते और सुग्गे का भी। शायद गला फूल कबूतर यहीं से निकले हैं। बस अब कल मेंहदावल से खत लिखेंगे।

मेंहदावल

आज सुबह सात बजे मेंहदावल पहुंचे। सड़क कच्ची है, राह में एक नदी उतरनी पड़ती है उस का नाम आमी है। छह आना पुराना महसूल लगा। रात को ग्यारह बजे पालकी पर सवार हुए। बदन खूब हिला। अन्न भी नहीं पचा। इस वक्त यहां पड़े हैं। यहां मक्खी बहुत हैं और आबादी बहुत है। दो लड़कों के स्कूल हैं और

एक लड़कियों का स्कूल है और एक डाक्टरखाना है। बस्ती शहर है मगर उस से यह मेंहदावल गांव बहुत आबाद है। फैजाबाद में 5॥) (साढ़े पांच रुपये) बस्ती तक डांक का लगा और बस्ती से मेंहदावल तक 3 ।॥) (तीन रुपये बारह आने) पालकी का। अभी एक गंवार भाट आया था। बेतरह बका। फूहर औरतों की तारीफ में एक बड़ा भारी पचड़ा पढ़ा। यहां गरमी बहुत है और मक्खियां लखनऊ से भी जियादा। दिन को बड़ी बेचैनी है।

यहां की औरतों का नाम श्यामतोला, रामतोला, मनतोरा इत्यादि विचित्र होता है और नारंगी को भी यही श्यामतोला कहते हैं जो संगतरा का अपभ्रंश मालूम होता है क्यौंकि यहीं के गंवार संतोला कहते हैं। यहां एक नाऊ बड़े पंडित थे। उन से किसी पंडित ने प्रश्न किया 'किं दूधं' (तुम कौन जात हो) तब नाई ने जवाब दिया 'चटपटाक चटपटाक' (नाई)। तब ब्राह्मण ने कहा 'तं दूरं' (तुम दूर जाओ), तब नाई ने जवाब दिया 'किं छौरं' (तब मूड़ कौन मूड़ैगा)। एक का बाप डूब कर मर गया उस के बाप का पिंडा इस मन्त्र से कराया गया। 'आर गंगा पार गंगा बीच में पड़ गई रेत। तहां मर गए नायका चले बुज बुजा देत, धर दे पिंडवा।'

कुछ फुटकर हाल भी यहां का सुन लीजिए। कल मजहब का हाल हम ने नीचे लिखा था। उस का अच्छी तरह से हाल दरयाफ्त किया तो मालूम हुआ कि हमारे ही मजहब की शाखा है। इन के ग्रन्थों में हम ने एक श्लोक श्री महाप्रभुजी की सुबोधिनी की कारिका का देखा, इसी से हम को सन्देह हुआ। फिर हम ने बहुत खोद खाद कर पूछा तो यह साफ मालूम हुआ कि इसी मत से यह मत निकला है क्यौंकि एक बात वह और बोले कि हमारा मत श्री बल्लभाचारज की टीका में लिखा है। इन लोगों के उपास्य श्रीकृष्ण हैं और एकादशी, शालग्राम, मूर्त्तिपूजा, तीर्थ किसी को नहीं मानते। इन के पहिले आचार्य्य देवचन्दजी थे, जो जात के कायथ थे और दूसरे प्राणनाथजी, जो कच्छ के क्षत्री (भाटिया) थे। हमारे ही मत की शाखा सही पर विचित्र Reformed मत है। वैष्णव होकर मूर्त्तिपूजा का खंडन करने वाले यही लोग सुने।

यहां बूढ़े को खबीस, व्रत को बेनी राम, भोजन को बुलनी, जात को दूध, ऐसे ही अनेक विचित्र विचित्र बोली हैं।

गांव गन्दा बड़ा है और लोग परले सिर के बेवकूफ। यहां से चार मील पर एक मोती झील वा बखरा ताल नामक झील है। दर हकीकत देखने के लायक है। कई कोस लम्बी झील है और जानवर तरह तरह के देखने में आते हैं। पहाड़ से चिड़ियां हजारों ही तरह की आती हैं और मछली भी इफ़रात। पेड़ों पर बन्दर भी। मेंहदावल में कोई चीज़ भी देखने लायक नहीं। जहां देखो वहां गन्दगी। लोग बज्र मूर्ख, क्षत्री ब्राह्मण जियादा। एक यहां प्राननाथ का मजहब है और दस बीस लोग उस के मानने वाले हैं। ये लोग एकादशी तीर्थ वगैरह को नहीं मानते और सुने सुनाए

दो तीन श्लोक जो याद कर लिए हैं बस उसी पर चूर हैं। 'मदीनास्यां शरदां शतं' और 'गोविंद गोकुलानन्द मक्केश्वरं' यह श्लोक पढ़ के कहते हैं कि वेद में मक्का मदीने का वर्णन है। ऐसे ही बहुत वाहियात बात कहते हैं और कोई कितना भी कहै कुछ सुनते नहीं। कहते हैं कि गोलोक का नाश है और गोलोक ऊपर एक 'अखंड मंडलाकारं' लोक है, उस में मेरे कृष्ण हैं। इन का मजहब एक प्राणनाथ नामक एक क्षत्री ने पन्ना में करीब तीन सौ बरस हुए चलाया था। यहां चैत सुदी भर रात को औरतें जमा होकर माता का गीत गाती हैं और बड़ा शोर करती हैं। असभ्य बकती हैं। व्यभिचार यहां बेतकल्लुफ है। सरयू पार के ब्राह्मण बड़े विचित्र हैं। मांस मछली सब खाते हैं। कुएं के जगत पर एक आदमी जो पानी भरता हो दूसरा आदमी चला आवे तो अपना घड़ा फोड़ डालें और उस से घड़े का दाम ले। घड़ा कोई कहै तो घड़ा छू जाय क्योंकि घड़ा मुसलमानी लफ़्ज है, दाल कहै तो छू जाय क्योंकि दाल मुसलमानी है। सूरज वंशी छत्री राजा बाबू को छाता नहीं लगता। क्योंकि वे तो सूरज वंशी हैं, सूरज से क्या छाता लगावें। नेम बड़ा धर्म्म बिलकुल नहीं। एक ब्राह्मण ने कोहार से नई सनहकी मोल लेकर उस में पूरी बनाकर खाया, इस से वह जात से निकाल दिया गया क्योंकि जैसे बर्तन में मुसलमान खाना बनावैं उस आकार के बरतन में इस ने हिन्दू होकर खाना बनाया। ह हा हा! और मजा यह कि ताजिए को सब मानते हैं। मेंहदावल में एक थाना है। थानेदार यहां के बादशाह हैं। एक डाक्टरखाना भी है। यह बड़ा सरकार का पुन्य है। बस हम को तो सरकार के पुन्य के कसर यही मालूम होती है कि पुलों पर महसूल लिया जाता है क्योंकि भला नाव या ऐसे पुल पर महसूल लगै तो ठीक है जिसकी हर साल मरम्मत हो, पक्के पर भी महसूल। बस्ती में अगरवाला नहीं, एक हैं सो जूता उतार कर लायची खाते हैं। मेंहदावल में एक अगरवाले हैं। मुसलमान फर्श पर यहां नहीं बैठते हैं पिंडारे जिनको इस जिले में जमीन मिली हैं अब नवाब हो गए हैं और उन की मुस्तैदी आराम से बदल गई है। यहां कहीं कहीं धारू लोगों का रक्खा सोना खोदने से अब तक मिलता है। यहां के बाबू ऐसे हठी कि बंगला गिर पड़ा पर जूता उलटा था, खिदमतगार को पुकारा वह न आया, इस से आप वहां से न चले और दब कर मर गए।

गोरखपुर

अहो बरनि नहिं जात है आज लह्यौ जो खेद।
आतप उष्मा वायु सों चल्यो नखन सों स्वेद॥1॥
प्रिय दुरगा परसाद गृह ठहरे हैं इत आय।
बाट बिलोकल दुष्ट की रहे उतहि बिलगाय॥2॥
आवत ह्वैहे दुष्ट सो लीने नग निज साथ।
पै निकस्यौ जो खोट तो रहिहैं हम धुनि माथ॥3॥

करम लिखी सो होय है यामैं कछु न सन्देह।
बृथा लोभ बस लोग सब छांड़त सुख मैं गेह॥4॥

''करम कमंडल कर गहे तुलसी जहं जहं जास।
सरिता सागर कूप जल बूंद न अधिक समाय॥5॥''
तऊ सोच नहिं कछु करिय मम प्रभु मंगल धाम।
करिहैं सब कल्यान ही यामैं कछु न कलाम॥6॥
रजिस्टरी को पत्र इक गयो होइहै तत्र।
ताहि जतन करि राखियो फिरि नहिं आवै अत्र॥7॥
जेहि छन सो खल आइहै ताही छन दिखराइ।
ताहि तुरन्तहिं लौटिहैं तितहिं पहुंचिहैं आइ॥8॥
तित प्रबन्ध सब राखिहौ रहिहौ स्वै हुसियार।
कीजौ रच्छा अंग की करि उपाय हर बार॥9॥
आवत हैं हम बेग ही यामैं संसय नाहिं।
अति व्याकुलता तित बिना मेरेहू जिय माहिं॥10॥
प्रति पद माधव की प्रथम रस शिव दृग ग्रह चन्द्र।
सम्वत् मंगल के दिवस लिख्यौ पत्र हरिचन्द्र॥11॥

[हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, 8 फरवरी, सन 1879 ई.]

वैद्यनाथ की यात्रा

श्री मन्महाराज काशीनरेश के साथ वैद्यनाथ की यात्रा को चले। दो बजे दिन के पैसेंजर ट्रेन में सवार हुए। चारों ओर हरी हरी घास का फर्श, ऊपर रंग रंग के बादल, गड़हों में पानी भरा हुआ, सब कुछ सुन्दर। मार्ग में श्री महाराज के मुख से अनेक प्रकार के अमृतमय उपदेश सुनते हुए चले जाते थे। सांझ को बक्सर पहुंचे। बक्सर के आगे बड़ा भारी मैदान, पर सब्ज काशानी मखमल से मढ़ा हुआ। सांझ होने से बादल छोटे छोटे लाल पीले नीले बड़े ही सुहाने मालूम पड़ते थे। बनारस कॉलेज की रंगीन शीशे की खिड़कियों का सा सामान था। क्रम से अन्धकार होने लगा। ठंढी ठंढी हवा से निद्रा देवी अलग नेत्रों से लिपटी जाती थी। मैं महाराज के पास से उठ कर सोने के वास्ते दूसरी गाड़ी में चला गया। झपकी का आना था कि बौछारों ने छेड़छाड़ करनी शुरू की, पटने पहुंचते पहुंचते तो घेर घार कर चारों ओर से पानी बरसने ही लगा। बस पृथ्वी आकाश सब नीरब्रह्ममय हो गया। इस धूमधाम में भी रेल कृष्णाभिसारिका सी अपनी धुन में चली ही जाती थी। सच है सावन की नदी और दृढ़प्रतिज्ञ उद्योगी और जिनके मन पीतम के पास हैं वे कहीं रुकते हैं? राह में बाज पेड़ों में इतने जुगनू लिपटे हुए थे कि पेड़ सचमुच 'सर्वे चिरागां' बन रहे थे। जहां रेल ठहरती थी, स्टेशन मास्टर और सिपाही बिचारे टुटरू टूं छाता, लालटेन लिए रोजी जगाते भीगते हुए इधर उधर फिरते दिखलाई पड़ते थे। गार्ड अलग 'मैकिंटाश का कवच पहिने' अप्रतिहत गति से घूमते थे। आगे चल कर एक बड़ा भारी विघ्न हुआ, खास जिस गाड़ी पर श्री महाराज सवार थे, उस के धुरे घिसने से गर्म होकर शिथिल हो गए। वह गाड़ी छोड़ देनी पड़ी। जैसे धूमधाम की अन्धेरी, वैसे ही जोर शोर का पानी। इधर तो यह आफत, उधर फरऊन क्या फरऊन के भी बाबाजान रेल वालों की जल्दी, गाड़ी कभी आगे हटै कभी पीछे। खैर, किसी तरह सब ठीक हुआ। इस पर भी बहुत सा असबाब और कुछ लोग पीछे छूट गएं। अब आगे बढ़ते बढ़ते तो सबेरा ही होने लगा। निद्रा वधू का संयोग भाग्य में न लिखा था, न हुआ। एक तो सेकेंड क्लास की एक ही गाड़ी, उस में भी लेडीज कम्पार्टमेंट निकल गया, बाकी जो कुछ बचा उस में बारह आदमी। गाड़ी भी ऐसी टूटी फूटी, जैसी हिन्दुओं

की किस्तम और हिम्मत। इस कम्बख्त गाड़ी से और तीसरे दर्जे की गाड़ी से कोई फर्क नहीं, सिर्फ एक एक धोके की टट्टी का शीशा खिड़कियों में लगा था। न चौड़े बेंच न गद्दा, न बाथरूम। जो लोग मामूली से तिगुना रुपया दें उन को ऐसी मनहूस गाड़ी पर बिठलाना, जिस में कोई बात भी आराम की न हो, रेलवे कम्पनी की सिर्फ बेइन्साफी ही नहीं वरन् धोखा देना है। क्यौं नहीं, ऐसी गाड़ियों को आग लगा कर जला देती या कलकत्ते में नीलाम कर देती। अगर मारे मोह के न छोड़ी जाय तो उस से तीसरे दर्जे का काम ले। नाहक अपने गाहकों को बेवकूफ बनाने से क्या हासिल। लेडीज कम्पार्टमेंट खाली था, मैंने गार्ड से कितना कहा कि इस में सोने दो, न माना। और दानापुर से दो चार नीम अंगरेज (लेडी नहीं सिर्फ लैड) मिले उन को बेतकल्लुफ उस में बैठा दिया। फर्स्ट क्लास की सिर्फ दो गाड़ी—एक में महाराज, दूसरी में आधी लेडीज, आधी में अंगरेज़। अब कहां सोवैं कि नींद आवै। सचमुच अब तो तपस्या कर के गोरी गोरी कोख में जन्म लें तब संसार में सुख मिलै। मैं तो ज्यों ही फर्स्ट क्लास में अंगरेज कम हुए कि सोने की लालच से उस में घुसा। हाथ फैलाना था कि गाड़ी टूटनेवाला विघ्न हुआ। महाराज के इस गाड़ी में आने से मैं फिर वहीं का वहीं। खैर, इसी सात पांच में रात कट गई। बादल के परदों को फाड़ फाड़ कर ऊषा देवी ने ताकझांक आरम्भ कर दी। परलोकगत सज्जनों की कीर्त्ति की भांति सूर्य्य नारायण का प्रकाश पिशुन मेघों के वागाडम्बर से घिरा हुआ दिखलाई पड़ने लगा। प्रकृति का नाम काली से सरस्वती हुआ, ठंढी ठंढी हवा मन की कली खिलाती हुई बहने लगी। दूर से धानी और काही रंग के पर्वतों पर सुनहरापन आ चला। कहीं आधे पर्वत बादलों से घिरे हुए, कहीं एक साथ वाष्प निकलने से उनकी चोटियां छिपी हुई और कहीं चारों ओर से उन पर जलधारा पात से बुक्के की होली खेलते हुए बड़े ही सुहाने मालूम पड़ते थे। पास से देखने से भी पहाड़ बहुत ही भले दिखलाई पड़ते थे। काले पत्थरों पर हरी हरी घास और जहां तहां छोटे बड़े पेड़, बीच बीच में मोटे पतले झरने; नदियों की लकीरें, कहीं चारों ओर से सघन हरियाली, कहीं चट्टानों पर ऊंचे नीचे अनगढ़ ढोंके, और कहीं जलपूर्ण हरित तराई विचित्र शोभा देती थी। अच्छी तरह प्रकाश होते होते तो वैद्यनाथ के स्टेशन पर पहुंच गए। स्टेशन से वैद्यनाथजी कोई तीन कोस हैं। बीच में एक नदी उतरनी पड़ती है जो आजकल बरसात में कभी घटती और कभी बढ़ती है। रास्ता पहाड़ के ऊपर ही ऊपर बरसात से बहुत सुहावना हो रहा है। पालकी पर हिलते हिलते चले। श्री महाराज के सोचने के अनुसार कहारों की गतिध्वनि में भी परमेश्वर ही की चर्चा है। पहले 'कोहं कोहं' की ध्वनि सुनाई पड़ती है फिर 'सोहं सोहं' 'हंसस्सोहं' की एंकाकार पुकार मार्ग में भी उस से तन्मय किए देती थी।

मुसाफिरों को अनुभव होगा कि रेल पर सोने से नाक थर्राती है और वही

दशा कभी कभी और सवारियों पर होती है इसी से मुझे पालकी पर भी नींद नहीं आई और जैसे तैसे बैजनाथजी पहुंच ही गए।

बैजनाथजी एक गांव है, जो अच्छी तरह आबाद है। मजिस्ट्रेट, मुनसिफ वगैरह हाकिम और जरूरी सब ऑफिस हैं। नीचा और तर होने से देश बातुल गन्दा और 'गंधद्वारा' है। लोग काले काले और हतोत्साह मूर्ख और गरीब हैं। यहां सौंथाल एक जंगली जाति होती है। ये लोग अब तक निरे बहशी हैं। खाने पीने की जरूरी चीज़ें यहां मिल जाती हैं। सर्प विशेष हैं। रामजी की घोड़ी जिन को कुछ लोग ग्वालिन भी कहते हैं एक बालिश्त लम्बी और दो दो उंगल मोटी देखने में आई।

मन्दिर वैद्यनाथजी का टोप की तरह बहुत ऊंचा शिखरदार है। चारों ओर और देवताओं के मन्दिर और बीच में फर्श है। मन्दिर भीतर से अंधेरा है क्योंकि सिर्फ एक दरवाज़ा है। बैजनाथजी की पिंडी जलधरी से तीन चार उंगल ऊंची बीच में से चिपटी है। कहते हैं कि रावण ने मूका मारा है इस से यह गड़हा पड़ गया है। वैद्यनाथ बैजनाथ और रावणेश्वर यह तीन नाम महादेवजी के हैं। यह सिद्धपीठ और ज्योतिर्लिंग स्थान है। हरिद्रा पीठ इसका नाम है और सती का हृदयदेश यहां गिरा है। जो पार्वती अरोगा और दुर्गा नाम की सामने एक देवी हैं वही यहां की मुख्य शक्ति हैं। इन के मन्दिर और महादेवजी के मन्दिर से गांठ जोड़ी रहती है। रात को महादेवजी के ऊपर बेलपत्र का बहुत लम्बा चौड़ा एक ढेर कर के ऊपर से कमखाब या ताश का खोल चढ़ा कर शृंगार करते हैं या बेलपत्र के ऊपर से बहुत सी माला पहना देते हैं। सिर के गड़हे में भी रात को चन्दन भर देते हैं।

वैद्यनाथ की कथा यह है कि एक बेर पार्वतीजी ने मान किया था, और रावण के शोर करने से वह मान छूट गया, इस पर महादेवजी ने प्रसन्न होकर वर दिया कि हम लंका चलेंगे और लिंग रूप से उस के साथ चले। राह में जब बैजनाथजी पहुंचे तब ब्राह्मण रूपी विष्णु के हाथ में वह लिंग देकर पेशाब करने लगा कई घड़ी तक माया मोहित होकर वह मूतता ही रह गया और घबड़ा कर विष्णु ने उस लिंग को वहीं रख दिया। रावण से महादेवजी से यह करार था कि जहां रख दोगे वहां से आगे न चलेंगे इस से महादेवजी वहीं रह गए, वरंच इसी पर खफा होकर रावण ने उन को मूका भी मार दिया।

वैद्यनाथजी का मन्दिर राजा पूरणमल्ल का बनाया हुआ है। लोग कहते हैं कि रघुनाथ ओझा नामक एक तपस्वी इसी वन में रहते थे। उन को स्वप्न हुआ कि हमारी एक छोटी सी मढ़ी झाड़ियों में छिपी है तुम उस का एक बड़ा मन्दिर बनाओ। उसी स्वप्न के अनुसार किसी वृक्ष के नीचे उन को तीन लाख रुपया मिला। उन्होंने राजा पूरणमल्ल को वह रुपया दिया कि वे अपने प्रबन्ध में मन्दिर बनवा दें। वे बादशाह के काम से कहीं चले गए और कई बरस तक न लौटे, तब रघुनाथ ओझा ने दुखित होकर अपने व्यय से मन्दिर बनवाया। जब पूरणमल्ल लौट कर आए और

मन्दिर बना देखा तो सभामंडप बनवा कर मन्दिर के द्वार पर अपनी प्रशस्ति लिख कर चले गए। यह देख कर रघुनाथ ओझा ने दुखित होकर कि रुपया भी गया कीर्त्ति भी गई, एक नई प्रशस्ति बनाई और बाहर के दरवाजे पर खुदवा कर लगा दी। वैद्यनाथ माहात्म्य भी मालूम होता है कि इन्हीं महात्मा का बनाया हुआ है क्योंकि उस में छिपा कर रघुनाथ ओझा को श्रीरामचन्द्रजी का अवतार लिखा है। प्रशस्ति का काव्य भी उत्तम नहीं है, जिस से बोध होता है कि ओझाजी श्रद्धालु थे किन्तु उद्धत पंडित नहीं थे। गिद्धौर के महाराज सर जयमंगल सिंह के.सी.एस.आई. कहते हैं कि पूरणमल्ल उन के पुरखा थे। एक विचित्र बात यहां और भी लिखने के योग्य है। गोवर्धन पर श्रीनाथजी का मन्दिर सं. 1556 में एक राजा पूरणमल्ल ने बनाया और यहां संवत 1652 सन 1595 ई. में एक पूरणमल्ल ने वैद्यनाथजी का मन्दिर बनाया। क्या यह मन्दिरों का काम पूरणमल्ल ही को परमेश्वर ने सौंपा है।

निज मन्दिर का लेख

अचल शशिशायके लसित भूमि शकाब्दके।
वलति रघुनाथके वहल पूजक श्रद्धया॥
विमल गुण चेतसा नृपति पूरणेनाचितं।
त्रिपुरहरमन्दिरं व्यरचि सर्वकामप्रदम्॥
नृपतिकृत पद्यमिदम्।

सभामंडप का लेख

चन्द्र बिम्ब प्रतीकाशं प्रासादं चातिशोभनम्।
हरिद्रा पीठके कर्तु काम्येस्मिन्नभवन्मुनिः॥1॥
न चेदं मानुषं कर्म चोलराज महामते।
भविष्यति न सन्देहः कदाचिच्च कलौ युगे॥2॥
मुनेः कल्याणमित्रस्य पार्थस्य च महात्मनः।
संवादं शृणु राजेन्द्र चेतिहासं पुरातनम्॥3॥
यदा कदाचिच्च कलौ रामांशेन द्विजन्मना।
कारयेत् वै मठवरो रावणेश्वर कानने॥4॥
स्वयं दाता समागत्यं प्रोद्भिद्य मठकूवरम्।
स करिष्यति यत्नेन प्रच्छन्नो नरविग्रहः॥5॥
आर्जवं शतसाहस्रमस्मिन् लिंगे प्रतिष्ठितम्।
वस्वंगुलं हि तल्लिंगं वेदिकोपरिचोत्थितम्॥6॥
अधोर्द्ध शिखराकारं योजनार्द्ध च विस्तृतम्।
लक्ष लिंगाद्भवं पुण्यं पूजनात्तस्य जायते॥7॥

छद्मना पद्मनाभेन वंचितस्तु दशाननात्।
रक्षणाय च देवानां दैत्यानां वै वधाय च॥8॥
कैलाशशिखरे देवी यदा मानवती सती।
तत्मिन् काले दसग्रीवद्वारस्थोनं निवांरयन्॥9॥
दोर्भिजग्राह शैलेन्द्रं सिंहनादं चकार सः।
तेन संत्रासिता देवी मानं तत्याज भामिनी॥10॥
तस्मिन्नुपरते शब्दे जहास परमेश्वरः।
व्रीड़ामवाप महतीं दशग्रीवं चुकोप सा॥11॥
शश्वत् प्रीतिमना भूत्वा दैत्यराजाय वै पुरा।
एवं वरं ददौ शंभुर्लङ्कागमनकारणम्॥12॥
तिस्रःकोट्योर्द्धकोटिश्च देवाःसंत्रासमाययुः।
स्मरन्ति देवीं संस्तूय कालरात्रिस्वरूपिणीम्॥13॥
कामरूपं परित्यज्य सा सन्ध्या तमुपागता।
हरिद्रापीठमासाद्य वासंश्चक्रे दशाननः॥14॥
एतस्मिन्नन्तरे राजन् द्विजरूपधरो हरिः।
हस्ते कृत्वा तु तल्लिंगं क्षणमात्रं स्थितस्तदा॥15॥
प्रस्रावं कुर्तमारेभे यावद्दंडं दशाननः।
तावत्स विप्रस्त्वरितो लिंगं तत्याज भूतले॥16॥

करततिभिरकर्षच्चै कवारं द्विवारं तृतयमपि गृहीत्वा कुंठिता तत्र शक्तिः।
करकलित शिरोग्रं जीवतान्ते तुरीयं दशवदन भुजानां जातु मन्युर्बभूव॥17॥
मुषित इव तटस्थः सोर्थसिद्धेर्निरस्तः स्मरजिशनिखंडं सप्तपातालविद्धः।
त्रिदिश युवतिभाले दत्तमन्दारमालो दशवदनविदारीप्रादुरासीदयोध्याम्॥18॥

गते किमपि काले तु रावणं भक्षितुं नृप।
निमित्तं रामासाद्य जहास परमेश्वरी॥19॥
नातः परतरं स्थानं गुह्यमुक्तं तु शम्भुना।
चतुरस्रं क्रोशमिदं चतुः किष्कुसमुच्छ्रितन्॥20॥
यदा यदा भवेद्र ग्लानिः स्थानेस्मिन् मनुजाधिप।
तदा तदावतरते रामः कमललोचनः॥21॥
यस्यैषा मानिनी देवी मातेव हितकारिणी।
स एव रामो विज्ञेयो मठं कारयिता चतो॥22॥

श्रीवैद्यनाथ चरणाब्ज मधुव्रतेन विप्रावतं स रघुनाथ गुणार्णविन।
प्राप्य प्रसादमजसीसमिदं विधायि प्रासाद सेतु वनवारि मठादि सर्वम्॥23॥

मन्दिर के चारों ओर और देवताओं के मन्दिर हैं। कहीं प्राचीन जैन मूर्त्तियां

हिन्दू मूर्त्ति बन कर पुजती हैं। एक पद्मावती देवी की मूर्त्ति बड़ी सुन्दर है जो सूर्य्यनारायण के नाम से पुजती है। यह मूर्त्ति पद्म पर बैठी है और दो बड़ी सुन्दर कमल की लता दोनों ओर बनी हैं। इस पर अत्यन्त प्राचीन पाली अक्षर में कुछ लिखा है जो मैंने श्री बाबू राजेन्द्रलाल के पास पढ़ने को भेजा है। दो भैरव की मूर्त्ति, जिस से एक तो किसी जैन सिद्ध की और एक जैन क्षेत्रपाल की है, बड़ी ही सुन्दर हैं। लोग कहते हैं कि भागलपुर जिले में किसी तालाब में से निकली थीं।

[हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और मोहन चन्द्रिका, आषाढ़ शुक्ल 1, सन 1880 ई.]

जनकपुर की यात्रा

आज दोपहर को पहुंचे। राह में रेल में कुछ कष्ट हुआ। क्यौंकि सेकेंड क्लास में तीन चार अंगरेज थे। बस उन में मैं अकेला 'जिमि दसनन महं जीभ बिचारी' कष्ट हुआ ही चाहै 'नर बानरहि संग कहु कैसे'। इस के वास्ते यह इन्तजाम होना जरूर है कि हर ट्रेन में एक गाड़ी जिस में फर्स्ट और सेकेंड दोनों ही हिन्दुस्तानियों ही के वास्ते रहै। इस विषय में मैंने रेलवे कम्पनी की कनफ्रेंस के सेक्रेटरी को लिखा तो है पर 'तूती की आवाज' अगर सुनी जाय। जैसी ही उन को पान सुरती की पचापच से नफरत है वैसी इधर चुरुट के धूम्र से। ऐसी ही अनेक प्रकृति विरुद्ध बाते हैं,जो केवल कष्टदायक हैं। एक बात और बहुत जरूरी है। ऐसे स्टेशनों पर जहां गाड़ी देर तक ठहरै फर्स्ट और सेकेंड क्लास के हिन्दुस्तानियों की पाखाना वगैरह की कोठरी अलग बननी चाहिए। क्यौंकि न कमोड का इन को अभ्यास न स्वतन्त्र जलादिक बिना इन को सुभीता। मगर गौर सभ्य बाजे तो बड़े सभ्य और दिल्लगीबाज मिलते हैं। अबकी बरसात में सेकेंड क्लास में एक साहब सोए थे मैं भी उसी में था। पानी की कुछ बौछार भीतर आई। साहब ने जाग कर पूछा Have you made water? मैंने कहा Not I but God इस पर बहुत ही प्रसन्न हुआ। वैसे ही अब की भी एक दिल्लगीबाज थे। मेरे पास एक हिन्दोस्तानी रईस थे उन को उन्होंने पूछा यह कौन हैं? मैंने उत्तर दिया He is a rich man. His fore-fathers were very rich bankers of my city. इस पर उस ने हंस कर कहा all of those fours? इस फिकरे पर मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ। मेरे बालों पर विग विग की और दो और सोए हुए थे उन पर स्त्री पर की फबती भी अच्छी हुई। तो बाजे तो भाग्य से ऐसे मिल जाते हैं मगर बाजे बड़े ही कष्टदायक मिलते हैं और हिन्दोस्तानियों से ऐसी घृणा करते हैं कि जी दुखी हो जाता है। रें रें कर के रात को बारह बजे बाढ़ पहुंचे। चार बजे तक सरदी में वहीं टपे। पांच बजे रेल फिर चली। घाट पर पहुंचे। वहां एक स्टीमर था। दरिद्र स्टीमर। जिस के सेकेंड क्लास में सिवा इस नाम के गुण कोई नहीं। बल्कि वहां बैठना भले आदमी के वास्ते एक शर्म की बात है। खैर वहीं बैठ कर पार लगे। वहां से तिरहुत की रेल वाह रे रेल। एक गाड़ी बालू में गाड़ी

थी उसी में तार घर और टिकट ऑफिस। तार दो दो कैंचीदार बांसों पर। सड़क आधे आधे औंधे गोलों पर बालू में राम भरोसे। गाड़ी ऊंचे नीचे पर छकड़ों की तरह लुढ़कती पुढ़कती चलती थी। छोटी इतनी कि जी चाहा कि सरस्वती की गुड़िया को दे दूं। सेकेंड क्लास महज वाहियात। भद्दा रंग, भद्दे काठ भद्दे लोहे। जगह सोने को कौन कहै बैठने को नहीं। रेल की तारीफ करूं कि तार की, कि स्टेशनों की, कि मास्टर की। झंडी मालूम होती थी कि कोई खेत वाला स्त्री की मैली फटी साड़ी का पल्ला फाड़ कर लकड़ी में लगा कर कौआ हांकता है। खैर दरभंगे पहुंचे। कल जनकपुर जायंगे। बाकी कल के खत में।

[हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और मोहन चन्द्रिका, आषाढ़ शुक्ल 1, सन 1880 ई.]

आख्यान

एक कहानी कुछ आपबीती कुछ जगबीती

प्रथम खेल

जमीने चमन गुल खिलाती है क्या क्या।
बदलता है रंग आसमां कैसे कैसे॥

हम कौन हैं और किस कुल में उत्पन्न हैं आप लोग पीछे जानेंगे। आप लोगों को क्या, किसी का रोना हो पढ़े चलिए, जी बहलाने से काम है। अभी मैं इतना ही कहता हूं कि मेरा जन्म जिस तिथि को हुआ वह जैन और वैदिक दोनों में बड़ा पवित्र दिन है। सं. 1930 में मैं जब तेईस बरस का था, एक दिन खिड़की पर बैठा था, बसन्त ऋतु, हवा ठंडी चलती थी? सांझ फूली हुई, आकाश में एक ओर चन्द्रमा दूसरी ओर सूर्य्य पर दोनों लाल लाल, अजब समा बंधा हुआ कसेरू, गंडेरी और फूल बेचने वाले सड़क पर पुकार रहे थे। मैं भी जवानी की उमंगों में चूर, जमाने के ऊंच नीच से बेखबर, अंपनी रसिकाई के नशे में मस्त, दुनिया के मुफ्तखोरे सिफारशियों से घिरा हुआ अपनी तारीफ सुन रहा था पर इस छोटी अवस्था में भी प्रेम को भली भांति पहचानता था।

कोई कहता था आप से सुन्दर संसार में नहीं, कोई कसमें खाता था, आप सा पंडित मैंने नहीं देखा, कोई पैगाम देता था चमेली जान आप पर मरती हैं, आप के देखे बिना तड़प रही हैं, कोई बोला हाय! आप का फलाना कवित्त पढ़ कर रात भर रोते रहे, दूसरे ने कहा आप की फलानी गजल लाला रामदास की सैर में जिस वक्त प्यारी ने गाई सारी मजलिस लोट-पोट हो गई, तीसरा ठंडी सांस भर कर बोला धन्य है आप भी गनीमत हैं बस क्या कहें कोई जी से पूछे, चौथा बोला आप की अंगूठी का पन्ना क्या है कांच का टुकड़ा है या कोई ताजी तोड़ी हुई पत्ती है, एक मीर साहब चिड़िया वाले ने चोंच खोली, बेपर की उड़ाई बोले कि आप के कबूतर किससे कम है वल्लाह कबूतर नहीं परीजाद हैं, खिलौने हैं, तसवीर हैं। हुमा पर साया पड़े तो उसे शाहबाज बना दें, ऐसे ही खूबसूरत जानवरों में ईसाई लोग खुदा का नूर उतरना मानते हैं, इन को उड़ते देख कर किस के होश नहीं उड़ते, कसम कलामुल्लाह शरीफ की मटियाबुर्जवालों ने ऐसे जानवर ख्वाब में नहीं देखे। एक दलाल घोड़े की

तारीफ कर उठा, जौहरी ने खच्चरों की तरफ बाग मोड़ी, बजाज बाग की स्तुति में फूल बूटे कतरने लगा, सिद्धान्त यह कि मैं बिचारा अकेला और वाह वाहें इतनी कि चारों ओर से मुझे दबाए लेती थीं और मेरे ऊपर गिरी क्या फिसली पड़ती थीं।

यह तो दीवानखाने का हाल हुआ अब सीढ़ी का तमाशा देखिए। चार पांच हिन्दू, चार पांच मुसलमान सिपाही, एक जमादार, दो तीन उम्मेदवार और दस बीस उठल्लू के चूल्हे, कोई खड़ा है, कोई बैठा है, हाय रुपया हाय रुपया सब की जबान पर, पर इस में सब ऐसे ही नहीं कोई कोई सच्चा स्वामिभक्त भी है। कोई रंडी के भड़ुए से लड़ता है, रुपये में दो आना न दोगे तो सरकार से ऐसी बुराई करेंगे कि फिर बीबी का इस दरबार में दरशन भी दुर्लभ हो जायगा, कोई बजाज से कहता है कि वह काली बनात हमें न ओढ़ाओगे तो बरसों पड़े झूलोगे रुपये के नाम खाक भी न मिलेगी, कोई दलाल से अलग सट्टा-बट्टा लगा रहा है, कोई इस बात पर चूर है कि मालिक का हम से बढ़ कर कोई भेदी नहीं जो रुपया कर्ज आता है हमारी मारफत आता है, दूसरा कहता है बचा हमारे आगे तुम क्या पूचल चर हो औरतों का भुगतान सब मैं ही करता हूं।

इन सबों में से एक मनुष्य को आप लोग पहचान रखिए, इस से बहुत काम पड़ेगा। यह नाटा खोटा अच्छे हाथ पैर का सांवले रंग का आदमी है, बड़ी मोंछ, छोटी आंखें, कछाड़ा कसे, लाल पगड़ी बांधे, हरा दुपट्टा कमर में लपेटे, सफेद दुपट्टा ओढ़े, जात का कुनबी है। इस का नाम होली है। होली आजकल मेरे बहुत मुंह लग रहा है, इसी से जो बात किसी को मुझ तक पहुंचानी होती है वह लोग उस से कहते हैं। रेवड़ी के वास्ते मसजिद गिरानी इसी का काम है।..........

[कविवचन सुधा, वैशाख कृष्ण 4, सन 1876 ई.]

मदालसोपाख्यान

(मार्कन्डेय पुराण से संगृहीत)

जिसे

बाबू हरिश्चन्द्र ने

अपनी पत्रिका बालाबोधिनी से लेकर

युवराज

श्रीयुत प्रिंस आव वेल्स बहादुर

के

शुभागमन के आनन्द के अवसर में

बालिकाओं को

वितरण के अर्थ अलग छपवाया

जिस लड़की को यह पुस्तक दी जाय उस से अध्यापक लोग
5 बेर कहला लें ''राजपुत्र चिरंजीव''।

Benares Light Press

बनारस लाइट छापाखाना में मुद्रित हुआ।

मदालसा

(उपाख्यान मार्कण्डेयपुराण से)

पुराने जमाने में शत्रुजित नाम का एक राजा था और उसको अरिविदारण कृतध्वज नाम का एक लड़का था। अश्वतर नाग के दो लड़के ब्राह्मण बन कर उस के साथ खेलने आते थे। राजकुमार से उन से ऐसी प्रीति हो गई थी कि वे रात दिन नाग लोक छोड़ कर यहीं भूले रहते थे। एक दिन नागों के राजा अश्वतर ने अपने लड़कों से पूछा 'प्यारे लड़कों, आज कल तुम लोग नाग लोक छोड़ कर मृत्यु लोक ही में क्यों रमे रहते हो?' वे बोले 'पिता, शत्रुजित राजा के कुमार कृतध्वज ने शिष्टाचार और प्रीति से हमारा मन ऐसा मोहा है कि पाताल उस के बिना गर्म और उस के मिलने से सूर्य्य ठंढा मालूम पड़ता है।' पिता ने कहा 'निस्सन्देह वह पुरुष धन्य है जिसको ऐसा मित्रों को सुखदाई पुत्र हुआ है, भला ऐसे सच्चे सुहृत् का तुम लोगों ने कुछ उपकार भी किया?' लड़के कहने लगे 'भला हम लोग उस का क्या उपकार करेंगे, धन, जन, विद्या सब में वह हम से बढ़ चढ़ के हैं और जो उस का एक काम है उस को ब्रह्मादिक ईश्वर के सिवा कोई कर नहीं सकता।' नागराज ने कहा 'भला हम सुनैं तो सही, ऐसा कौन काम है जो आदमी न कर सकै। किसी प्रकार भी तुम लोग मित्र का प्रति उपकार कर सको तो मैं अपने को ऋण से छूटा समझूं।' नाग पुत्र बोले 'उस मित्र के पिता के पास उसकी जवानी में गालव नाम का ब्राह्मण एक बहुत बढ़िया घोड़ा लेकर आया और बोला कि महाराज एक राक्षस हम लोगों को बहुत दुःख देता है, नित्य तप में विघ्न कर कर के उस ने हमारी नाकों में दम कर रक्खा है और हम लोगों ने बड़े कष्ट से तप किया है इस से उस को शाप देकर तप नहीं न्यून किया चाहते। एक दिन बड़े दुखी होकर जो मैंने एक लम्बी ठंढी सांस भरी तो देखता हूं कि यह घोड़ा आसमान से उतरा चला आता है, साथ ही आकाशवाणी भी सुनी कि इस घोड़े की गति पृथ्वी और आकाश पाताल सब जगह है। और ऐसा घोड़ा पृथ्वी पर दूसरा नहीं है। चाल में हवा को भी यह पीछे छोड़ता हुआ संसारियों के मन की भांति उड़ा चलता है। इस का नाम कुवलय है, इसे राजा शत्रुजित को दो और उस का पुत्र इस घोड़े पर सवार होकर उस राक्षस को मारै। इस से उस

राजा की बड़ी कीर्त्ति होगी। सो अब मैं आप के पास आया हूं। राजा ने कुमार को उसी समय सज सजा कर असीस दी और ब्राह्मण के साथ बिदा किया। राजकुमार गालव के आश्रम में रहने लगा। एक दिन वह राक्षस जंगली सूअर बन कर आया और जब कुंअर ने उस के पीछे धनुष तान कर घोड़ा दौड़ाया तो वह एक घने जंगल में भागा। भागते भागते वह बहुत दूर जाकर एक गड़हे में गिर पड़ा तो कुंअर भी साथ ही कूदा। अंधेरे में कुंअर को कुछ भी नहीं देखाता था पर घोड़ा फेंके चला जाता था। जब उंजेला आया तो वह सूअर न दिखाई पड़ा, सिर्फ एक बड़ा रत्नों से जड़ा घर सामने खड़ा था। उस के दरवाजे की सीढ़ी पर एक जवान सुन्दर स्त्री चढ़ी जाती थी। कुंअर भी दरवाजे पर घोड़ा बांध बेधड़क उस मकान में घुसा और एक बड़ी सजी सजाई जड़ाऊ दालान में हिंडोला खाट पर उसे एक कन्या दिखाई पड़ी और जो स्त्री उसे सीढ़ी पर चढ़ती मिली थी, वह भी उस के पास बैठी थी। कुंअर को देखते ही वह कन्या बेहोश हो गई। उस स्त्री और कुंअर ने किसी तरह उस को सावधान किया। तब कुंअर उस सखी से उन लोगों का नांव गांव और बेहोशी का कारण पूछने लगा। स्त्री बोली यह गन्धर्वों के राजा विश्वावसु की कन्या है। इस को पातालकेतु नाम का दैत्य माया से उठा लाया है। अगली तेरस को वह दुष्ट इस से ब्याह करने को था और जब इस दुःख से यह प्राण देने लगी तो आकाशवाणी हुई कि प्राण मत दे। गालव के आश्रम में जिस राजकुंअर से यह मारा जायगा वही तेरा हाथ पीला करैगा। मैं इसकी सखी विन्ध्यवान् की पुत्री कुंडला हूं। मेरे पति पुष्कर माली को जब शम्भू दैत्य ने वध कर डाला तब से धर्म्म में लगी हूं। इस के मूर्च्छा का कारण यह है कि आज मैं खबर ले आई हूं कि गालव के आश्रम में किसी ने उस सूअर बने हुए दैत्य को बान से मारा है। अब वही इसका पति होगा पर यह तुम्हारे रूप से मोह गई है और यह सोचती है कि हाय जिस को मैं चाहती हूं उस से न ब्याही जाऊंगी। अब आप कौन हैं, कहिए? राजकुमार ने सब हाल कहा और अपना राक्षस का मारना वर्णन किया। सुनते ही उस कन्या ने घूंघट कर लिया और बहुत प्रसन्न होकर कुंडला से बोली सखी, सुरभी का कहना क्या झूठ हो सकता है। कुंडला ने उसी समय तुंबरू गन्धर्व का ध्यान किया। उस ने आते ही प्रसन्नता से अग्नि को साक्षी देकर दोनों का हाथ दोनों को पकड़ा दिया और आप तप करने चला गया। कुंडला भी अपनी सखी को गले लगा कर दुलहा दुलहिन दोनों को कुछ हित की बातैं सिखा कर तप करने गई। कुंअर उस कन्या (मदालसा) को घोड़े पर बिठा कर उस पाताल की गुफा से बाहर निकलने लगा पर उसी क्षण राक्षसों की फौज ने चोर चोर कर आन घेरा और मदालसा को उस से छुड़ाना चाहा। कुंअर ने बहादुरी से उन सबों को बात की बात में मार गिराया और आप राजी खुशी अपने घर आया। पिता के पैरों पर पड़ कर सब हाल कह सुनाया। राजा रानी बहू बेटा पाकर बड़े प्रसन्न हुए और सब लोग सुख से रहने लगे। राजा ने कुंअर को आज्ञा

दे दी थी कि तुम नित्य घोड़े पर चढ़ कर मुनियों की रखवाली किया करो। कुंअर घोड़े पर चढ़ा एक दिन यमुना किनारे के मुनियों की रखवाली कर रहा था कि एक आश्रम देखा। इस आश्रम में उस पातालकेतु राक्षस का भाई तालकेतु कपटी मुनि बन कर बैठा था। कुंअर को देखते ही पुराना बैर याद कर के वह बोला कि कुंअर तुम अपने गहिने हम को दो और जब तक हम पानी में जाकर वरुण की पूजा कर के न फिरैं तब तक तुम हमारे आश्रम की चौकी दो। राजपुत्र ने सब गहना उतार दिया और उस कुटीचर की कुटी का पहरा देने लगा। वह दुष्ट गहना लेकर जल में डूब कर माया से कुंअर के महलों में गया और मदालसा से बोला कि हमारे आश्रम में कृतध्वज को एक राक्षस ने मार डाला और हिनहिनाते हुए उस बिचारे घोड़े को भी घसीट ले गया। शूद्र तपसियों से क्रिया करा के उस का गहना लेकर मैं तुम को देने आया हूं, यह लो। इतना कह कर आभूषण सब फेंक दिए और आप चलता हुआ। मदालसा ने उसी समय पति के दुःख से प्राण त्याग किए। महल में हाहाकार मच गया, जिधर देखो उधर कुहराम पड़ा हुआ था और दर दीवार से हाय कुंअर हाय बहू की आवाज आती थी। राजा शत्रुजित धीरज रख कर बोला कि इतना क्यौं रोते हौ? मुनियों की रक्षा में हमारा पुत्र यश कमा कर मारा गया, इस का क्या सोच है। उसकी मां भी बोली कि बड़ों का यश बढ़ा कर जो क्षत्री युद्ध में मरै उस का क्या रोना और ऐसी बहू का भी क्या सोच जो पति के सब सुख भोग कर अन्त में पति लोक उस के साथ ही गई, उठो क्रिया करो और सोच दूर करो। राजा ने नगर के बाहर सब लोक रीति किया और बेटे बहू को पानी देकर घर फिरा। इधर कपटी मुनि भी कुंअर से आकर बोला कि मेरा काम हो गया, आप का कल्याण हो, अब घर सिधारिए। कुंअर जब नगर में आया तो सब को उदास पाया। कुंअर को देखते ही बधाई बधाई का चारों ओर से शोर मच गया। कुंअर बहुत चकपकाया कि यह मामला क्या है? अन्त में घर पर गया और सब हाल सुन कर बहुत ही घबड़ाया। मां बाप के डर से रो तो न सका पर अपनी पतिव्रता प्रान प्यारी के बिछुड़ने से बहुत ही उदास हो गया और यह प्रतिज्ञा कर ली कि मैं प्रान तो नहीं देता पर अब किसी दूसरी स्त्री से जन्म भर न मिलूंगा। तब से वह इस सुख से वंचित है और यदि संसार में उस का कोई हित है तो इतना ही है कि मदालसा उस को फिर मिलै पर यह सिवा ईश्वर के कौन कर सकता है?' नागराज ने कहा 'पुत्र ईश्वर की दया और मनुष्य के परिश्रम के आगे कोई बात कठिन नहीं।'

उसी दिन से अश्वतर ने हिमालय पर्वत पर सरस्वती की आराधना करनी प्रारम्भ कर दी। जब सरस्वती प्रसन्न हुईं कहा 'वर मांगो' तो नागराज ने यह वर लिया कि उन्हें और उनके भाई कम्बल को संगीत विद्या सम्पूर्ण रीति से आ जाय। वर पाकर कम्बल अश्वतर दोनों कैलाश को गए और' गा कर श्री भोलानाथ सदाशिव को ऐसा रिझाया कि महादेव पार्वती साथ ही बोले 'मांगो क्या चाहते हो।' दोनों

ने हाथ जोड़ कर कहा ''नाथ! कुवलयाश्व की स्त्री मदालसा उसी रूप और अवस्था से हमारे घर में फिर जन्म ले।'' 'एवमस्तु' त्रिनयनजी ने कहा और यह भी आज्ञा दिया कि तुम्हारी सांस से आज से तीसरे दिन मदालसा उत्पन्न होगी। तीसरे दिन मदालसा का जब जन्म हुआ तो नागाधिप ने सब से छिपा कर उस को निज के जनाने में रक्खा। एक दिन बातों बात में अश्वतर ने कहा 'बेटा भला हम भी तुम्हारे मित्र को देखें'। नाग कुमार उसी समय कुवलयाश्व के पास आए और बोले 'हम आप से कुछ जांचते हैं'। कृतध्वज बोला 'मित्र, हमारे धन्य भाग, इतने दिन तक आप लोग मेरे साथ रहे, कभी कुछ न कहा, आज भला इतना कहा तो, मैं राज्य और प्राण भी देने को प्रस्तुत हूं।' कुमारों ने कहा 'मेरे पिताजी आप को देखा चाहते हैं'। राजकुमार उन ब्राह्मण बने हुए नागकुमारों के साथ चला और वे दोनों उस का हाथ पकड़ कर यमुना में कूद पड़े। जब पैर तल पर लगे और कुंअर ने आंख खोली तो देखा कि एक रत्नमय नगरी में खड़े हैं। नागपुत्र कुमार को लेकर नागेश्वर के सामने गए। कुमार नाग लोगों का वैभव देख कर चकित हो गया। उस के नगर के जौहरी जितनी बड़ी मनियों का ध्यान भी नहीं कर सकते, वैसी वहां अनेक देखने में आईं। नाग सम्राट को तीनों कुमारों ने साष्टाङ्ग दंडवत किया। अश्वतर ने राजकुंअर का सिर सूंघा और गोद में बैठा कर बोले 'पुत्र, तुम धन्य हौ, आज तक तुम्हारे गुणों को अपने पुत्रों के मुख से सर्व्वदा सुनने से तुम्हें देखने की जो मेरी लालसा थी वह पूरी हुई, कहो कुछ हम भी तुम्हारा उपकार कर सकते हैं।' कुंअर ने हाथ जोड़ कर कहा 'आप की कृपा से मेरे सब काम पूर्ण हैं, यदि वर दिया ही चाहते हैं तो इतना ही दीजिए कि मेरी मति सदा सुपथ पर चले। नागराज ने कहा 'तुम्हारी मति तो आप ही सुपथ पर है, कोई दूसरा वर मांगो।' कुंअर नहीं मांगता था। गरज इसी संवाद में अवसर पाकर नाग नन्दन बोले 'पिता इनको तो केवल एक मात्र दुःख है, जो मैंने आप से पूर्व्व में कहा था'। कम्बलानुज उसी समय महल में से मदालसा को ले आए और कुमार का हाथ पकड़ा दिया। उस समय कुमार को जो अलौकिक आनन्द हुआ वह कौन वर्णन कर सकता है। यदि ऐसे ही मरा हुआ कोई प्राणप्रिय मित्र मिलै तो उसका अनुभव किया जाय। पन्नगाधिपति ने पाताल में बड़ा उत्सव कर के उन दोनों का फिर से पाणिग्रहण कराया। नाग नन्दनों ने भी बड़ा आनन्द क्रिया और बड़े धूमधाम से कुंअर की दावतें हुईं। सारा नाग लोक उमड़ पड़ा था और कुंअर को सब बधाई देते थे। कुंडला जो तप के बल से अब विद्याधरी हो गई थी, मदालसा के गले से लगी और बधाई देकर बोली 'बहिन, मेरे धन्य भाग हैं कि तुझे जीती जागती भली चंगी अपने पति के साथ देखती हूं भगवान करे तू सीली सपूती ठंढी सुहागिन हो और धन जन पूत लक्ष्मी से सदा से सदा सुखी रहै'। अश्वतर का भाई कम्बल और और भी बड़े बड़े नाग लोग इस उत्सव में आए थे और कुंअर से मिल कर सब प्रसन्न हुए।

मणिधर मुकुट मणि अश्वतर ने कुवलयाश्व को बहुत से मणि दिव्य वस्त्र चन्दन

इत्यादि देकर बड़ी प्रीति से धूमधाम से विदा किया और एक सज्जन मित्र का उपकार कर के अपने को कृतकृत्य समझा और कुंअर से बहुत तरह से विनती कर के कहा कि सदा आना जाना बनाए रहना और पिता से हमारा बहुत प्रणाम कहना—तुम्हारे स्नेह ने हमें बिना सैन्य जीत लिया है। नाग पत्नी नाग कन्याओं ने बहुत सा गहना कपड़ा दे उस का सिंगार किया और असीस देकर आंखों में आंसू भर के अपनी निज बेटी की भांति विदा किया। कुंअर हंसी खुशी गाजे बाजे से उसी धूमधाम के साथ घर पहुंचा। मां बाप का बहू बेटे को देख कर ऐसा कलेजा ठंढा हुआ जैसे किसी को खोई हुई सम्पत्ति मिलै। राजा के सारे राज्य में आनन्द फैल गया और घर घर बधाइयां होने लगीं। कुंअर को राज का बोझ सुपुर्द कर के राजा भी सुचित हुआ और कुंअर भी मदालसा के साथ सुख से काल बिताने लगा। काल पाकर राजा रानी परलोक को सिधारे और कुवलयाश्व राजा और मदालसा रानी हुई। राज का प्रबन्ध कुवलयाश्व ने बहुत अच्छा किया। प्रजा सब सुखी और चोर और शत्रु दुःखी। कुवलयाश्व मदालसा के साथ महल बगीचे वन पहाड़ों और नदियों सुन्दर स्थानों में सुख से काल बिताता था। समय से मदालसा को एक पुत्र हुआ। नामकरण के दिन राजा ने जब उसका सुबाहु नाम रक्खा तो मदालसा हंसी। राजा ने पूछा 'ऐसे अवसर में तुम हंसती क्यों हो?' मदालसा ने कहा 'सुबाहु किसकी संज्ञा है इस जीव की कि इस देह की? देह की कहो तो हो नहीं सकती क्यौंकि यह मेरा हाथ, यह मेरा देह, यह सब लोग कहते हैं इस से देह का कोई दूसरा अभिमानी अलग मालूम होता है और जो कहो जीव की है तो जीव को तो बाहु हुई नहीं, वह तो निर्लेप है। फिर इसकी सुबाहु संज्ञा क्यौं? मेरे जान यह नामकरण इसका व्यर्थ है।' राजा को ऐसे नामकरण के आनन्द के अवसर में उस का यह ज्ञान छांटना जरा बुरा मालूम हुआ पर चुप कर रहा। मदालसा जब बालक को खिलाने लगती तो यह कह कर खिलाती।

वैत

अरे जीव तू आतमा शुद्ध है। निरंजन है तू और तू बुद्ध है॥
फंसा है तू आकर के भौजाल में। निराला है तू इनसे पर चाल में॥
न माया में इनके अरे कुछ भी भूल। न सपने की संपत पै इतना तू फूल॥
तेरा कोई दुनिया में साथी नहीं। तेरा राज घोड़ा व हाथी नहीं॥

चौपाई

पुत्र भूल तू जग में आया। माया ने तुझको भरमाया॥
तू है अलख निरंजन बेटा। जग माया ने तुझै लपेटा॥
है तू इस शरीर से न्यारा। परमातमा शुद्ध अविकारा॥
वही जतन तू कर सुत मेरे। जिससे छूटैं बन्धन तेरे॥

छोटेपन ही से ज्ञान के संस्कार से बड़ा होते ही वह लड़का संसार को छोड़ कर वन में चला गया। और उस के पीछे दो लड़के और भी हुए और वे भी बालकपन ही से ज्ञान का उपदेश सुनते सुनते जब बड़े हुए तो संसार से उदास होकर घर छोड़ गए। क्यौंकि कच्चे कलेज़े में जो बात सिखाई जाती है बड़े होने पर उसका असर चित्त पर बहुत रहता है। राजा मदालसा के इस कृत्य से बहुत उदास रहता था। जब चौथा लड़का हुआ और उसका नामकरण करने लगा तो मदालसा से बोला कि देवी, अब की तुम्हीं इसका नाम रक्खो क्यौंकि उन तीनों के हमारे नाम रखने से तुम हंसती थीं। मदालसा ने उस लड़के का नाम अलर्क रक्खा। राजा ने पूछा 'अलर्क शब्द का तो कुछ अर्थ ही नहीं ऐसा नाम क्यौं?' मदालसा ने कहा 'पुकारने के वास्ते कोई संज्ञा रखनी चाहिए, इस में सार्थक और निरर्थक क्या?' एक दिन राजा ने देखा कि उस को भी वही सब कह कह कर खिला रही है, तो राजा को बड़ा ही क्षोभ हुआ। हाथ जोड़ कर बोला 'चंडिके, यह बालक हमैं दान कर दो, तीन को तुम मिट्टी में मिला चुकी यही एक बाकी रहा है।' पति की इच्छानुसार मदालसा ने उसे ज्ञानोपदेश न कर के उस के बदले अनेक प्रकार की नीति और धर्म पढ़ाया, जिस के प्रताप से किसी समय अलर्क बड़ा प्रतापी हुआ क्यौंकि माता की शिक्षा सब शिक्षा से बढ़ कर है। राजा रानी ने अलर्क को समर्थ देख कर राजा का बोझ सौंप दिया और आप तप करने वन में चले गए। यही अलर्क जब राज-काज में भूल कर संसार में फंस गया था तो मदालसा के दिए हुए यन्त्र को (जिस पर लिखा था ''सम्पत्ति में औदार्य, विपत्ति में धैर्य, संग्राम में शौर्य और सब समय में जिसे ज्ञान नहीं, उसका संसार में जन्म व्यर्थ है। संग, काम, क्रोध, लोभ, मोह ये पांचों दुस्त्यज हैं, इस से इन को—(1) सत्, (2) स्वकीया, (3) अपनी अकृतज्ञता, (4) सिद्धान्त, (5) भगवान की ओर प्रयुक्त करै, पढ़ कर और अपने बड़े भाई सुबाहु की कृपा और दत्तात्रेयजी के उपदेश से बड़ा ज्ञानी, गुणी, प्रतापी और प्रसिद्ध राजा हुआ है।

[सन 1874 ई. में बालाबोधिनी में प्रकाशित।
सन 1875 ई. में बनारस लाइट प्रेस से पुस्तिकाकार प्रकाशित]

भाषा सम्बन्धी लेख

हिन्दी कविता

ऐसा निश्चय है कि हिन्दी भाषा प्राकृत भाषा से बिगड़ती हुई बनी होगी परन्तु इस के कोई पुष्ट प्रमाण नहीं केवल हिन्दी कविता में बहुत से प्राकृत शब्द मिलते हैं इस से निश्चय हो सकता है कि जैसा किति कान्ह गव्व इत्यादि। सब से पुरानी हिन्दी की कविता चन्द कवि की है जो महाराज पृथ्वीराज का कवि था। इसकी कविता के पहिले की कोई कविता नहीं मिलती। एक कोई बैताल कवि हुआ है और उस ने बहुत सी छप्पय बनाई। और उसकी भाषा भी पुरानी है पर यह निश्चय नहीं होता कि वह ठीक किस समय में हुआ था। चन्द की कविता प्राकृत भाषा की सी है। जैसा "गज खम्म छुटत उभदद मदं। मनो गाजत गज्ज अषाढ़ मदं॥ इत्यादि" यह कविता बहुत मधुर नहीं है। इस के पीछे फिर कौन कौन कवि हुए यह निश्चय नहीं परन्तु मलिक मुहम्मद जायसी ने जो पदमावत बनाई है वह कविता उस काल के पीछे की कविता कही जा सकती है। यह कविता मीठी और सीधी बनी है और इस के पीछे कबीर और नान्हक की कविता है। इस काल तक कविता की कोई बंधी भाषा नहीं थी सब लोग सीधी बोली में कविता करते थे। राजाधिराज अकबर का समय हिन्दी कविता की श्रीवृद्धि का समय था और नरहरि कवि उसी समय में हुए। नरहरि कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और उन के वंश के लोग अब तक कवि हैं। अकबर ने नरहरि को महापात्र का पद दिया था और उस समय में हिन्दी कविता में व्रजभाषा मिल गई थी परन्तु व्रजभाषा में कविता करने का नियम सूरदासजी ने बांधा है जो इसी अकबर के समय हुए थे। सूरदासजी का जीवन वृत्त हम लोग विगत वर्ष के किसी बिन्दु में लिख चुके हैं। वे भाषा के कवियों के मुकुट मणि और महाराज थे। प्रायः नये कवियों की कविता में वही उपमा और ... मिलते हैं जो सूरदास गान कर गए हैं। हिन्दी की बोलचाल और प्रबन्ध के पहिले लिखने वाले यही थे। यों तो इनके कुछ पूर्व्व से ही वृन्दावन में व्रजभाषा में कविता बनती थी पर प्रसिद्ध इन्हीं के समय में हुई और इनके समकालीन बहुत से कवि हुए। सूरदासजी ने तो स्वभावोक्ति बहुत कही हैं पर और भाषा के कवियों का ध्यान इधर न रहा और मुसलमानी राज्य के ठीक समय में होने के कारण उन लोगों में बड़ी लम्बी लम्बी उपमा और अक्षर मैत्री

और बड़े बड़े शब्द कविता में भर दिये और हिन्दी कविता के तादृश आदर न पाने का यही कारण हुआ। अकबर के समय से औरंगजेब के समय तक बहुत से कवि हुए और वैष्णवों में कविता की चरचा की विशेषता से व्रजभाषा ही कविता की मुख्य भाषा रही और काव्यादर्श इत्यादि ग्रन्थों का मत लेकर हिन्दी कविता के शास्त्र भी बने परन्तु जैसा कवियों ने अलंकार और नायिका भेद में जी लगाया वैसा व्याकरण की ओर न झुके और यही कारण है कि मनमानी भाषा और मनमाने शब्द कविता में मिल गए। इसी समय के अन्त भाग में तुलसीदासजी हुए पर इनने व्रजभाषा का नियम अपनी भाषा में न रक्खा। उस काल के राजा लोगों का भी हिन्दी कविपथ का व्यसन बढ़ा और कवियों को नौकर रखने लगे और जयपुर और बुन्देलखंड में बहुत से कवि रहने लगे और यही कारण हुआ कि पीछे हिन्दी कविता में व्रजभाषा और बुन्देलखंडी बोली समभाव से मिल गई। इस समय के प्रसिद्ध कवियों में देव बड़ा कवि हुआ जिस के बावन ग्रन्थ अद्यावधि मिलते हैं और इस ने अपनी भाषा में कठोर शब्द भी नहीं भरे। इस काल में कविता का चरचा ऐसा था कि मुसलमान लोग भी हिन्दी कविता करने लगे नेवाज, नवी, सेख, आलम, जहान, पीतम, रहीम, जैनददी महम्मद, लालखा और ताज इत्यादि अनेक उत्तम कवि मुसलमानों में हुए और इन लोगों ने कई ग्रन्थ भी बनाए। कहते हैं कि सेख और ताज ये दो स्त्रियों के उपनाम हैं वह कविता स्त्रियों की है। उस समय में अनेक हिन्दू स्त्री भी कवि हुए जैसा गंगाबाई, मीराबाई, चतुरकुंअर, सोनादासी और रामदासी इत्यादि। मुसलमानों में गाने के प्रबन्ध बनाने वाले भी उस समय से बहुत लोग हुए जैसा मियां तानसेन इत्यादि पर उस काल में क्या हिन्दू क्या मुसलमान किसी कवि ने कविता की रीति सुधारने और शब्दों के नियम बनाने में चित्त न दिया। नाटक का तो ये नाम भी न जानते थे दो नाटक उस समय के बने हैं पर वे दोनों कथा की भांति हैं नाटकपन उस में नहीं है। उन में एक तो प्रबोध चन्दोदय भाषा में है और दूसरे में बाज कवि या शकुन्तला है। इस समय के कवियों का चित्त स्वभावोक्ति पर तनिक नहीं जाता था। केवल बड़े बड़े शब्दाडम्बर करते थे और इन शब्दाडम्बरों का पद्माकर राजा है और इसने वर्ण मैत्री के हेतु अनेक व्यर्थ शब्द अपने काव्य में भर दिए हैं और फारसी के भी बहुत शब्द मिला दिए और इस की देखा देखी और कवि भी ऐसा करने लगे। केशवदास ने तब भी कवि की मर्याद बांधी और उस की मर्याद को बहुत लोग अब तक मानते हैं। उस समय में श्रीवृन्दावन में अनेक कवि अच्छे हुए और उनकी कविता सीधी स्वभावोक्ति लिए और रसभरी होती थी। जिन में नागरीदासजी इत्यादि कई लोग बहुत अच्छे हुए जिनकी कविता बहुत उत्तम है परन्तु नाटक बनाने में किसी ने जोर न लगाया। इस काल में नाटक एक दो बने जिन में एक हास्यार्णव था। यद्यपि यह शुद्ध नाटक की चाल से नहीं है तथापि कुछ नाटक की चाल छूकर

बना है पर बहुत असभ्य शब्द से भरा है। इसी से कवि ने उस में अपना नाम नहीं रक्खा पर अनुमान होता है कि रघुनाथ कवि का है। नाटक सब के पहिले जो हिन्दी भाषा में पुरानी ठीक नाटक की रीति से बना वह नहुष नाटक श्री गिरिधरदास कवि का है और इस के पीछे आजकल तो अनेक नाटक बने और अब तो भाषा के अनेक व्याकरण और प्रबन्ध की पुस्तक बन गई। साम्प्रत काल के कवियों में श्री गिरिधरदास महान कवि हुए क्यौंकि व्याकरण और कोष और नाटक हिन्दी में पहिले इन्हीं ने बनाए और इस काल में पजनेस ठाकुर रघुनाथ इत्यादि अनेक कवि कुछ पहिले हुए पर किसी ने नई बात नहीं की वही लीक पीटते चले गए। अब भी बहुत कवि हैं और इस भाषा की अच्छी वृद्धि है पर अब हिन्दी खड़ी बोली में पद्य कविता नहीं बनी पर जो ऐसी वृद्धि है तो आशा है कि यह भाषा सुधर जायगी।

['कविवचन सुधा', 10 जनवरी, सन 1872 ई.]

हिन्दी भाषा

(हिन्दी भाषा के विभाग देश देशान्तर की भाषा की कविता आदि का उदाहरण, मिश्रित और शुद्ध हिन्दी का वर्णन)

भाषाओं के तीन विभाग होते हैं यथा घर में बोलने की भाषा कविता की भाषा और लिखने की भाषा। अब पश्चिमोत्तर देश में घर में बोलने की भाषा कौन है। यह निश्चय नहीं होता क्यौंकि दिल्ली प्रान्त के वा अन्य नगरों में भी खत्रियों वा पछाही अगरवालों वा और पछाही जातियों के अतिरिक्त घर में हिन्दी कोई नहीं बोलते वरंच यहां पर तो कोस कोस पर भाषा बदलती है। इसी बनारस में जो बनारस के पुराने रहवासी हैं उन के घर में विचित्र विचित्र बोलियां बोली जाती हैं जैसे पुरबियों की बोली आईला जाईला प्रसिद्ध ही है परन्तु यहां के पुराने कसेरे लोग 'बाटः' शब्द का बहुत प्रयोग करते हैं जैसा 'आवात हई' के स्थान पर 'आवत बाटी' 'का करत होवः' वा 'का करल' के स्थान पर 'का करत बाट्य वा बाटो वाटः'। इस दशा में बनारस की मुख्य बोली यह और वह बोली है जिस के उदाहरण में नं. 7 कलकत्ते की शोभा में मिलेगा अर्थात वह पुरबिए बनियों की बोली है। वरंच यह बोली यहां के प्रसिद्ध धनिकों के घर में बोली जाती है परन्तु इन दोनों बोलियों को छोड़ कर बनारस में बदमाशों की भाषा अलग ही है जिस में कितने ऐसे व्यर्थ शब्द हैं जिन का न सिर है न पैर है जैसा झांझ, गोजर इत्यादि वरन् वे जिस ईकारान्त (वा कभी कभी ओकारान्त वा कदाचित् आकारान्त) शब्द के पीछे क लगा देंगे उसका अर्थ गाली होगा। इसका विशेष वर्णन हम काशी की दशा के वर्णन में लिखैंगे पर यहां इतना ही समझ लेना चाहिए कि इनकी भाषा भी अब काशी की भाषा में स्वतन्त्र हो गई है।

कोई कहते हैं कि काशी की सब से प्राचीन भाषा वह है जो डोम लोग बोलते हैं क्यौंकि वे ही यहां के प्राचीन वासी हैं और उनकी भाषा में प्रायः दीर्घ मात्रा होती है। जो हो यह तो सिद्धान्त है कि जो वहां के शिष्ट लोग बोलते हैं वह परदेशी भाषा है और यहां पश्चिम से आई है। काशी के उस पार ही रामनगर में यहां की बोली से कुछ विलक्षण बोली बोली जाती है और वह मिर्जापुर की भाषा से बहुत मिलती है। ऐसे ही पश्चिमोत्तर देश में अनेक भाषा हैं पर उन में ऐसे नगर थोड़े

हैं जिन में आबाल वृद्ध वनिता सब खड़ी भाषा बोलते हों अतएव यद्यपि काशी ऐसे पूर्व्व प्रदेशों की मातृभाषा वा घर में बोलचाल की भाषा हिन्दी है यह तो हम नहीं कह सकते पर हां यह कह सकते हैं कि इसी पश्चिमोत्तर देश में कई नगर ऐसे हैं जहां यही खड़ी बोली मातृभाषा है।

पश्चिमोत्तर देश की कविता की भाषा व्रजभाषा है यह निर्णीत हो चुकी है और प्राचीन काल से लोग इसी भाषा में कविता करते आते हैं परन्तु यह कह सकते हैं कि यह नियम अकबर के समय के पूर्व्व नहीं था क्यौंकि मलिक मुहम्मद जायसी और चन्द की कविता विलक्षण ही है और वैसे ही तुलसीदासजी ने भी व्रजभाषा का नियम भंग कर दिया। जो हो मैंने आप कई बेर परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाऊं पर वह मेरे नित्तानुसार नहीं बनी इस से यह निश्चय होता है कि व्रजभाषा ही में कविता करना उत्तम होता है और इसी से सब कविता व्रजभाषा में ही उत्तम होती है। जैसे व्रजभाषा में कविता होती है वैसे ही बुन्देलखंड की बोली में भी कविता बनती आती है और अब कविता में यह दोनों बोली मिल गई हैं परन्तु पूरब में कवियों की वृद्धि होने से उन लोगों ने उस कविता की भाषा से अपने चाल पर एक नई भाषा बना ली है यहां यह भी कहना आवश्यक है कि कविता ने पंजाबी और माड़वारी बोली भी ग्रहण किया है और इस भाषा में भी कविता बनाई है। इन सब के उदाहरण नीचे नई और पुरानी कविता में दिखाए जाते हैं जिन से पूर्वोक्त वर्णन स्पष्ट हो जायगा।

(व्रजभाषा, बुन्देलखंड की बोली के उदाहरण। नागभाषा की कविता–''चन्द की भाषा में ऐसे शब्द बहुत हैं, अब तक जोधपुर उदयपुर के कवि 'नच्चिम' 'बड़ढ़िया' इत्यादि शब्द का बहुत प्रयोग करते हैं और इसी में बड़ा पांडित्य मानते हैं।'')

...कजली की कविता कजली की कविता बड़ी विचित्र होती है इसके उदाहरण के पूर्व हम इस नष्ट वस्तु की कुछ उत्पत्ति भी लिखते हैं। कन्तित देश में गहरवार क्षत्री दादूराय नामक राजा हुए और माड़ा बिजैपुर इत्यादि देश में उनका राज या विन्ध्याचल देवी के मंदिर के नाले के पास उनके टूटे गढ़ का चिह्न अब तक मिलता है उन्होंने चार भैरगें के बीच में अपना गढ़ बनाया था और वह अपने रांज में मुसलमानों को गंगा जी नहीं छूने देते थे। उसके देश में अनावृष्टि हुई और उसने उसके निवारणार्थ बड़ा धर्म किया और फिर वृष्टि हुई उसी में उसकी कीर्ति को जो कन्तिनत की स्त्रियों ने उसके मरने और उसकी रानी नागमती के सती होने पर एक मनमाने राग और धुन में बायां कर गाया इसी से उसका नाम कजली हुई। कजली नाम के दो कारण एक तो उस राजा का एक वन था उसका नाम कजली वन था दूसरे उस तृतीया का नाम पुराणा में कजली तीज लिखा है जिसमें यह कजली बहुत गाई जाती है।

उसकी कीर्ति में ग्रामीणों ने उसी काल में ये छन्द बनाये थे। ''कहा गए दांढुरैया बिन जग सून। तुरकन गांग जुठारा बिन अरजून।''...इस नष्ट कजली को प्रायः स्त्रियां आप ही बना लेती हैं परन्तु पुरुषों में भी इसके कवि होते हैं साम्प्रत एक पंखा वाला

है उस ने अनेक कजली बनाई है परन्तु इन सबों में पंडित वेणी राम नामक एक ब्राह्मण थे उस ने अच्छी कजली बनाई है।

..........बंग भाषा की कविता

बंग भाषा अब हिन्दी से बिलकुल विलक्षण है यह प्रत्यक्ष है। पूर्व काल के बंग भाषा के कविगण की जो भाषा है वह बिलकुल व्रजभाषा ही है। बंगाली विद्वानों में इस विषय में अनेक वादानुवाद हैं किन्तु हम को ऐसा निश्चय होता है कि उन कवियों ने व्रजभाषा ही में कविता करने की चेष्टा की हो तो क्या आश्चर्य है। कवि कङ्कण, चंडी, विद्यापति, गोविन्ददास इत्यादि इन के प्राचीन कविगण की भाषा वर्तमान व्रजभाषा और मैथिली से बिलकुल मिली हुई है। यह कोई कविता पांच सौ वर्ष के ऊपर की नहीं किन्तु धन्य काल जिस ने भाषा का अब इतना रूपान्तर कर दिया। इन्हीं प्राचीन कवियों में से गोविन्ददास की कविता कौतुकार्य यहां प्रकाश की जाती है। इस कविता में एक अपूर्व और सहज माधुर्य्य ऐसा है कि अनुभव में बड़ा आनन्द होता है।

....नई भाषा की कविता

"भजन करो श्रीकृष्ण का, मिल कर के सब लोग।
सिद्ध होयगा काम और छूटैगा सब सोग॥"

अब देखिये यह कैसी भोंड़ी कविता है मैंने इस का कारण सोचा कि खड़ी बोली में कविता मीठी क्यों नहीं बनती तो मुझ को सब से बड़ा कारण यह जान पड़ा कि इस में क्रिया इत्यादि में प्रायः दीर्घ मात्रा होती हैं इस्से कविता अच्छी नहीं बनती।

आप लोगों को ऊपर से उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा कि कविता की भाषा निस्सन्देह व्रजभाषा ही है और दूसरे भाषाओं की कविता इतना चित्त को नहीं पकड़ती। यदि हमारे पाठक लोग इच्छा करैंगे तो कविता में नायिकाभेद, अलंकार और कवियों के स्वतन्त्र प्रयोग कैसे कैसे बदल गए इन का वर्णन फिर कभी करूंगा।

हिन्दी कविता—संस्कृत यद्यपि परम मधुर है तथापि भाषा भी मधुरई किसी प्रकार से घट के नहीं है—इस के उदाहरण में हम एक श्रीजयदेव जी अष्टपदी और एक उस का अनुवाद देते हैं अब हमारे पाठक लोग दोनों भाषा की माधुरी का प्रमाण जान लें।

.....अथ लिखने की भाषा के उदाहरण

भाषा का तीसरा अंग लिखने की भाषा है और इस में बड़ा झगड़ा है कोई कहता है कि उरदू शब्द मिलने चाहिए, कोई कहता है कि संस्कृत शब्द होने चाहिए

और अपनी अपनी रुचि के अनुसार सब लिखते हैं और इस के हेतु कोई भाषा अभी निश्चित नहीं हो सकती।

हम सब भाषाओं के नीचे उदाहरण दिखाते हैं।

नं. 1 जिसमें संस्कृत के शब्द बहुत हैं।

अहा पर कैसी अपूर्व्व और विचित्र वर्षा ऋतु साम्प्रत प्राप्त हुई है अनवर्त्त आकाश मेघाच्छन्न रहता है और चतुर्दिक कुझझटिका पात से नेत्र की गति स्तम्भित हो गई है प्रतिक्षण अभ्र में चंचला पुंश्चली स्त्री की भांति नर्तन करती है और वैसे ही बकावली उड्डीयमाना होकर—इतस्ततः भ्रमण कर रही है मयूररादि अनेक पक्षिगण प्रफुल्लित चित्त से रव कर रहे हैं। और वैसे ही दर्दरगण भी पंकाभिषेक करके कुकवियों की भांति कर्णधक ढ़क्का झंकार सा भयानक शब्द करते हैं।

नं. 2 जिस में संस्कृत के शब्द थोड़े हैं।

सब विदेशी लोग घर फिर आए और व्यापारियों ने नौका लादना छोड़ दिया पुल टूट गए बांध खुल गए पंक से पृथ्वी भर गई पहाड़ी नदियों ने अपने बल दिखाए बहुत वृक्ष कूल समेत तोड़ गिराए सर्प बिलों से बाहर निकले महानदियों ने मर्यादा भंग कर दी और स्वतन्त्रता स्त्रियों की भांति उमड़ चली।

नं. 3 जो शुद्ध हिन्दी है।

पर मेरे प्रीतम अब तक घर न आए क्या उस देश में बरसात नहीं होती या किसी सौत के फेर में पड़ गए कि इधर की सुध ही भूल गए। कहां तो वह प्यार की बातें कहां एक संग ऐसा भूल जाना कि चिट्ठी भी न भिजवाना। हा! मैं कहां जाऊं कैसे करूं मेरी तो ऐसी कोई मुंह बोली—सहेली नहीं कि उस से दुखड़ा रो सुनाऊं कुछ इधर उधर की बातों ही से जी बहलाऊं।

जिसमें किसी भाषा के शब्द मिलने का नेम नहीं है।

ऐसी तो अंधेरी रात उस में अकेली रहना कोई हाल पूछने वाला भी पास नहीं रह रह कर जी घबड़ाता है कोई खबर लेने भी नहीं आता और न कोई इस विपत्ति में सहाय होकर जान बचाता है।

नं. 5 जिसमें फारसी शब्द विशेष हैं।

खुदा इस आफत से जी बचाये प्यारे का मुंह जल्द दिखाए कि जान में जान आए। फिर वही ऐश की घड़ियां आएं शबोरोज दिबर की सुहबत रहे रजो गम दूर हो दिल मसरूर हो।

नं. 6 जिसमें अंगरेजी शब्द हिन्दी ही के मिल गए हैं।

वहां हौंसों में हजारों बक्स माल रक्खे हैं—कम्पनियों के सैकड़ों बक्स इधर से उधर कुली लोग लिये फिरते हैं लालटेन में गिलास चारों तरफ ले रहे हैं सड़क की लैन सीधी और चौड़ी है पालकी गाड़ी बग्गी चिरिट-फिटिन दौड़ रही है रेलवे के स्टेशनों पर टिकट बंट रहा है कोई फर्स्ट क्लास में बैठता है कोई सेकेंड में कोई

थर्ड में बैठता है ट्रेन को इंज्जिन इधर से उधर खींच कर ले जाती है बड़े से छोटे तक उहदेदार जज मजिस्टर कलक्टर पोस्ट मास्टर डिपटी साहब स्टेशन मास्टर करनैल जनरैल कमानियर किरानी और कांस्टेबल वगैरह चारों ओर घूम रहे हैं कोट पहिने हैं कोई बूट पहिने हैं कोई पाकेट में लोट भरे हैं लाट साहिब भी उधर आते जाते हैं डांक दौड़ती है बोट तिरते हैं पादरी लोग गिरजों में इधर क्रिस्तानों को बैबिल सुनाते हैं पम्प में पानी दौड़ता है कम्प में लम्प रौशन हो रही है।

नं. 7 जिसमें पुरबियों की बोली वा काशी की देशभाषा है।

एक साहेब आप कब्बौं कलकत्ता गए हौ कि नाहीं? जो न गए हो तो एक बेर हमरे कहे से आप ऊ शहर को जरूर देखो देख ही के लायक है आप से हम ओकी तारीफ का करी अपनी आंखी से देखे बिना ओका मजै नहीं मिलता आप बहुत परदेस जातौ एक बेर ओहरो झुक पड़ो।

नं. 8 जो काशी के अर्धशिक्षित बोलते हैं।

महाराज मैं सच कहता हैं कलकत्ता देखने ही के योग्य है आप देखियेगा तो खुस हो जाइयेगा हम एक दफे गए रहे से ऐसा जी प्रसन्न हो गया कि क्या पूछना है।

नं. 9 दक्षिण के लोगों की हिन्दी।

सो तो ठीक है कलकत्ते तो आप कं एक बेर अवश्य जाना हमारे कू तो ऐसा जान पड़ता है कि जावत् पृथ्वी तल तें दूसरा कोई नगर ही नहीं है।

नं. 10 बंगालियों की हिन्दी।

सच है उधर राजा बाजार का बड़ा बड़ा दोकान है उधर मछुआ बाजार में बहुत अच्छा अच्छा सामान है कहीं गाड़ी खड़ा है कहीं केली फला है कहीं गोरा की समाज की समाज आती है कहीं आभारा देश का बंगाली बाबू लोगों का पल्टन जाती है के कोम्पानी लोग दीवालिया होया जाता है कहीं मारवाड़ी माल लेकर घर पराता है।

नं. 11 अंगरेजों की हिन्दी।

बेशक इसमें कुछ शक नहीं कैलकटा देखने का जगह है, हम वहां अकसर रहता आप एक बार जाने मांगो वहां जाकर थोड़ा सबुर करो देखो बहुत लोग जाता तो आप घर में पड़ा पड़ा क्यों सड़ता जाओ जाओ हमारा कहने से जाओ।

नं. 12 रेलवे की भाषा। ईस्टइण्डिया रेलवे। इश्तहार—(इस में दो इश्तहार दिए हैं जिन में से एक उद्धृत किया जाता है।

कजरा स्टेशन में एक मिस्त्री जिसका नाम वसी था एक चारपाई नेआ सिलिपर के चोरा कर के बनवाने के वास्ते अगस्त सन 1883 ई. साल में गिरफ्तार किया गया था और मजिस्ट्रेट साहब ने उसको मोजरिम ठहरा कर एक बरस के वास्ते सख्त मेहनत के साथ कैद किया।

District Engineer' Office Dinapore

17th Aug. 1883 S. Carringlon Offis. Districit Engineer.

हम इस स्थान पर वाद नहीं किया चाहते कि कौन भाषा उत्तम है और वही लिखनी चाहिए पर हां मुझ से कोई अनुमति पूछते तो मैं यह कहूंगा कि नम्बर 2 और 3 लिखने के योग्य है।

यदि इस का विचार कीजिये कि यह देशभाषा कहां से आई है ते यह निश्चय होता है कि पश्चिम से आई है और पंजाबी व्रजभाषा इत्यादि भाषाओं से बिगड़ कर बनी है पर उन का आदि किसी समय में नागभाषा रही हो तो आश्चर्य नहीं।

[अनुमानित रचनाकाल—1883 ई., खड्ग विलास प्रेस से, 1890 ई. पुस्तिकाकार प्रकाशित]

लेखक और नागरी लेखक

प्रत्येक जाति को अपने लेखकों ही के गौरव और उच्चाशय द्वारा सर्वोच्च यश की प्राप्ति हुई (या होती) है–

Every nation arrived their highest reputation from the splendour and dignity of their writers. —**Dr. Johnson**

आज तक हम महापुरुषों को साक्षात ब्रह्म, अवतार, कवि, आचार्य्य और राजास्वरूप में सुनते और मानते आए हैं परन्तु आजकल हम यह क्या सुनते हैं–"वह लेखक है, वह महापुरुष है।" पहिले चार के विषय में तो हम ने अपने नागरी जगत में अतीत कहानी मात्र सुना है और अन्तिम पञ्चम के विषय में हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा जानते हैं कि जो 36 कोटि मनुष्यों के एक मात्र कर्त्ता, धर्त्ता और विधाता हैं वह अवश्य एक महापुरुष हैं, इस में सन्देह ही क्या!–इसलिए वर्त्तमान समय में किसी राजपुरुष को "महापुरुष न मानते हुए भी हम अपने सम्राट महाराज एडवर्ड को एक महापुरुष समझते हैं। परन्तु–"वह लेखक है, वह महापुरुष है।" यह ध्वनि कान में पड़ते ही बड़ा आश्चर्य्य होता है कि एक साधारण स्थिति के मनुष्य को जगत महापुरुष कैसे कहता है। न्यायालयों और कार्य्यालयों में जिसका पद सब से छोटा है यहां तक कि जिसे न्यायाध्यक्ष (हाकिम) और कार्य्याध्यक्ष (ऑफिसर) ही की नहीं, वरन् कभी कभी उसके अर्दली और चपरासी तक की फटकार सहनी पड़ती है उसी नकल नवीस, मोहिर्रिर और आजकल के क्लर्क के पर्य्यायवाची शब्द के 'लेखक' नामधारी मनुष्य को जगत महापुरुष क्यौं कर मानता है? किन्तु जब हम वर्त्तमान समय की ओर देखते हैं और यह समझते हैं कि 'लेखक' सामयिक सृष्टि का यथार्थ में महापुरुष है तो हमारा आश्चर्य्य नहीं रहता, क्यौंकि रात दिन देखते हैं कि वर्त्तमान समय में अनेकानेक असम्भव बातें सम्भव हो रही हैं। यदि वर्त्तमान सृष्टि की विचित्र गति को देख कर हम यह समझ लें कि हिन्दुओं को पवित्र पुस्तकों के लेखानुसार कलिकाल में जो भगवान का कल्कि अवतार होना माना जाता है तो वह स्यात् इन्हीं महापुरुषों के वेश में हो, इस में कुछ आश्चर्य्य नहीं माना जा सकता क्यौंकि इस

समय विलासप्रिय जगत में इन महापुरुषों के अतिरिक्त और कोई ऐसा हमारी दृष्टि में नहीं आता है जो चना के पौधे के तले बैठने की नाई, रूखा सूखा, मोटा फटा पहिन, सर्दी गर्मी सह कर 'परोपकाराय सतां विभूतयः' के उपदेश में लगा रहे। हम आप से पूछते हैं कि आप क्या ऐसे महापुरुष की कथा नहीं सुनना चाहते हैं?

'यथा नाम तथा गुणः' की जैसी विलक्षण सिद्धि 'लेखक' के जीवन वृत्तान्त में दीख पड़ती है वैसी स्यात् ही कहीं दीख पड़ेगी। भविष्यत् में कुछ हो परन्तु अभी तक लिखने की सिद्धि प्राप्त किए बिना कोई लेखक नहीं कहला सका है। ब्रह्मज्ञान के बिना शासन ब्रह्मस्वरूप दैहिक वासनाओं के रखते हुए अवतार रूप कत्थक भांड़ों और वेश्याओं के लिए, अनर्थ में फंसाने वाले विषय वासना की चांडालिनी मूर्त्ति के प्रति लक्ष्य कर के दो चार पद निर्माण करने वाले कवि, धर्म्म के ज्ञान से शून्य केवल नाना आडम्बर द्वारा अपने पेट की पूजा कराने वाले आचार्य्य और प्रजा के संरक्षण एवं राजनीति के मर्म्म से शून्य राजा, भले ही मनुष्य बन जायें, परन्तु जब तक ईश्वरीय ज्ञान प्रदत्त प्रतिभामय लेखन शक्ति मनुष्य को प्राप्त न होगी वह कभी 'लेखक' नहीं कहला सकेगा। उपर्युक्त यहां पुरुषों को परीक्षा में उत्तीर्ण न होने देने की अनेक बातें बाधक कही जा सकती हैं। परन्तु जब तक शरीर में प्राण है, तब तक जगत की कोई वस्तु 'लेखक' का अवरोध नहीं कर सकती, इसलिए लेखक की परीक्षा के लिए किसी समय सामग्री की आवश्यकता नहीं है। जब से जगत में अक्षर की सृष्टि हुई है, तभी से हमारे लेखक महापुरुष का अवतार हुआ है। यौं तो इस परिवर्त्तनशील जगत में अनेक वस्तुएं अनेक बार बनती और अनेक बार लुप्त होती हैं जिस से यह निर्णय नहीं हो सकता कि इस काल चक्र में कहां पर क्या क्या देखा। गाड़ी के पहिये को देखो ज्यौं ही यह एक बार घूम जाता है और दूसरी फेरी में पड़ता है त्यौं ही हमें उस की पहली बार की गति और उस पर बीती हुई बातें भूल जाती हैं। इस से हम लेखक की आयु का निर्णय नहीं कर सकते। परन्तु जो कि हमें केवल 'नागरी लेखक से ही सम्बन्ध है इस से हम लेखक की आयु का निर्णय नहीं कर सकते। परन्तु जो कि हमें केवल 'नागरी लेखक' से ही सम्बन्ध है इस लिए हम कह सकते हैं कि गत शताब्दि के आरम्भ से प्रथम कोई 'नागरी लेखक' अपना वर्त्तमान गौरव सूचक 'लेखक' नाम सार्थक नहीं कर सका है। कहना नहीं होगा, मुद्रण यन्त्र के प्रचार के साथ ही साथ...'लेखक' की उन्नति हुई जैसे विष्णु चक्र और महादेव त्रिशूल के सहारे संसार पर विजय पाते हैं वैसे ही 'लेखकं' मानो अपने मुद्रणयन्त्र से ही जगत में अपनी दुन्दुभी बजाते हैं। जब तक संसार में मुद्रण यन्त्र रूपी उनका अस्त्र रक्षित रहेगा, तब तक वह जगत में महापुरुष कहला कर ही पुजते रहेंगे।

हमें तो स्मरण नहीं होता कि किसी नागरी लेखक ने 19वीं शताब्दी के पहिले अपने उच्च विचारों को लिख कर और छापेखाने में छपवा कर सर्व साधारण के सामने धरा हो। यद्यपि हमारे पास कोई ऐसा ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है कि जिस से हम

यह सिद्ध कर सकेंगे कि जितने लेखक इस समय प्रसिद्ध हो रहे हैं उन के अतिरिक्त भी कुछ और जन्मे और कुछ थोड़ा बहुत अपना कार्य्य कर के स्वर्ग को पधार गए। तथापि हमारा मन साक्षी देता है कि साधारणतः केवल कृतकार्य्य मनुष्यों का ही नाम हमें सुनाई पड़ता है, परन्तु देखते हैं कि सहस्रों के उद्योग करने पर केवल कुछ इने गिने ही अपने कार्य्य में सफल होते हैं तो अवश्य सम्भव है कि अनेकों ने इस कार्य्य में अपने प्राण खोए होंगे, जिन का नाम भी आज संसार में नहीं है। परन्तु सब से बढ़ कर धन्यवाद के पात्र वही हैं जो इस कार्य्य में बिना धन और बिना यश कमाए, प्रसन्नता पूर्व्वक अपना कर्तव्य पालन करते हुए काल की गोद में चले गए। इस में कुछ सन्देह नहीं कि वर्त्तमान राजनियम के अनुसार वह अपनी पुस्तकों पर स्वत्व न रख सके और जहां तहां राजाओं से थोड़ा बहुत पुरस्कार पाते हुए ही वे अपने जीवन के दिन भयंकर दारिद्र दुःख में व्यतीत करते रहे परन्तु अब वे ही अपनी चिता की भस्म में से निकल कर मनुष्यों के हृदय पर राज करने लगे हैं। हा शोक! इस के विचारमात्र से ही हमारे हृदय पर कितना बड़ा आघात लगता है कि जो आज हमारे हृदय के अधीश्वर हैं वे पेट भर अन्न और शरीर ढकने योग्य वस्त्र भी बिना पाए अपनी जीवन लीला सम्वरण कर गए। इस से बढ़ कर दुःखदाई और लज्जा जनक बात मनुष्यमात्र के लिए क्या हो सकती है?

शोक का विषय है कि हमारे स्वर्गीय लेखकगण ही ऐसी दशा में आविर्भूत नहीं हुए कि जिस में हम यह नहीं जान सकते थे कि इन निकम्मों से भी हमारा कुछ काम निकल सकता है, वरन् आज तक भी हमारे नागरी जगत में लेखक कोरा उठल्लू समझा जाता है। हम लोग स्वर्ग में गद्दी पाने की इच्छा से निरक्षरभट्टाचार्य्य कितने साधू, संन्यासी, दण्डी उदासी पुरोहित और गंगा यमुना के पुत्रों की सेवा सुश्रूषा में कितने ही का गांजा चरस और चंडू क्यौं न फूंक दें और जन्म भर उन की टहल किया करें, परन्तु जो स्वर्ग के सच्चे प्रथम दर्शक हैं उन विद्वान् लेखकों की ओर से हम अपना मुंह फेर लें और उन के लिए कभी एक फूटी कौड़ी भी न खर्चें। इसी का फल है कि आज हमारी यह दुर्दशा हो रही है और हम अपने लेखकों के कष्ट को स्मरण कर कर के आह आह आंसू रो रहे हैं। जब हमें यह दीख पड़ रहा है कि विद्या ही हमारे परित्राण के लिए चक्र है तब तो लेखक भी हमारे लिए चक्रधारी भगवान वसुदेव के समान परित्राणदाता अवश्य होंगे। पाठकगण! समझें, लेखक हमारा पूजनीय और आराधनीय देव है। शत पथ ब्राह्मण का वचन है कि "विद्या सो हि देवाः" अर्थात जो विद्वान है वही देव है। विद्या के बिना लेखन शक्ति प्राप्त नहीं हो सकती और लिखने से विद्या के ऊपर शान चढ़ती है, इस से लेखक विद्वान की भी अपेक्षा श्रेष्ठतर निर्भ्रम पूजनीय देव है। लेखक मनुष्य समाज का प्राण है। लेखक मनुष्य के हृदय पर अपना अधिकार जमाये बिना कदापि नहीं रह सकता है। लेखक से संसार का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि संसार की गति की परीक्षा हम लेखकों

की गति से कर सकते हैं।

जैसे संसार की अन्य सब बातों में सच और झूठ का भेद माना जाता है वैसे ही लेखकों के भी दो भेद हैं। एक योग्य और दूसरे अयोग्य। योग्य लेखक वे हैं जिन के लेख जगत में माननीय और आदरणीय माने जाते हैं और सर्व्वदा वैसे ही माने जाते रहेंगे। जिन्होंने जिस विषय का विवरण किया वह विषय उस समय जगत में सर्वोच्च समझा जाता था जिन की जिह्वा और लेखनी से सर्व्वदा ईश्वरीय विचारों का प्रवाह प्रसृवित होता है। जो इस क्षणभंगुर असार और मायालिप्त बाह्यजगत में रहते हुए भी अनादि अनन्त सारभूत पवित्र आन्तरिकत्व के साथ सदा विचरण करते हैं। जो इस जगत के आन्तरिक दृश्य को देखते हुए इतर मनुष्यों को जो अधिकांश उस स्वर्गीयसुख से वञ्चित होते हैं और जिह्वा और लेखनी से उस दृश्य के दिखाने की यथासाध्य चेष्टा करते हैं। जिस की पवित्र आत्मा ईश्वरीयज्ञान के निर्मल प्रकाश में सांसारिक क्षण स्थायी सुखों को तुच्छ देखती हुई अक्ष्यमोक्ष सुख की खोज में लगी रहती है। 'लेखक के स्वभाव'—पर व्याख्यान देते हुए जर्मनी के प्रसिद्ध तत्त्व वेत्ता फिची (Fitche) ने कहा था,—"हम और हमारे समस्त मनुष्य भाइयों के सहित इस पृथ्वी पर के समस्त पदार्थ इस दृश्यमान जगत के सम्भोग पदार्थ हैं, इन पदार्थों के स्वरूप के भीतर उनका सारा भाग जिसे हम लोग 'जगत का ईश्वरीय विचार' कहते हैं, रहता है और यह विचार 'जगत की मान्यता है जो प्रति मूर्ति के हृदय में विद्यमान है" जगत में यह ईश्वरीय विचार सर्वसाधारण के लक्ष्य में नहीं आ सकते हैं साधारण मनुष्य जगत की बाहरी दिखावटों और बनावटों में ही उलझे रहते हैं और उन का यह स्वप्न में भी विचार नहीं होता कि संसार की इन बाहरी दिखावटों और बनावटों में भी कुछ ईश्वरीय भाव विद्यमान है। परन्तु लेखक का जगत में अवतार इसीलिए होता है कि वह इस असार जगत के सार को स्वयं देखे और दूसरों को दिखलावे; और भाषा का जब जब परिवर्तन हो तो उसी परिवर्तित भाषा में उस समय के मनुष्यों की रुचि के अनूकूल उस 'सार' को वर्णित करे। फिची के कथन का सार मर्म यही है कि वह सर्व्वव्यापी परमात्मा अपनी ब्रह्मा विष्णु और महेश आदि अनेक ज्योतियों में से किसी न किसी थोड़ी या बहुत ज्योति से प्रत्येक पदार्थ के सारभाग को उद्‌भासित कर रहा है। ब्रह्मवादी इसी से जगत को केवल ब्रह्ममय मानते हैं। प्रकृतिवादी सत रज और तम भेद से उस का जगत में व्याप्य होना कहते हैं। 'ईशा वास्यमिदं सर्व्वं यत्किञ्चिज्जगत्यां जगत'॥ यह ईशोपनिषद् का वाक्य है, जिस का अर्थ यह है। जो कुछ सृष्टि में भंगुर पदार्थ है यह सब परमेश्वर से बसा है। इसी के व्याख्या स्वरूप उसी उपनिषद के पांचवें श्लोक में कहा है? "तदन्तरस्य सर्व्वस्य तद सर्व्व स्यास्य बाह्यतः" अर्थात वही इस सब के भीतर है वही इस सब के बाहर है। इसी से स्वामी शंकराचार्य्य ने ज्ञान रूप परमात्मा का जगत में व्याप्त होने की शिक्षा देने की अपेक्षा उस का साक्षात रूप जगत होना कहा और संसार में अद्वैतवाद का झंडा

खड़ा किया। इसी, क्या अन्तर क्या बाह्य, सर्वव्यापी ईश्वरीयज्ञान प्रभा के प्रकाश से चौंधिया कर भगवान बुद्ध ने निर्वाण पद पाकर जीव का साक्षात परमेश्वर होना माना है। कहां तक कहें यह वह विषय है कि जिस को सारा चराचर जगत अपनी आत्मा से भली भांति मान रहा है।

फिची (Fitche) ने इसीलिए लेखक को धर्मोपदेशक भी कहा है क्योंकि वह नाना प्रकार से मनुष्यों को ईश्वरीयभाव दर्शाने की चेष्टा करता है। मानो या न मानो परन्तु इस में कुछ भी सन्देह नहीं कि सच्चे लेखक की आत्मा अवश्य पवित्र होती है उस के विचार ईश्वरीयज्ञान से परिपूर्ण होते हैं। लेखक जगत का प्रकाश है, लेखक जगत का गुरु है, उसी के प्रकाश के सहारे हम पायपूरित अंधियारी रजनी में अपनी संसार यात्रा को समाप्त करते हैं और उसी के उपदेश में हम इन्द्रिय लालसाओं के और लूटेरों के पञ्जों से बचते हैं।

अयोग्य अथवा झूठे लेखक वे हैं जो ईश्वरीयज्ञान से वञ्चित रहते और सांसारिक विषयों की इच्छा रखते हुए जगत को भुलावे में डाल कर अपना अर्थसाधन करते हैं। जिन्हें दैहिक सुख की कामना है वे आत्मिक सुख का कभी अनुभव नहीं कर सकते हैं। जो लेखक ऐसे हैं उन्हें, स्वार्थी और मिथ्यावादी कहना पाप न होगा। परमात्मा करे, विद्या के पवित्र क्षेत्र में ऐसे नराधमों का कभी पैर न पड़ने पावे।

हमारे पूजनीय पूर्व्वपुरुषों ने देवालयों में भगवत पूजन करने और देवनदियों में निर्धारित तिथियों को स्नान करने और विद्वानों के समागम पर एक स्थान पर एकत्रित होने की प्रथा इसीलिए प्रचलित की थी कि ऐसे समयों पर तो भी सर्व्वसाधारणजन योग्यपुरुषों की विद्याबुद्धि और वाक् शक्ति का परिचय पा सकें। उन को मालूम था वाक्शक्ति के समान जाति की उन्नति के लिए और कोई शक्ति लाभदायक नहीं है और यदि यह न हुई तो जातीय जीवन किसी काम का नहीं है। उन का यह कार्य्य कैसा उच्च, पवित्र, सुन्दर, लाभकारी और महान था। परन्तु यह देखो लेखन प्रणाली और मुद्रणयन्त्र के सहारे अब जगत के इन कार्य्यों का कैसा उलट फेर हो गया है। लेखक (ग्रन्थकार) धर्म्मोपदेशक की नाई इधर उधर यहां वहां धर्म्मोपदेश नहीं देता फिरता है, परन्तु वह एक ही समय में एक दूसरे से बहुत दूर बसे हुए अनेक स्थानों पर अपनी शिक्षाओं को सुनाता है। परन्तु शोक है कि इन बेचारे लेखकों की सुनते बहुत कम हैं। नाना प्रकार के मनोहर पदार्थों से सुसज्जित कमरे में बैठे हुए और धनवान शिष्य दल से घिरे हुए आचार्य्यवर की नवरसपूरित कथाओं को छोड़ कर कौन ऐसा मन्दमति होगा जो कुछ पैसे खर्च कर एकाग्रचित्त हो कर लेखक के कोरे कागज में अपना सिर खपावेगा। पञ्चभूतनिर्मित इस शरीर राज्य के राजा मन का कष्ट छोड़ शारीरिक सुख भोगने का स्वाभाविक गुण है। इसी से मनुष्य विवेचनारहित हो कर सुख दुःख की सीमा का बिना मिलान किए हुए कष्ट साध्य कामों से दूर भागता है परिमाण में दुःख की अपेक्षा सुख कितना ही गुना क्यों न

हों। इसी से वर्त्तमान दैहिक सुख को सुख समझने वाले जगत में ऐसी किस की भी गती है जो लेखक के भविष्यत् सुख पर विश्वास करे। ऐसी दशा में लेखक के लिए कौन पूछता कि कहां से आया और कहां जायगा कैसे आया और कैसे जायगा? वह जगत में एक अपरिचित मनुष्य की नाईं मारा मारा फिरता है। गृहहीन, आश्रमहीन और सहायहीन वन वासी मनुष्य की नाईं वह उसी जगत में जिस का वह स्वयं अज्ञानान्धकारनाशी निर्मल प्रकाश है घूमता फिरता है।

संसार में मनुष्य ने अपनी बुद्धि से जितने अद्भुत आविष्कार किए हैं उन में सब से बढ़ कर लिपि निर्माण है। पुराणों में महादेव के गणों के कैसे कैसे चमत्कारिक कार्य्य लिखे हैं परन्तु हम कहते हैं कि पुस्तकों ने उन से भी बढ़ कर आश्चर्यजनक कार्य्य किए हैं। पुस्तकों में सारा भूत बंधा पड़ा है, उस काल की भाषा और शब्दावली इन में मौजूद है। जिस समय के अधिकांश पञ्चभूत निर्मित पदार्थ अपने स्थूल शरीर को त्याग कर के निज निज तत्त्व में जा मिले हैं जहां से उनका लौटना सर्व्वथा असम्भव है, उस समय के उन्हीं पदार्थों का सारा विवरण यदि अब इस समय जानना चाहो तो शिलाखंड, ताम्रपत्र, भोजपत्र और आजकल के घास फूस और चिथड़ों से बने हुए कोरे कागज पर के खुदे, लिखे और छपे चिह्नों को देखो इन चिह्नों को देखते ही आप की आंखों के सामने नाना प्रकार के अद्भुत दृश्य आने लगेंगे मानो किसी ने तुम्हारी आत्मा को अपनी आत्मा से आच्छादित कर लिया है और वह तुम्हें नाना रूप रंग तमाशे दिखाते हुए तुम्हें कठपुतली की नाईं नचाता है। समझे पाठक। यह क्या है? मेस्मेरिज्म जानने वाला जैसे कांच और जल को विश्वव्यापिनी विद्युत की आकर्षण शक्ति से आमन्त्रित कर के उस के द्वारा धारक को अपने वश में करता है लेखक वैसे ही इन अक्षर रूपी चिह्नों में अपनी आत्मा को प्रविष्ट कर के उन के समझने वालों के हृदय को अपना बनाता है। जलादिक पार्थिव पदार्थों द्वारा आत्मा का विनियोग क्षण स्थायी परन्तु इन अक्षरों का प्रभाव अचल, अमिट और अनन्त है। इस प्रचलित मेस्मेरिज्म में कारक धारक से बलवान होना चाहिए परन्तु इस लेखन रूपी मेस्मेरिज्म में लेखक मृत्यु शय्या पर पड़े हुए भी महाबलवानों के हृदय पर अधिकार करता है। मेस्मेरिज्म में कारक धारक को न बलवान और न निर्बल बना सकता है परन्तु लेखन में लेखक पाठक और श्रोता दोनों को बात की बात में सबल को निर्बल और बलवान को निर्बल बना सकता है। इसलिए, प्रिय पाठक! इस शरीर के साथ नाश होने वाली विद्या और मरणोपरान्त अपने साथ न जाने वाले कर्म्मों को न सीखो। इस समय देखो इंगलैंड, जर्मनी, फ्रांस, अमेरिका, रूस, और जापान की जल, थल सेनाएं अपनी शक्ति में मत्त, समुद्र की उत्ताल तरंगों पर नृत्य कर रही हैं, गिरिराज के अभ्रभेदी शिखरों पर विहार कर रही हैं; उन के अस्त्र, शस्त्र और यन्त्रागार पृथ्वी पर अपना पूर्ण प्रभाव दिखा कर समुद्र को जलाने, पहाड़ों को उड़ाने और आकाश को भेदने के लिए कमर कसे बैठे हैं; उनकी राजधानियां संसार

वैभव में मदमाती इठलाती हुई अलकापुरी का उपहास कर रही हैं, उन के धनागार (बैंक) अपार धनराशि की ओर निहारते हुए कुबेर के कोषागार को तुच्छ समझने लगे हैं। यह सब कुछ है परन्तु स्मरण रखिए जो था वह अब नहीं है और जो अब है वह आगे न रहेगा, इस प्राकृत नियम के अनुसार यह जगत का वर्त्तमान ऐश्वर्य्य एक दिन अवश्य भूत काल के ऐश्वर्य्य में जा मिलेगा। भविष्यत् में 19वीं शताब्दी के अन्त और 20 के वर्त्तमान प्रारम्भ के ऐश्वर्य्य को हमारे आगे की सन्तान को कौन बतलावेगा, ऐश्वर्य्य के जितने साधन हमारे पास है वह सब मिल कर भी हमारे इस गौरव को नष्ट होने से न बचा सकेंगे। समयान्तर में हमारा यह ऐश्वर्य्य किसी प्रकार रक्षित न रह सकेगा। उस समय हमारे वर्त्तमान, धर्म्म, कर्म्म, राज्य, बल, गौरव और धन का हाल कैसे मालूम हो सकेगा? वर्त्तमान दशा के विपर्य्य होने पर इन शताब्दियों का दृश्य हमारी भविष्यत् सन्तान को कौन दिखलावेगा, उस समय, स्मरण रखिए, अन्न वस्त्र हीन, अर्द्धविक्षिप्त, निरुद्यमी, बकवादी और बखेड़िया लेखक के परिश्रम से ही हमारा यह वर्त्तमान जगत काल का कौर बन जाने पर जीवित बना रहेगा। पांडवों और कौरवों की वह अजित सेना अब कहां है। गांडीव धनुष ऐसे अस्त्र अब कहां है? समृद्धिशालिनी हस्तिनापुरी अब कहां है? धर्म राज का वह मय निर्मित सभा भवन कहां है? और उस समय के उस विचित्र नाटक के सूत्रधार साक्षात ब्रह्मस्वरूप भगवान कृष्णचन्द्र कहां हैं? हम क्या बतावें कहां है। अब जगन्नाटक में अपना अपना खेल कर अपने आप उसे देख और दूसरों को दिखा कर रंगशाला में चले गए हैं। परन्तु महर्षि वैशम्पायन की कृपा से आज 5000 वर्ष के बीत जाने पर भी इस कौरव पांडवों का महायुद्ध देखते हैं, गाण्डीव के भयंकर प्रपात को सुनते हैं, हस्तिनापुरी की शोभा निरखते हैं, पांडवों के राजभवन में विचरते हैं और वनविहारी बनवारी के उपदेशामृत को पान करते हैं। उन 'कालहु जीति सकल त्रिपुरारी' शिव की सांसारिक लीला कभी की समाप्त हो जाती यदि भोजपत्रादि पर बने हुए अक्षर उन्हें जीवित न रखते। देखो पाठकगण, पुस्तक कैसी अद्भुत विचित्रशाला (Museum) अजायबघर है संसार में अनेक विचित्रशालाएं नष्ट हो गईं परन्तु यह शाला पृथ्वी के आदि दिन से आज दिन तक ज्यौं की त्यौं बनी है। मनुष्य जाति का यही सर्वोत्तम नाम है।

क्या पुस्तकों में अब महा कार्य्य और अद्भुत व्यापार करने की शक्ति नहीं रही? हम तो जानते हैं कि उन में जैसी सर्व्वदा थी वैसी ही अब भी बनी है। आजकल हमारे शिक्षित समाज में चाक चक्य चिकनाहट की जो चाल है : पश्चिमीय सभ्यता की गन्धि जो उस में फैली है, प्रेमाराधन का सोता जो उस में धड़धड़ाहट से बह रहा है, यह किस का फल है? यह केवल उन विषयों की पुस्तकों के अधिक प्रचार का फल है। पुस्तकों के पाठ से विचार उत्पन्न होते हैं, विचार होने से अभिलषित पदार्थ के प्राप्त करने की इच्छा होती है, इच्छा होने से मनुष्य कार्य्य करता है और

कार्य्य करने से फल प्राप्त होता है। वट सरीखे महावृक्ष का मूल कारण जैसे उस का छोटा सा बीज मात्र है संसार के वर्त्तमान महाकार्य्यों का सूत्रपात वैसे ही मनुष्य के लिखे हुए चिह्न मात्र अक्षरों से हुआ है। विचार कर देखो पौराणिक लोग कौन सा ऐसा गण कार्य्य अपनी कथा में वर्णित करते हैं जो वर्त्तमान में पृथ्वी पर पुस्तकों के कार्य्य से बढ़ कर हो। देवादिदेव भगवान महादेव के कैलाश का दर्शन होना हमारे लिए दुस्तर है, वीरभद्र का वह प्रचंड कोप संसार में नाना प्रकार के दुष्कर्म होते हुए देख कर के भी शान्त हो गया है, भक्तों को संकट से परित्राण न होते देख कर भगवान के भक्तरक्षक नाम में भी हमें सन्देह होने लगा है, परन्तु जब तक पुराण हैं, अवतारों में हमारी श्रद्धा बनी रहेगी, सब चला गया है परन्तु हम उस का पुस्तक में विवरण रहते होना मानेंगे। पापनाशिनी काशी में पवित्र विश्वीश्वर का जगत प्रसिद्ध मन्दिर कैसे प्रतिष्ठित हुआ है? केवल पुराण पुस्तक द्वारा पुण्य धाम अयोध्या के पाप तापनाशी राम मन्दिर के सुवर्ण कलश को ऊंचे आकाश में किसने स्थापित किया है, संस्कृत और भाषा रामायण के प्रणेता वालमीक और तुलसीदास ने। इन दोनों महापुरुषों के पास क्या था? संसार में धन नहीं, बल नहीं, कुछ भी सहाय नहीं, दोनों एकाकी संसार में भ्रमण करते हुए रामचरित को मधुर और अनुपम स्वर में गाते फिरते थे। वही उन का स्वर आकाश को उठा और ऊंचे उठ कर संसार में फैल गया। जहां तक रामायण का स्वर पहुंचा वहां तक वाल्मीक और तुलसीदास ने मनुष्य के हृदय पर अधिकार किया है। इसी भांति भारतवर्ष भर में फैले हुए एक से एक बढ़ कर उन मन्दिरों को किस ने बनाया है, जिन में योगीन्द्र भगवान कृष्ण चन्द्र की मूर्त्तियां विराजमान हैं? केवल भागवतादि श्री कृष्ण चन्द्र के गुण वर्णन करने वाले ग्रन्थों ने। यह हमारी बात आप को आश्चर्य्यजनक बोध हो, परन्तु हम कहते हैं कि इस में अणुमात्र भी झूठ नहीं है। लेखन कार्य्य जिस का मुद्रण एक सरल स्वरूप मात्र है, मनुष्यमात्र के लिए एक चमत्कारिक सृष्टि उत्पन्न कर रहा हैं, यह लेखन कार्य्य भूत काल और दूर देश की घटनाओं को एक अद्भुत नवीन रूप से वर्त्तमान समय में हमारे सामने ला धरता है, तीनों काल और पृथ्वी पर के समस्त स्थानों के साथ इस हमारे वर्त्तमान समय और इस हमारे स्थान का जहां हम हैं अनन्त काल के लिए विचित्र सम्मेलन कर देता है। मनुष्य की जितनी वस्तुएं हैं उन सब का इस ने रूपान्तर कर दिया है, मनुष्य के समस्त बड़े बड़े कार्य्य इस ने पलट दिए हैं, क्या शिक्षा, क्या दीक्षा, क्या राज्य और क्या अन्य कार्य्य।

प्रथम शिक्षा को ही लीजिए। विद्यालयों का स्थापन करना वर्त्तमान समय का एक अति उत्तम और पूजनीय कार्य्य है। परन्तु पुस्तकों से इन विद्यालयों के भी रूप में, मूल कारण में, अन्तर पड़ गया है, विद्यालयों की भर भराहट उस समय अधिक थी जिस समय पुस्तकों का प्राप्त होना कठिन था। उस समय एक एक पुस्तक के लिए 500 अथवा 1000 मुद्रा पुस्तक के स्वामी को भेंट करना कुछ अधिक नहीं

समझा जाता था। उस समय जब किसी मनुष्य को किसी विषय में जानना होता था तो उसे उस विषय के ज्ञाता पंडितों को इकट्ठा करना होता था। पहिले जब किसी को, मान लो, शंकर स्वामी का वेदान्त पर भाष्य सुनना होता था तो उस को स्वयं शंकर स्वामी से भेंट करना होता था। सहस्रों मनुष्य विद्वानों के द्वार पर पढ़े हुए उन की कृपा सम्पादन करना चाहते थे। बिना नाक रगड़े उस समय विद्या प्राप्त होना कठिन था। विद्वानों के भृकुटी पात से बड़े बड़े भूपति थर्रा उठते थे। राजाओं ने इसीलिए कि एक स्थान पर सब विद्याओं के जानने वाले मिल सकें विश्वविद्यालय स्थापित किए। इन में प्रति शास्त्र का एक एक महाविद्वान् नियत होता था जो वहां उस विषय का मुख्य आचार्य्य समझा जाता था। पुराने समय से लेकर आज तक पुण्य धाम काशी की इसीलिए विद्यापीठ में गणना है कि भारतवर्ष में इस स्थान पर छहों शास्त्रों की शिक्षा समान भाव से मिलती है। यद्यपि पश्चिम में रोम और पैरिस के प्राचीन विश्वविद्यालय वर्त्तमान विश्वविद्यालयों के आदि गुरु समझे जाते हैं परन्तु केवल छह शताब्दियों से पहिले उन का सूत्रपात होना सुन कर हमें तो ऐसा ही विश्वास होता है कि भारतवर्ष के विद्यालयों ही का उदाहरण लेकर जगत में वर्त्तमान विश्वविद्यालयों की नींव पड़ी है।

[यह निबन्ध ना.प्र.स. की पत्रिका में पुनर्मुद्रित हुआ था।
इस निबन्ध को 'भारतेन्दु समग्र' से लिया गया है।]

राजनीतिक महत्त्व के लेख

बलिया व्याख्यान

बलिया में भारतेन्दुजी

इस साल बलिया में ददरी का मेला बड़ी धूमधाम से हुआ। श्री मुंशी बिहारीलाल, मुंशी गणपति राय, मुंशी चतुर्भुज सहाय सरीखे उद्योगी और उत्साही अफसरों के प्रबन्ध इस वर्ष मेले में कई नई बातें ऐसी हुईं, जिनसे मेले की बड़ी शोभा हो गई। एक तो पहलवानों का दंगल हुआ, जिस में देश देश के पहलवान आए थे और कुश्ती का करतब दिखलाकर पारितोषिक घाया। दूसरे मेले के थोड़े दिन पूर्व ही से एक नाट्य समाज नियत हुआ था, जिसने मेले में कई उत्तम नाटकों का अभिनय किया। श्री भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी नाट्य समाज के प्रबन्ध कर्ताओं के आग्रह और अनुराग से यहां विराजमान थे। उक्त बाबू साहब कृत प्रसिद्ध नाटक 'सत्यहरिश्चन्द्र' और 'नीलदेवी' बड़ी सुघराई से खेले गए। सम्पूर्ण दर्शक मंडली मोहित हो गई और इन नाटकों के कवि बाबू हरिश्चन्द्रजी की, जो संयोग से नाट्यशाला में इस समय विद्यमान थे बार बार सराहना करने लगी। बाबू साहब का नाम सुनकर इस जिले के मैजिस्ट्रेट आदिक अनेक साहिबान और मेम लोग भी थियेटर में उपस्थित थे और 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'नीलदेवी' का अभिनय देखकर बड़ी प्रसन्नता प्रगट की। वरंच रॉबर्ट्स साहब मैजिस्ट्रेट ने कहा कि इनके नाटक कवि शिरोमणि शेक्सपियर से भी उत्तम हैं। बलिया की सज्जन मंडली ने बाबू हरिश्चन्द्रजी का योग्य आदर सन्मान किया। श्री बाबूजी साहेब के स्वागत सम्मानार्थ यहां 'बलिया इंस्टिट्यूट' की एक सभा की गई जिसमें इस नगर के सब प्रतिष्ठित अफसर और रईस एकत्र थे। इस जिले के मान्यवर, सर्वप्रिय कलेक्टर मि.डी.टी., रॉबर्ट्स साहेब बहादुर सभाध्यक्ष के उच्चासन में इस अवसर पर सुशोभित थे। श्री मुंशी बिहारीलालजी सेक्रेटरी बलिया इंस्टिट्यूट ने संक्षिप्त आदर सूचक वाक्य द्वारा बाबू साहेब का सभा से परिचय कराया। यद्यपि इसकी कुछ ऐसी आवश्यकता न थी क्योंकि कौन ऐसा देश और नगर है जहां भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी का नाम नहीं प्रसिद्ध है? यहां एक पृथक सभा 'आर्य्यदेशोपकारिणी सभा' के नाम से स्थापित है। इसके सेक्रेटरी पं. इन्दिरादत्त उपाध्यायजी बी.ए. ने एक छोटा ऐड्रेस बाबू साहेब की प्रशंसा में पढ़ा। तदुपरान्त बाबू हरिश्चन्द्रजी ने एक बड़ा ललित, गम्भीर और समयोपयोगी व्याख्यान इस विषय पर दिया कि 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है?'

सभासदगण बाबू साहेब का लेकचर सुनकर गद्गद हो गए। व्याख्यान समाप्त होने पर श्रीमान सभापति साहेब ने बाबू साहेब को धन्यवाद दिया और गुणानुवाद किया और सभा विसर्जित हुई। लेकचर तथा ऐड्रेस पाठकों के अवलोकनार्थ नीचे प्रकाशित होता है।

—रविदत्त शुक्ल

ऐड्रेस

सभासद महाशय,

आज का दिन धन्य है कि हम लो इस बलिया में भारतभूषण भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्रजी के स्वागत के निमित्त एकत्र हुए हैं। बलिया ऐसे सामान्य स्थान में एक ऐसे बड़े विद्वान और देश-शुभचिन्तक का आगमन एक बड़े सौभाग्य और धन्यवाद का विषय है। ऐसे अवसर का उपस्थित होना बड़ा ही दुर्लभ है। मैं आर्य्य देशोपकारिणी सभा की ओर से, जो यहां बलिया इंस्टिट्यूट से एक पृथक ही सभा है, श्रीमान बाबू साहब को अनेकानेक धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने बलिया में इस अवसर पर विराजमान होकर हम लोग का मनोर्थ सिद्ध किया और अपने मुख चन्द्र से अमृत की वर्षा कर के हम बलिया निवासी अनुरागियों का उत्साह बढ़ाया। श्रीकृपासागर जगदीश्वर से हम सब भारतवासियों की यही प्रार्थना है कि श्री बाबू साहेब सरीखे उत्साही गुणग्राही स्वदेशानुरागी उदार चरित सर्वप्रिय पुरुष को दीर्घायु करैं और सदा इस दीन भारतवर्ष के हितसाधन में तत्पर रखैं। आज हम श्रीमान डी.टी. रॉबर्ट्स साहेब बहादुर को भी कोटि कोटि धन्यवाद देते हैं कि श्रीमान ने इस कृपानुरागपूर्वक सभा में सुशोभित होकर हम लोगों को आदर दिया।

भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है

आज बड़े ही आनन्द का दिन है कि इस छोटे से नगर बलिया में हम इतने मनुष्यों को बड़े उत्साह से एक स्थान पर देखते हैं। इस अभागे आलसी देश में जो कुछ हो जाय वही बहुत कुछ है। बनारस ऐसे ऐसे बड़े नगरों में जब कुछ नहीं होता तो यह हम क्यों न कहैंगे कि बलिया में जो कुछ हम ने देखा वह बहुत ही प्रशंसा के योग्य है। इस उत्साह का मूल कारण जो हमने खोजा तो प्रगट हो गया कि इस देश के भाग्य से आजकल यहां सारा समाज ही ऐसा एकत्र है। जहां रॉबर्ट्स साहब बहादुर ऐसे कलेक्टर हों वहां क्यों न ऐसा समाज हो। जिस देश और काल में ईश्वर ने अकबर को उत्पन्न किया था उसी में अबुलफ़जल, बीरबल, टोडरमल को भी उत्पन्न किया। यहां रॉबर्ट्स साहब अकबर हैं तो मुंशी चतुर्भुज सहाय, मुंशी बिहारीलाल साहब आदि अबुलफ़जल और टोडरमल हैं। हमारे हिन्दुस्तानी लोग तो रेल की गाड़ी हैं। यद्यपि फर्स्ट क्लास, सेकेंड क्लास आदि गाड़ी बहुत अच्छी अच्छी और बड़े बड़े महसूल की इस ट्रेन में लगी हैं पर बिना इंजिन ये सब नहीं चल सकतीं, वैसे ही हिन्दुस्तानी लोगों को कोई चलानेवाला हो तो ये क्या नहीं कर सकते। इन से इतना कह दीजिए 'का चुप साधि रहा बलवाना', फिर देखिए हनुमानजी को अपना बल कैसा याद आ जाता है। सो बल कौन दिलावे। या हिन्दुस्तानी राजे महराजे नवाब रईस या हाकिम। राजे महाराजों को अपनी पूजा भोजन झूठी गप से छुट्टी नहीं। हाकिमों को कुछ तो सरकारी काम घेरे रहता है, कुछ बॉल, घुड़दौड़, थिएटर, अखबार में समय गया। कुछ बचा भी तो उन को क्या गरज है कि हम गरीब गन्दे काले आदमियों से मिल कर अपना अनमोल समय खोवैं। बस वही मसल हुई—'तुम्हें गैरों से कब फुरसत हम अपने गम से कब खाली। चलो बस हो चुका मिलना न हम खाली न तुम खाली।' तीन मेंढक एक के ऊपर एक बैठे थे। ऊपर वाले ने कहा 'जौक शौक' बीच वाला बोला 'गुम सुम', सब के नीचेवाला पुकारा 'गए हम'। सो हिन्दुस्तान की साधारण प्रजा की दशा यही है, गए हम।

पहले भी जब आर्य्य लोग हिन्दुस्तान में आ कर बसे थे, राजा और ब्राह्मणों ही के जिम्मे यह काम था कि देश में नाना प्रकार की विद्या और नीति फैलावैं और

अब भी ये लोग चाहें तो हिन्दुस्तान प्रतिदिन कौन कहे प्रतिछिन बढ़े। पर इन्हीं लोगों को सारे संसार के निकम्मेपन ने घेर रखा है। ''बौद्धारो मत्सरग्रस्ता प्रभवः स्मरदूषिताः।'' हम नहीं समझते कि इन लाज भी क्यौं नहीं आती कि उस समय में जब इनके पुरुषों के पास कोई भी सामान नहीं था तब उन लोगों ने जंगल में पत्ते और मिट्टी की कुटियों में बैठ कर के बांस की नलियों से जो तारा ग्रह आदि वेध कर के उन की गति लिखी है वह ऐसी ठीक है कि सोलह लाख रुपये के लागत की विलायत में जो दूरबीनें बनी हैं उन से उन ग्रहों को वेध करने में भी वही गति ठीक आती है, और जब आज इस काल में हम लोगों को अंगरेजी विद्या की और जगत की उन्नति की कृपा से लाखों पुस्तकें और हजारों यन्त्र तैयार हैं तब हम लोग निरी चुंगी की कतवार फेंकने की गाड़ी बन रहे हैं। यह समय ऐसा है कि उन्नति की मानो घुड़दौड़ हो रही है। अमेरिकन, अंगरेज, फरासीस आदि तुरकी ताजी सब सरपट्ट दौड़े जाते हैं। सब के जी में यही है कि पाला हमीं पहले छू लें। उस समय हिन्दू काठियावाड़ी खाली खड़े खड़े टाप से मिट्टी खोदते हैं। इन को, औरों को जाने दीजिए, जापानी टट्टुओं को हांफते हुए दौड़ते देख कर भी लाज नहीं आती। यह समय ऐसा है कि जो पीछे रह जायगा फिर कोटि उपाय किए भी आगे न बढ़ सकेगा। इस लूट में, इस बरसात में भी जिस के सिर पर कमबख्ती का छाता और आंखों में मूर्खता की पट्टी बंधी रहे उन पर ईश्वर का कोप ही कहना चाहिए।

मुझ को मेरे मित्रों ने कहा था कि तुम इस विषय पर आज कुछ कहो कि हिन्दुस्तान की कैसे उन्नति हो सकती है। भला इस विषय पर मैं और क्या कहूं। भागवत में एक श्लोक है 'नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरु कर्णधारं। मयाऽनुकूलेन नभः स्वतेरितुं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा।'' भगवान कहते हैं कि पहले तो मनुष्य जनम ही बड़ा दुर्लभ है, सो मिला और उस पर गुरु की कृपा और मेरी अनुकूलता। इतना सामान पाकर भी जो मनुष्य इस संसार सागर के पार न जाय उस को आत्म हत्यारा कहना चाहिए। वही दशा इस समय हिन्दुस्तान की है। अंगरेजों के राज्य में सब प्रकार का सामान पाकर अवसर पाकर भी हम लोग जो इस समय पर उन्नति न करैं तो हमारा केवल अभाग्य और परमेश्वर का कोप ही है। सास के अनुमोदन से एकान्त रात में सूने रंगमहल में जाकर भी बहुत दिन से जिस प्रान से प्यारे परदेशी पति से मिल कर छाती ठंडी करने की इच्छा थी, उस का लाज से मुंह भी न देखै और बोलै भी न, तो उस का अभाग्य ही है। वह तो कल फिर परदेश चला जायगा। वैसे ही अंगरेजों के राज्य में भी जो हम कुएं के मेंढक, काठ के उल्लू, पिंजड़े के गंगाराम ही रहैं तो हमारी कमबख्त कमबख्ती फिर कमबख्ती है।

बहुत लोग यह कहेंगे कि हम को पेट के धन्धे के मारे छुट्टी ही नहीं रहती बाबा, हम क्या उन्नति करैं? तुम्हारा पेट भरा है तुम को दून की सूझती है। यह

कहना उनका बहुत भूल है। इंगलैंड का पेट भी कभी यों ही खाली था। उस ने एक हाथ से अपना पेट भरा, दूसरे हाथ से उन्नति की राह के कांटों को साफ किया। क्या इंगलैंड में किसान, खेतवाले, गाड़ीवान, मजदूरे, कोचवान आदि नहीं हैं? किसी देश में भी सभी पेट भरे हुए नहीं होते। किन्तु वे लोग जहां खेत जोतते बोते हैं वहीं उस के साथ यह भी सोचते हैं कि ऐसी और कौन नई कल या मसाला बनावैं जिस में इस खेती में आगे से दूना अन्न उपजै। विलायत में गाड़ी के कोचवान भी अखबार पढ़ते हैं। जब मालिक उतर कर किसी दोस्त के यहां गया उसी समय कोचवान ने गद्दी के नीचे से अखबार निकाला। यहां उतनी देर कोचवान हुक्का पीएगा या गप्प करेगा। सो गप्प भी निकम्मी। वहां के लोग गप्प ही में देश के प्रबन्ध छांटते हैं। सिद्धान्त यह कि वहां के लोगों का यह सिद्धान्त है कि एक छिन भी व्यर्थ न जाय। उस के बदले यहां के लोगों को जितना निकम्मापन हो उतना ही बड़ा अमीर समझा जाता है। आलस यहां इतनी बढ़ गई कि मलूकदास ने दोहा ही बना डाला "अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम। दास मलूका कहि गए, सबके दाता राम।" चारों ओर आंख उठा कर देखिए तो बिना काम करनेवालों की ही चारों ओर बढ़ती है। रोजगार कहीं कुछ भी नहीं है। अमीरों की मुसाहबी, दल्लाली या अमीरों के नौजवान लड़कों को खराब करना या किसी की जमा मार लेना, इनके सिवा बतलाइए और कौन रोजगार है जिससे कुछ रुपया मिलै। चारों ओर दरिद्रता की आग लगी हुई है। किसी ने बहुत ठीक कहा है कि दरिद्र कुटुम्ब इसी तरह अपनी इज्जत को बचाता फिरता है जैसे लाजवती कुल की बहू फटे कपड़ों में अपने अंग को छिपाए जाती है। वही दशा हिन्दुस्तान की है।

मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट देखने से स्पष्ट होता है कि मनुष्य दिन दिन यहां बढ़ते जाते हैं और रुपया दिन दिन कमती होता जाता है। तो अब बिना ऐसा उपाय किए काम नहीं चलेगा कि रुपया भी बढ़े और वह रुपया बिना बुद्धि बढ़े न बढ़ेगा। भाइयो, राजा महाराजों का मुंह मत देखो, मत यह आशा रक्खो कि पंडितजी कथा में कोई ऐसा उपाय भी बतलावैंगे कि देश का रुपया और बुद्धि बढ़े। तुम आप ही कमर कसो, आलस छोड़ो। कब तक अपने को जंगली हूस मूर्ख बोदे डरपोकने पुकरवाओगे। दौड़ो इस घोड़दौड़ में जो पीछे पड़े तो फिर कहीं ठिकाना नहीं है। 'फिर कब राम जनकपुर ऐहैं'। अब की जो पीछे पड़े तो फिर रसातल ही पहुंचोगे। जब पृथ्वीराज को कैद कर के गोर ले गए तो शहाबुद्दीन के भाई गियासुद्दीन से किसी ने कहा कि वह शब्दभेदी बाण बहुत अच्छा मारता है। एक दिन सभा नियत हुई और सात लोहे के तावे बाण से फोड़ने को रक्खे गए। पृथ्वीराज को लोगों ने पहिले ही से अन्धा कर दिया था। संकेत यह हुआ कि जब गियासुद्दीन हूं करे तब वह तावों पर बाण मारे। चन्द कवि भी उसके साथ कैदी था। यह सामान देख कर उस ने यह दोहा पढ़ा। "अबकी चढ़ी कमान, को जानै फिर कब चढ़ै। जिनि चुक्कै चौहान,

इक्कै मारय इक्क सर।'' उसका संकेत समझ कर जब गियासुद्दीन ने हूं किया तो पृथ्वीराज ने उसी को बाण मार दिया। वही बात अब है। अब की चढ़ी, इस समय में सरकार का राज्य पाकर और उन्नति का इतना सामान पाकर भी तुम लोग अपने को न सुधारो तो तुम्हीं रहो। और वह सुधारना भी ऐसा होना चाहिए कि सब बात में उन्नति हो। धर्म्म में, घर के काम में, बाहर के काम में, रोजगार में, शिष्टाचार में, चाल चलन में, शरीर के बल में, मन के बल में, समाज में, बालक में, युवा में, वृद्ध में, स्त्री में, पुरुष में, अमीर में, गरीब में, भारतवर्ष की सब अवस्था, सब जाति सब देश में उन्नति करो। सब ऐसी बातों को छोड़ो जो तुम्हारे इस पथ के कंटक हों, चाहे तुम्हें लोग निकम्मा कहैं या नंगा कहैं, कृस्तान कहैं या भ्रष्ट कहैं। तुम केवल अपने देश की दीनदशा को देखो और उनकी बात मत सुनो–

अपमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा तु पृष्ठतः।
स्वकार्य्यं साधयेत् धीमान् कार्य्यध्वंसो हि मूर्खता॥

जो लोग अपने को देशहितैषी लगाते हों वह अपने सुख को होम कर के, अपने धन और मान का बलिदान कर के कमर कस के उठो। देखा देखी थोड़े दिन में सब हो जायगा। अपनी खराबियों के मूल कारणों को खोजो। कोई धर्म्म की आड़ में, कोई देश की चाल की आड़ में, कोई सुख की आड़ में छिपे हैं। उन चोरों को वहां वहां से पकड़ पकड़ कर लाओ। उनको बांध बांध कर कैद करो। हम इस से बढ़ कर क्या कहें कि जैसे तुम्हारे घर में कोई पुरुष व्यभिचार करने आवै तो जिस क्रोध से उसको पकड़ कर मारोगे और जहां तक तुम्हारे में शक्ति होगी उस का सत्यानाश करोगे। उसी तरह इस समय जो जो बातैं तुम्हारे उन्नति पथ में कांटा हों उन की जड़ खोद कर फेंक दो। कुछ मत डरो। जब तके सौ दो सौ मनुष्य बदनाम न होंगे, जात से बाहर न निकाले जायंगे, दरिद्र न हो जायंगे, कैद न होंगे वरंच जान से न मारे जायंगे तब तक कोई देश भी न सुधरैगा।

अब यह प्रश्न होगा कि भाई हम तो जानते ही नहीं कि उन्नति और सुधारना किस चिड़िया का नाम है। किस को अच्छा समझैं? क्या लें, क्या छोड़ें? तो कुछ बातैं जो इस शीघ्रता में मेरे ध्यान में आती हैं उन को मैं कहता हूं, सुनो–

सब उन्नतियों का मूल धर्म्म है। इस से सब के पहिले धर्म्म की ही उन्नति करनी उचित है। देखो, अंगरेजों की धर्म्मनीति और राजनीति परस्पर मिली हैं, इस से उन की दिन दिन कैसी उन्नति है। उन को जाने दो, अपने ही यहां देखो! तुम्हारे यहां धर्म की आड़ में नाना प्रकार की नीति, समाज गठन, वैद्यक आदि भरे हुए हैं। दो एक मिसाल सुनो। यही तुम्हारा बलिया का मेला और यहां स्नान क्यौं बनाया गया है? जिस में जो लोग कभी आपस में नहीं मिलते, दस दस पांच पांच कोस से वे लोग साल में एक जगह एकत्र होकर आपस में मिलें। एक दूसरे का दुःख

सुख जानैं। गृहस्थी के काम की वह चीजैं जो गांव में नहीं मिलतीं, यहां से ले जायं। एकादशी का व्रत क्यौं रखा है? जिस में महीने में दो एक उपवास से शरीर शुद्ध हो जाय। गंगाजी नहाने जाते हो तो पहिले पानी सिर पर चढ़ा कर तब पैर पर डालने का विधान क्यौं है? जिस में तलुए से गरमी सिर में चढ़ कर विकार न उत्पन्न करे। दीवाली इसी हेतु है कि इसी बहाने साल भर में एक बेर तो सफाई हो जाय। यही तिहवार ही तुम्हारी मानो म्युनिसिपालिटी हैं। ऐसे ही सब पर्व सब तीर्थ व्रत आदि में कोई हिकमत है। उन लोगों ने धर्म्मनीति और समाजनीति को दूध पानी की भांति मिला दिया है। खराबी जो बीच में भई है वह यह है कि उन लोगों ने ये धर्म्म क्यौं मानन लिखे थे, इसका लोगों ने मतलब नहीं समझा और इन बातों को वास्तविक धर्म्म मान लिया। भाइयो, वास्तविक धर्म्म तो केवल परमेश्वर के चरणकमल का भजन है। ये सब तो समाजधर्म्म हैं जो देशकाल के अनुसार शोधे और बदले जा सकते हैं। दूसरी खराबी यह हुई कि उन्हीं महात्मा बुद्धिमान ऋषियों के वंश के लोगों ने अपने बाप दादों का मतलब न समझ कर बहुत से नए नए धर्म्म बना कर शास्त्र में धर दिए। बस सभी तिथि व्रत और सभी स्थान तीर्थ हो गए। सो इन बातों को अब एक बेर आंख खोल कर देख और समझ लीजिए कि फलानी बात उन बुद्धिमान ऋषियों ने क्यौं बनाई और उन में देश और काल के जो अनुकूल और उपकारी हों उन को ग्रहण कीजिए। बहुत सी बातें जो समाज विरुद्ध मानी हैं किन्तु धर्म्मशास्त्रों में जिनका विधान है उन को चलाइए। जैसे जहाज का सफर, विधवा विवाह आदि। लड़कों को छोटेपन ही में ब्याह कर के उनका बल, वीर्य, आयुष्य सब मत घटाइए। आप उन के मां बाप हैं या उन के शत्रु हैं। वीर्य उन के शरीर में पुष्ट होने दीजिए, विद्या कुछ पढ़ लेने दीजिए, नोन, तेल, लकड़ी की फिक्र करने की बुद्धि सीख लेने दीजिए तब उन का पैर काठ में डालिए। कुलीन प्रथा, बहुविवाह को दूर कीजिए। लड़कियों को भी पढ़ाइए, किन्तु उस चाल से नहीं जैसे आजकल पढ़ाई जाती हैं जिस से उपकार के बदले बुराई होती है। ऐसी चाल से उन को शिक्षा दीजिए कि वह अपना देश और कुलधर्म्म सीखे, पति की भक्ति करैं और लड़कों को सहज में शिक्षा दें। वैष्णव शाक्त इत्यादि नाना प्रकार के मत के लोग आपस का वैर छोड़ दें। यह समय इन झगड़ों का नहीं। हिन्दू, जैन, मुसलमान सब आपस में मिलिए। जाति में कोई चाहे ऊंचा हो चाहे नीचा हो सब का आदर कीजिए, जो जिस योग्य हो उस को वैसा मानिए। छोटी जाति के लोगों को तिरस्कार कर के उन का जी मत तोड़िए। सब लोग आपस में मिलिए।

मुसलमान भाइयों को भी उचित है कि इस हिन्दुस्तान में बस कर वे लोग हिन्दुओं को नीचा समझना छोड़ दें। ठीक भाइयों की भांति हिन्दुओं से बरताव करैं। ऐसी बात, जो हिन्दुओं का ज़ी दुखाने वाली हो, न करैं। घर में आग लगै तब जिठानी

द्यौरानी को आपस का डाह छोड़ कर एक साथ वह आग बुझानी चाहिए। जो बात हिन्दुओं को नहीं मयस्सर है वह धर्म्म के प्रभाव से मुसलमानों को सहज प्राप्त हैं। उन में जाति नहीं, खाने पीने में चौका चूल्हा नहीं, विलायत जाने में रोक टोक नहीं। फिर भी बड़े ही सोच की बात है, मुसलमानों ने अभी तक अपनी दशा कुछ नहीं सुधारी। अभी तक बहुतों को यही ज्ञान है कि दिल्ली, लखनऊ की बादशाहत कायम है। यारो! वे दिन गए। अब आलस हठधर्म्मी यह सब छोड़ो। चलो, हिन्दुओं के साथ तुम भी दौड़ो, एक एक दो होंगे। पुरानी बातैं दूर करो। मीरहसन की मसनवी और इन्दरसभा पढ़ा कर छोटेपन ही से लड़कों को सत्यानाश मत करो। होश संभाला नहीं कि पट्टी पार ली, चुस्त कपड़ा पहना और गजल गुनगुनाए। "शौक तिफ्ली से मुझे गुल की जो दीदार का था। न किया हमने गुलिस्तां का सबक याद कभी"। भला सोचो कि इस हालत में बड़े होने पर वे लड़के क्यौं न बिगड़ैंगे। अपने लड़कों को ऐसी किताबें छूने भी मत दो। अच्छी से अच्छी उन को तालीम दो। पिनशिन और वजीफा या नौकरी का भरोसा छोड़ो। लड़कों को रोजगार सिखलाओ। विलायत भेजो। छोटेपन से मिहनत करने की आदत दिलाओ। सौ सौ महलों के लाड़ प्यार दुनिया से बेखबर रहने की राह मत दिखलाओ।

भाई हिन्दुओ! तुम भी मतमतान्तर का आग्रह छोड़ो। आपस में प्रेम बढ़ाओ इस महामन्त्र का जप करो। जो हिन्दुस्तान में रहे, चाहे किसी रंग किसी जाति का क्यौं न हो, वह हिन्दू। हिन्दू की सहायता करो। बंगाली, मरट्ठा, पंजाबी, मदरासी, वैदिक, जैन, ब्राह्मणों, मुसलमान सब एक का हाथ एक पकड़ो। कारीगरी जिस में तुम्हारे यहां बढ़े, तुम्हारा रुपया तुम्हारे ही देश में रहै वह करो। देखो, जैसे हजार धारा होकर गंगा समुद्र में मिली हैं, वैसे ही तुम्हारी लक्ष्मी हजार तरह से इंगलैंड, फरासीस, जर्मनी, अमेरिका को जाती हैं। दीआसलाई ऐसी तुच्छ वस्तु भी वहीं से आती है। जरा अपने ही को देखो तुम जिस मारकीन की धोती पहने हो वह अमेरिका की बिनी है। जिस लांकिलाट का तुम्हारा अंगा है वह इंगलैंड का है। फरासीस की बनी कंघी से तुम सिर झारते हो और वह जर्मनी की बनी चर्बी की बत्ती तुम्हारे सामने बल रही है। यह तो वही मसल हुई कि एक बेफिकरे मंगनी का कपड़ा पहिन कर किसी महफ़िल में गए। कपड़े को पहिचान कर एक ने कहा, 'अजी यह अंगा फलाने का है'। दूसरा बोला, 'अजी टोपी भी फलाने की है।' तो उन्होंने हंस कर जवाब दिया कि, 'घर की तो मूछैं ही मूछैं हैं।' हाय अफसोस, तुम ऐसे हो गए कि अपने निज के काम की वस्तु भी नहीं बना सकते। भाइयो, अब तो नींद से चौंको, अपने देश की सब प्रकार उन्नति करो। जिस में तुम्हारी भलाई हो वैसी ही किताब पढ़ो, वैसे ही खेल खेलो, वैसी ही बातचीत करो। परदेशी वस्तु और परदेशी भाषा का भरोसा मत रखो। अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करो।

[नवम्बर सन 1884 ई. में भारतेन्दु ने बलिया के ददरी मेले में यह व्याख्यान दिया था। यह व्याख्यान दिसम्बर सन 1884 ई. की हरिश्चन्द्र चन्द्रिका में छपा था]

[भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बलिया पहुंचने और ददरी मेले में भाषण करने का विवरण रविदत्त शुक्ल ने लिखा है। भारतेन्दु के भाषण से पूर्व आर्यदेशोपकारिणी सभा के सेक्रेटरी पं. इन्दिरादत्त उपाध्याय ने उनकी प्रशंसा में एक ऐड्रेस पढ़ा था। यहां प्रारम्भ में रविदत्त शुक्ल द्वारा दिया गया विवरण और पं. इन्दिरादत्त उपाध्याय द्वारा पढ़ा गया ऐड्रेस अविकल रूप में दिया गया है।]

पश्चिमोत्तर देश और पंजाब

हम लोगों ने विद्योदय नामक संस्कृत समाचार पत्र का प्रथम नम्बर पाया। यह पत्र लाहौर यूनिवर्सिटी की सहायता से मासिक एक रुपया मूल्य पर विविध समाचार, शिक्षा, प्राचीन और नवीन काव्य और ज्ञान की वार्ता सहित प्रकाश होगा। ईश्वर इस को चिरंजीव करै।

जिस समय हम लोगों ने इस को देखा तो हमारे दक्षिण क्षेत्र से अनर्गल आनन्दाश्रु प्रवाह वैसे ही बाम नयन अखंड शोक जल की धारा उमड़ उठी। क्या हमारे पाठक लोग सन्देह न करैंगे कि एक संग दुःख और सुख दोनों का अनुभव कैसा? सुनैं! आनन्द तो यह कि हमारी मृतप्राय मातृभाषा को हम ने समझा की इस के जीने की आशा क्या वरन् वैसी ही प्रचलित होने की आशा हुई, धन्य धन्य यह समय है। जिस में ऐसे भी पूरे देश के हितैषी लोग हैं जिन लोगों ने ऐसा उत्तम उद्यम किया पर संग ही हम लोगों को जो पश्चिमोत्तर देश की दशा स्मर्ण आई तो वैसा ही दुःख भी हुआ। हा! पश्चिमोत्तर देश! तू ऐसे घुड़दौड़ के समय में जिस में सब आगे बढ़ा चाहते हैं। पीछे क्यौं पड़ा जाता है। हे पश्चिमोत्तर देश के निवासियो! (और देशों को छोड़ कर) हिन्दुस्तान के अन्य प्रदेशों की अवस्था देखो और यदि पुरुष हौ तो उद्यम करो कि उन से भी बढ़ो और जो कापुरुष हौ तो चुल्लू भर पानी में डूब कर मर जाओ फिर मुख मत दिखाओ! हा! विधाता क्या अपने देश को इसी दुःखावस्था में देखने को हम लोगों को जन्म दिया है? ऐसा मत कहना कि तुम भी अन्य देश में जा बसो क्यौं कि हम तो निश्चय और कहीं जा बसैं पर वहां भी जन्मभूमि की दुर्दशा देख कर नित्य दुःख ही भोगना रहैगा। हे! करुणा वरुणालय जगदीश्वर! नाथ! बहुत दिनों तक तेरे कोपानल से यह देश दग्ध हुआ, अब तू हम लोगों की ओर मत देख अपनी दीनोद्धरण रूपी सत्य प्रतिज्ञा का प्रतिपालन कर। पितः! हम लोग किसकी शरण जायं। प्यारे! हम लोगों को उस समाज में लज्जित न कर जहां सब लोग अपनी वृद्धि की बातैं करते हों। नाथ! हम लोगों की आंखैं नीची न हों—नहीं तो एक संग प्रलय वृष्टि से मूल सहित धो बहा। प्यारे! फूटी सही जाती है पर काने! काने! यह नहीं सुना जाता। हा!!!

अरे मेरे प्यारे भाइयो! टुक तो आंख खोल कर काल की ओर देखो। कुछ तो लज्जा करो या लज्जा न करो तो लालच ही करो। हाय जिस समय में सब अपना हित साध चुके तुम क्यों पीछे रह जाते हो। केवल 11.) के ब्याज में सन्तोष और 'जनाब जनाब' में योग्यता वैसे ही 'साहिब लोगों की मुलाकात' परम पुरुषार्थ और वही या अंगरेज़ी फारसी के पत्रों ही के पढ़ लेने...

अपूर्ण

[कविवचन सुधा, जून सन 1872 ई.]

पश्चिमोत्तर देश की कमेटियां

हम लोगों ने एक चतुर के मुख से कमेटी शब्द के हिन्दी में कई अर्थ सुने थे जैसा 'कु' नाम बुरी बातें उन को मिटावै उस का नाम कुमेटी वा 'कु' नाम पृथ्वी उस को जो मिटावै वह कमेटी इसका आशय यह है कि चार मनुष्य मिल कर सारी पृथ्वी को भी मिटा सकते हैं वा 'क' नाम ब्रह्मा को भी मिटाने का समर्थ हो वा 'क' जल अर्थात समुद्र भी सुखाने को समर्थ हो... का मेल क्या नहीं कर सकता और सौ मनुष्य एक होकर किस काम में असमर्थ होंगे। परन्तु हम लोग पश्चिमोत्तर देश की कमेटियों में इन अर्थों में से किसी को सार्थ नहीं समझते वरन् सम्पूर्ण निष्फल कहें तो भी झूठ न होगा। पश्चिमोत्तर देश के सब नगरों के कमेटियों के लेखाध्यक्ष वा सम्पादक लोग बतलावें तो कि उन की कमेटियों ने आज तक क्या किया, हां उत्तर देते हैं, बोलिए। एक कहते हैं कि महाराज लोगों को पेट्रन (परमाध्यक्ष) बनाया दूसरे बोलते हैं कि जब ड्यूक ऑफ एडिनबरा आए थे तक उन को स्वागत देकर धन्यवाद लिया तीसरे आज्ञा करते हैं कि जब लॉर्ड म्यौ का स्वर्गवास हुआ उस समय शोक प्रकाश कर के लेडी म्यौ के चित्त में स्थान पाया चौथे बक उठे जब नए गवर्नर जेनरल आए तो सब के पूर्व्व स्वागत पत्र भेज कर उसके उत्तर में धन्यवाद मंगाया पांचवें ने मुंह खोला कि मुंशी प्यारे लाल की हां में हां मिला कर विवाह के व्यय के (बिना बात के) लम्बे लम्बे रिपोर्ट भेज कर देश हितैषियों में अपनी भी गिनती कराई छठे गाने लगे कि चाहे कुछ न हुआ हो इन्हीं कमेटियों के बहाने हाकिमों से (क्या वरन लेफ्टिनेंट गवर्नर बहादुर से) जान पहिचान तो हुई और वे घर में तो आए अब इस से बढ़ कर आप क्या चाहते हैं। हां भाई म्यूनिसिपल कमेटी के सेक्रेटरियों ने क्यौं नहीं कुछ उत्तर दिया? उन की भी सुनिए। हमारी कमेटियों ने जहां साहब लोगों की बग्गी दौड़ती है वहां सड़कैं पिटवाई लालटैनें लगवाई पानी छिड़कवाया इस से भी रु. बचा तो कोई तालाब बनाया कोई बगीचा बनाया जहां चार मनुष्य सांझ को बिहार करैं अब इस से बढ़ के और क्या करैंगे और जो नगर के भीतर की कहो या वहां के निज निवासियों की कहो तो उन से मुझ से काम भाड़ में पड़ैं चाहे चूल्हे में पड़ैं

जब नगरवासी अंगरेजी पढ़ कर उस योग्यता को पहुचैंगे तो आप अपने स्थानों की स्वच्छता कर लेंगे। फिर हम किसी हाकिम के विरुद्ध (किसी कमेटी में भी) क्यों बोलैं हम ने सौ के सीधे कई शब्द ऐसे सीख लिए हैं जिन में कोई खटका ही नहीं है।... शाद' ''साहब क्या कोई फरक की बात कहैंगे?'' ''जो साहेब की राय सो हमारी राय'' 'हजूर' ''इस में क्या शक है'' ''आप क्या हमारे अनहित की कहैंगे'' ''साहबे से ज्यादे कौन समझदार है जो कहते हैं सब ठीक है'' ''मैं कमेटी की ओर से साहेब को इस स्पीच (कहने) का धन्यवाद देता हूं ''इस में मेरी पूर्ण सम्मति है'' इत्यादि। और जो फिर कुछ न कहैंगे तो हाथ तो कहीं नहीं गए हैं सब को ताली बजाता देख कर ताली बजा देंगे या इस में भी भय लगैगा तो सब का मुंह देखा करैंगे जब सब घर चले जायंगे हम भी चले जायंगे; बैठे बिठाए किसी के विरुद्ध बोल कर झगड़ा मोल ले आंखों पर चढ़ैं खफगी में पड़ै दरबार से नाम कटवावै इस से लाभ क्या। हा! यह आप लोगों के उत्तर किसी काम के नहीं हैं क्यौंकि कमेटियों की इति कर्त्तव्यता यही है तो पगड़ी बांध बांध कर सिर की पीड़ा मोल लेनी, कपड़े और चांदनी के बिछौने मैले करने, तेल बत्ती जला कर उस में पतंगों का होम करना, काग़ज़ कलम दावात और पिंसिन को नाश करना वैसे ही बक बक कर अपना और दूसरों का सिर भर देना इस से क्या लाभ है। क्यौं नहीं लाभ है और कुछ नहीं तो इतना तो अवश्य ही है कि अपनी आत्मा का प्रकाश होता है। अहहह हा! अरे भाइयो इतना क्यौं उड़ते हो बस चोंच बन्द करो इस व्यर्थ के पर फड़फड़ाने से क्या फल मिलैगा। निश्चय रक्खो कि तुम्हारे इस आचरण पर सच्चे लोग कभी तुम्हें हांजी हांजी नहीं वरन सर्व्वदा निकम्मे उपरी और अकिंचित् कर कर कहैंगे। हां यदि अलीगढ़ इंस्टीट्यूट के लेखाध्यक्ष कुछ बोलैं तो हम प्रमाण मानैं क्यौंकि मारपीट कर किसी भांति अब तक जितना उन लोगों ने किया है वह बहुत किया है थोड़ा नहीं है। कमेटियों का क्या कर्त्तव्य है, क्या नहीं इस के उत्तर में केवल अमेरिका वा यूरोप के समाचार ही उदाहरण रूप हैं क्यौंकि कमेटियों का बल और कमेटियों का आदर वह है कि अमेरिका और फरासीस की राज सम्बन्धी कमेटियों के प्रेसीडेंट महाराजधिराज का अधिकार रखते हैं भला उन को जाने दीजिए क्यौंकि भारतवर्ष अभी उस पद को नहीं पहुंचा है हिन्दुस्तान ही के और प्रदेश की कमेटियों की ओर देखिए कि एशियाटिक, सार्व्वजनिक इत्यादि कलकत्ते वा बम्बई में कैसी बड़ी बड़ी कमेटियां हैं और उन से कैसे कैसे फल हैं इन के अतिरिक्त और भी जो छोटी छोटी कमेटियां हैं वे भी अकिंचित्कर नहीं हैं कोई एक समाचार पत्र ही चलाती है कोई दीनों को भोजनादिक ही देती है कोई पुस्तक बनवाती है कोई धर्म्म सम्बन्धी है अर्थात् सब कुछ ही न कुछ किया करती हैं न कि हमारे देश की 'लपोड़शंख' कमेटियां।

एक और विषय से हम लोगों को बड़ा आश्चर्य्य होता है कि हम ने जितने कमेटियों के नियम पत्र पढ़े उन में दो नियम सब के पहिले देखें एक तो धर्म्म सम्बन्धी

बातें न होंगी दूसरे गवर्नमेन्ट की किसी आज्ञा पर कुछ विचार न होगा। वाह! वाह! यह कैसे हंसी की बात है जो इन्हीं बातों का विचार न होगा तो होगा क्या, लोक परलोक दोनों के हेतु यही दो बातें बहुत बड़ी हैं उन्हें हमने पहिले ही छोड़ दिया फिर हम प्रवर्त्त क्यों हुए क्या गवर्नमेन्ट कोई ऐसा एक्ट प्रचलित करना चाहै कि जिस में हमारी सर्व्व प्रकार से हानि है तो उस समय कुछ न बोलना यही बुद्धिमानी है? इन्हीं लक्षणों से तो यह दशा है।

कमेटियों के हेतु सब के पहिला अपना जी मिलाना है सब लोग अपना अपना जी पहिले एक करके फिर बद्धपरिकर होकर 'अजरामरवत्प्राज्ञो विद्यामर्थञ्चिचिंतयेत्' सोच कर दृढ़ हो कर 'देहं वा पातयेयं कार्य्यं वा साधयेयं' कह कर उठो फिर देखो कौन काम नहीं सिद्ध होता अन्यथा इन थोथी कमेटियों का तो केवल श्रम मात्र फल है।

जिस में भी विशेष कर के बनारस के कमेटियों की दशा तो बड़ी विचित्र है सब आरम्भ शूर हैं, आज तक किसी से कुछ लाभ न हुआ और किसी कमेटी से कुछ फल न निकला हां यदि कुछ किया तो उन दोनों कमेटियों ने जो प्रति बरसात में जगती हैं और जिन में यहां के बड़े रईस और रईसों के लड़के मेम्बर हैं और जिस में चन्दे से खाना और 'मुजरा' होता है भला! बनारस इंस्टीट्यूट, यङ्गमेन्स एसोसिएशन, डिबेटिङ्ग क्लब, धर्म्मसभा, ब्रिटिश एसोसिएशन वा मुफीद इन के मेम्बर लोग बोलैं तो कि उन लोगों ने हिन्द समक्ष क्या है 'अकरणात्मन्दकरणंश्रेयं' कुछ न करने से तो मुजरा सुनना अच्छा है और फिर पूर्व्वोक्त कमेटियों में बड़े बड़े महाराज लोग हैं और कुछ नहीं होता और इस खाने मुजरे की कमेटी में ऐसे ऐसे कंजूस मक्खीचूस हैं जो... का पैसा दांत से उठा लें और चार मनुष्यों में रण्डी का नाम सुन कर कानों पर हाथ रख कर 'रामकृष्ण गोविन्द' कहने लगें और जिन के पिता वा भाई ऐसे बाह्य सभ्य कि जिन को अपनी बात बनाते दिन बीतै पर वे लोग भी एक मत होकर कुछ करते ही हैं हम इन दोनों कमेटियों का इस स्थान पर नाम न लेते केवल इस हेतु उस का वृत्तान्त लिख गया कि और बड़ी बड़ी कमेटी वाले इसे सुन के लज्जित होकर निश्चय करैं कि वे इन कमेटियों की अपेक्षा भी अकिंचित् कर हैं। जो हमारे पाठक लोग कौतुकी हो कर उन दोनों कमेटियों का समाचार जानना चाहैंगे तो अगले बिन्दु में हम लोग सविस्तर नाम ग्राम पूर्व्वक उस का समाचार लिखैंगे।

(कविवचन सुधा, 5 जुलाई, सन 1872 ई.)

पब्लिक ओपिनियन

पब्लिक ओपिनियन अर्थात सब साधारण लोगों की राय क्या वस्तु है और इस में कितना जोर है और इस के किए क्या हो सकता है यह प्रश्न ठहरा तो इस का साधारण उत्तर यही है कि यह वह वस्तु है जो संसार को एक कर सकती है गंगा की धारा फिर हिमालय पर चढ़ा ले जा सकती है, सूर्य्य को पश्चिम उगा सकती है और चाहे तो ईश्वर को भी पकड़ के कठपुतली की भांति नचा सकती है; यह मेरा कहना कभी असत्य नहीं है क्योंकि दस आदमी मिल कर कठिन काम को भी सहल कर सकते हैं, फूही फूही तलाव भरता है और चार पांच की लाठी एक का बोझ होता है ये कहावतें छोटे आदमियों में भी प्रसिद्ध हैं, और मैंने जो छोटेपन में एक बूढ़ा और उस के चार लड़के की कहानी पढ़ी थी वह मुझे अब तक नहीं भूलती कि एक बूढ़े के चार लड़के थे और जब वे आपस में लड़ कर अलग होने लगे तो बूढ़े ने चार पतली लकड़ियां एक में बांध के उन को दी और कहा कि इस को तोड़ों पर उन में से कोई भी उस को न तोड़ सका फिर बूढ़े ने हंस कर वह लकड़ी ले ली और खोल कर एक एक को दी तब उन लोगों ने सहज में तोड़ डाली तब बूढ़े ने अपने लड़कों से केवल इतना ही कहा कि देखो जो तुम लोग भी ऐसे ही एक में (एक मत से) रहोगे तो तुम्हारे बड़े बड़े बैरी भी तुम्हारा कोई बिगाड़ नहीं कर सकेंगे, और जो तुम अलग अलग रहोगे तो इसी लकड़ी की भांति लोग तुम्हारा बिगाड़ सहज में कर सकैंगे, प्रत्यक्ष है कि राजा का नाम भर होता है असल में सेना ही देशों को जीतती है और उन की रक्षा करती है; और उस में भी जब बहुत लोगों की राय एकत्र हो तो फिर क्या पूछना है क्यौंकि एक मनुष्य की बुद्धि से ऐसे ऐसे काम होते हैं कि जो हजारों आदमियों के किए नहीं हो सकते तो फिर हजारों आदमी की बुद्धि एक हो तो ऐसा कौन काम है जो न हो सके तो यह सिद्धान्त हुआ कि निश्चय सब लोगों के एक मत में बड़ी सामर्थ्य है इस से यह सिद्ध हुआ कि बलों से बड़ा बल एक मत ही है।

अब यह प्रश्न आया कि हिन्दुस्थान में सब साधारण लोगों की बात में जो आगे से है वा अब हुआ? हम यह कहैंगे कि पहिले पहिल जब से हिन्दुओं का मत

चला और जब से वेद बना हिन्दुओं का सब काम समाज ही के मत पर चलाया गया था पर बीच में उस में ऐसी ऐसी बाधा हुई कि अब वे सब बातें नष्ट होकर 'नौ कनौजिया, दस चूल्हा' हो गया। मुसलमान और क्रिस्तान हम लोगों के वर्ण भेद को हंसते हैं पर यह नहीं जानते कि इस वर्ण व्यवहार की प्रवृत्ति क्यों है? क्या केवल इसी लोगों की हंसी के हेतु है? यह एक एक वर्ण में सौ सौ जाति होकर आपस में द्वेष करने के हेतु है यह हिन्दुओं के परस्पर खान पान व्यवहार छूट जाने और एक को दूसरे की सहायता करने में असमर्थ होने को है? कभी नहीं यह वर्ण भेद तो केवल हिन्दुस्तान में 'पब्लिक ओपिनियन' के स्थिर होने ही के हेतु बना था पर शोच है कि लोगों ने उसका उलटा ही मतलब समझा और आचरण भी उलटा ही किया। आह! काल भी क्या विचित्र वस्तु है जिस के बल से वह वृक्ष जो अमृत फलने के हेतु लगाया गया था अब विष फल फलता है; हा!

मैंने विचार किया था कि एक छोटी सी पुस्तक ऐसी लिखूं जिस में सब हिन्दुओं के प्राचीन काल के यावद्धर्म्म शास्त्र मात्र को वैद्यक से साबित कर दूं कि जब पहिले पहल धर्म्म शास्त्र या और शास्त्र जो बनाए गए तो धर्म्म की आड़ में उन लोगों ने हमैं केवल रात दिन के खान पान में रितुओं के अनुसार खाली शारीरिक वैद्यक ही बताया था परन्तु वह पुस्तक भी नहीं लिखी गई और न इस वक्त इस बात का मौका है कि मैं इस पर उलझूं सब लोग अगर यह विषय सुनना चाहैंगे तो मैं फिर कभी ब्यौरेवार सुनाऊंगा और निश्चय उस में आप लोग कुछ ऐसे सुबूत पावैंगे कि एक नई बात समझैंगे और बड़ा आश्चर्य्य करैंगे।

इस समय मैं वर्णाश्रम धर्म्म का जिक्र करता था कि यह वर्णाश्रम धर्म्म केवल सब लोगों के एक मत रहने के लिए बना है; हिन्दुओं ने अपने गुरु के काम में इस वर्णाश्रम धर्म्म को इसी वास्ते बनाया जिस में उन के किसी काम में कोई हर्ज न हो और उन लोगों ने संसार के सब कामों में चार काम मुख्य समझे : पहला धर्म्म का और विद्या तथा कलाओं का, दूसरा लड़ाई और राज्य का प्रबन्ध, तीसरा व्यापार और धन और चौथा सब लोगों की सेवा और मजदूरी; और इन चार कामों पर अपने को चार फिरके में कर के बांट लिया जिस में एक को दूसरे के काम का रोना न रहै, जो लड़ने वाले हैं वह व्यापार से सुचित्त रहैं जो व्यापार करने वाले हैं उन्हें अपने धन के रक्षा का सोच न रहै एक दूसरे की सहायता से अपने काम को सुख से करैं, और उस में भी राज के बड़े बड़े कामों में चारों वर्ण मिलते थे क्यौंकि हिन्दू सब राजाओं के निमय थे कि उन के खास बड़े जो चार मन्त्री होते थे वे चारों वर्ण के होते थे और ऐसे ही धर्म्म के बड़े कामों में भी चारों एकत्र होते थे क्यौंकि सब यज्ञों में चारों वर्णो की पूजा होती है; पर इस बड़के इन्तजाम में दो बड़े भारी दोष आ पड़े एक तो ब्राह्मणों का सब से ऊंचा होना दूसरा शूद्रों का सब से नीचा होना, यद्यपि उन लोगों में उस समय ऐसा एका था और एक दूसरे

को ऐसा मानता था कि ये बातें पहिले दोष नहीं समझी गई थीं पर पीछे उस का नतीजा बहुत बुरा निकला।

ब्राह्मणों में आपस में लालच और डाह इतनी बढ़ी कि एक धर्म्म कहने वाले दूसरे धर्म्म कहने वाले के ठीक बरखिलाफ कहने लगे और उस का फल फिर यही हुआ कि उन के इतने फिरके अलग अलग हो गए कि अब एक दूसरे का पानी तक नहीं पीता।

शूद्रों ने समझा कि सब से गए बीते हम हुए तो उन लोगों ने अपने बढ़ने की कोशिश की, सेवा करने वालों में भी जो जो सेवा जिन लोगों के जिस्मे थी उन के वंश के लोग वही जात कहाये और एक दूसरे को ऊंचा नीचा कहने लगे और जो कुछ पढ़े लिखे थे वा मजबूत थे वे छत्री और वैश्यों में मिलने लगे यहां तक कि इस उपरा चढ़ी में आपस में ऐसा बैर बढ़ा और मेल ऐसा नाश हो गया कि सब बल सत्यानाश में मिल गया और यह बात ध्यान के बाहर हो गई कि हिन्दू भी कभी एक मत थे।

इस विरोध के पीछे भारतवर्ष में 'पब्लिक ओपिनियन' ने फिर जैनों के ज़माने में ज़ोर पकड़ा वरंच इस मत की उत्त्पत्ति ही इसी पब्लिक ओपिनियन से हुई हिन्दुओं के जब नाश के दिन निकट आए तब आपुस में परस्पर बड़ा विरोध खड़ा हुआ और उस काल में ब्राह्मणों का बड़ा जोर था वरन ये और वर्णो पर ज्यादती करते थे तो वैश्य और क्षत्रियों की मति इन से फिर गई और बाबू वाली बड़ी पंचाइत में इन लोगों ने वेद धर्म्म छोड़ दिया और इसी एका के पक्के होने के वास्ते कुल की कुछ मुख्यता न रक्खी कर्म्म मुख्य रक्खा और वास्तु संघ श्री संघ इत्यादि बड़े बड़े संघ बनाए गए और उन का सब काम मानो उस समय पब्लिक ओपिनियन ही पर होता रहा इस का विशेष वर्णन मैं मत सम्बन्धी लेक्चरों में कहूंगा।

यह आपस का एका भी हिन्दुस्तान से शीघ्र ही जाता रहा और उस के पीछे फिर कोई ऐसा भारी एका का समय नहीं आया कि सारे हिन्दुस्तान के मुंह से एक आवाज़ निकलै; ऐसे एक मतों के टूट जाने का और परस्पर विरोध होने के कारण केवल इतनी ही है कि इन सब पंचाइतों में और कर्म्म के प्रबन्धों में तथा बड़े बड़े समाजों में जो लोग मिलते थे वे केवल धर्म्म के आड़ और बहाने से मिलते थे इस से अन्त में इन सबों में विघ्न पड़ा और श्वेताम्बर दिगम्बर बौद्ध इत्यादि इस जैन मत के अनेक भेद हो गए।

जैनों के काल के पीछे जब शंकराचार्य्य ने फिर से सब मत स्थापन किया और स्मार्त मत की मुख्य रूप कर के प्रवृत्ति हुई उस दिन से आज तक फिर यह मीठा फल हिन्दुस्तान में न फला और दिन दिन परस्पर वैर और आपस में एक दूसरे को बुरा कहना और एक ब्राह्मण का दूसरे ब्राह्मण को शूद्र से भी बुरा जानना ऐसा फैला कि इस चौका लगाने के पीछे सब चौका लग गया।

कुछ दिन पीछे वैष्णवों के आचार्य्यों ने वही ढंग चलाया था पर न चला—क्यौंकि यद्यपि वैष्णवों के मत में 'वैष्णवे जाति बुद्धि' अर्थात वैष्णव में यह फलानी जात का है यह बुद्धि करना बड़ा ही अपराध है पर एक नागर यो महाराष्ट्र वैष्णव जो एक अहीर वैष्णव के घर का महाप्रसाद ले ले तो उसी क्षण और उसी घड़ी जाति से निकाल दिया जाय और पतित कहावे इसी कारण से वैष्णवों ने अपने पहिले जमाने में जो एका किया था वह इस स्मार्त्त धर्म्म के भय से सब नाश हो गया और उन में भी अनेक भेद और बड़ी बड़ी खराबियां आ पड़तीं।

उस काल के पीछे फिर इस एका का बीज गुरुनानक ने बोया उनकी कृपा से अब तक बहुत से लोग एक बुद्धि और एक मत के हैं पर हमारे वैदिकों ने इन को भ्रष्ट बना कर तिरस्कार कर दिया।

इस काल में राजाराममोहनराय ने फिर वही बात किया और अब ईश्वर की कृपा से वह ब्राह्म मत इस जोर पर है कि लक्षावधि मनुष्य उस मत के होते जाते हैं और सब की मत और राय ऐसी एक है कि क्या पूछना और उनकी आपस की एकता का फल आप सब लोगों पर प्रगट है कि 'ब्राह्मो मैरिजबिल... पास हो गया।

निश्चय मेरी इस ऊपर की बोलचाल से बहुत से लोगों को यह सन्देह होगा कि मेरा मत है कि हिन्दुस्तान में सब लोग एक मत के हो जायं तभी इनके पब्लिक ओपिनियन में जोर आवैगा, मगर मेरा यह मत नहीं है क्यौंकि यह तो ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध है जो ईश्वर की इच्छा होती कि सब लोग एक मत मानैं तो संसार में इतने मत क्यों होते, मेरा कहना और मेरा मत और मेरी इच्छा तथा मेरा पूरा जोर इसी पर है कि मत और संसारी कामों से क्या सम्बन्ध मत या धर्म्म विश्वास का नाम है और वह दिल में रखने और विश्वास करने की चीज़ है उस से व्यवहार से क्या सम्बन्ध? पर शोच है कि हमारे धर्म्मशास्त्र वाले वैद्यक को भी धर्म्म बना गए, तो अब हम लोगों को यही उचित है कि धर्म्म और व्यवहार दोनों को एक में न सानैं तैंतीस करोड़ मनुष्य तैंतीस करोड़ देवताओं को अलग अलग मानो पर जहां व्यौहार का काम पड़े सब एक हो जाओ और जब अपने हित की बातैं आवैं तब एक सी आवाज दो।

देखो हिन्दुओं की सब बातों में पंचाइतैं मौजूद हैं सब लोग उन पंचाइतों को ज़ोर दो, क्या जरूर है कि कचहरी में झख मारते अमलों को हाथ जोड़ते फिरो और स्टाम्प खरीदो, ऐसा कभी मत करो, दीवानी और फौजदारी दोनों मुकदमे अपनी पंचाइतों में सुना करो अपनी जाति का आप न्याव करो, जो तुम लोग इस योग्य होगे तो सरकार को भी अपने करने का उचित वा अनुचित समझे जाने का ध्यान रहैगा बरंच सब बातों में तुम से पूछ के कोई काम करैगी।

देखो इस आपस के एका का ज़ोर आज ही से नहीं है इस हिन्दुस्तान में भी प्राचीन काल से इसका बड़ा ही ज़ोर था, सब से पुराने काल में सूर्य्यवंश के भी

पहिले जब स्वायम्भुव मनु का वंश हिन्दोस्तान में राज करता था उस समय उसी वंश की गद्दी पर एक वेणु नाम का राजा बैठा था और वह बड़ा ही प्रतापी और बड़ा ही उग्र था पर वह धर्म्म करने वालों को बड़ा दुःख देता था और अपने ज़ोर से उस ने सब धर्म्म बन्द कर दिए थे उस काल के ब्राह्मणों ने आकर उस को बहुत ही समझाया पर उस ने न माना तब अन्त में ब्राह्मणों ने उस को मार डाला और उस के पुत्र महाराज पृथु को गद्दी पर बैठाया जिनके कारण से इस भूमंडल का नाम पृथ्वी आज तक प्रसिद्ध है तो समझ लेना चाहिए कि इस एका में कितना जोर होता है।

महाराज श्रीरामचन्द्रजी जिनको सब प्रजा पिता में भी विशेष प्यार करती थी और हिन्दू के वीर्य्य मात्र को जिनका नाम सुनने से भक्ति उदय होती है और जिनकी कीर्ति की चांदनी अब तक दिशाओं में फैली हुई है उन के काल में भी इस पब्लिक ओपिनियन को इतना जोर था कि जिस के भय से उन्होंने श्री सीता देवी ऐसी सती का भी त्याग कर दिया; क्या वे न त्याग करते तो उन्हें कोई जबरदस्ती त्याग करने को कहता? पर नहीं राजा का धर्म्म यही है कि इसका बड़ा ही ध्यान करे क्योंकि बड़ा भारी न्यायकर्त्ता वही राजा है और चन्द्रमा सूर्य्य तक उसी राजा का नाम और यश थिर रहैगा जो अपने प्रजा की साधारण अनुमति अर्थात पब्लिक ओपिनियन को आजादी से कायम रक्खैगा।

क्या कारण है कि विक्रम भोज, धर्म्मराज, नौशेरखां अकबर और बलि इत्यादि का नाम लोग भूलना कौन कहे बड़े आदर से लेते हैं वरन इनकी कीर्त्ति को पवित्र समझ कर पढ़ते और लिखते हैं केवल यही कारण है कि उन लोगों ने अपनी प्रजा का सर्व्व भाव से सन्तोष किया और प्रजा का सन्तोष करना यही है कि उस की साधारण अनुमति का पूरा अधिकार रहने दिया।

परन्तु इस में एक बात है कि जो राजा अन्यायी होते हैं और जो केवल अपना भला चाहते हैं वे इस के बड़े ही विरोधी होते हैं, उस में भारतवर्ष में इसकी बड़ी चाल है, जब क्षत्रिय लोगों का अधिकार बहुत बढ़ गया था वा मुसलमानों के काल में इस की बड़ी ही आपत्ति थी राज साहेब अभिमान में चूर विद्या और न्याव दोनों के पूरे बैरी जो चाहा हुकुम दे दिया कोई पूछने वाला नहीं जो बोला सो मारा गया सिफारशियों ने हाथ जोड़ कहा महाराज बहुत ठीक है 'पासा पड़े सो दांव, राजा करै सो न्याव' कानून क्या वस्तु है धर्म्मशास्त्र तो आप का मुख है चलो हो चुका। इसका हम एक उदाहरण देते हैं कि जब राजा बहुत बली और अन्यायी होता है तब प्रजा की कुछ नहीं चलती, द्वापर के काल में आपुस में एका बड़ा था पर क्षत्रियों में उस काल में भी नहीं था। पुराणों में लिखा है कि गोकुल में इन्द्र की पूजा होती थी और श्रीकृष्ण उस समय बालक थे और उन ने कहा कि इन्द्र की पूजा उठा कर गोवरधन पूजो तो यद्यपि यह धर्म्म की बात थी पर उसी समय पंचायत हुई और गोपों ने

यह पूजा उठा दी; ऐसे ही उपनन्द ने कहा कि गोकुल छोड़ कर वृन्दावन चलो सब गोपों ने पंचायत किया और गोकुल छोड़ दिया। यहां तक कि एक श्री भागवत में इन गोपों के परस्पर मिल कर पांच बेर पंचाइत करने का वर्णन है जिस में उन का परस्पर बड़ा ही मेल प्रगट होता है; और देखिये गोकुल की उस समय की कथाओं का जिसने पाठ किया है उन को यह भली भांति मालूम होगा कि उस काल में वहां अमीर और गरीब सब एक से थे, अमीरों के लड़के गऊ चराते और बड़े बड़े धनिकों और जमींदारों की स्त्रियां पानी भरतीं और दूध दही बेंचती थीं, जाति में कोई किसी को बड़ा छोटा नहीं समझता था, सब एक से मिलते थे, सब एक साथ खाते पीते थे और सुख से एक की सहायता से दूसरे काल बिताते थे; गर्ग, नारद, शांडिल्य इत्यादि का इन लोगों के घर रसोई खाना लिखा है, हरिवंश में लिखा है जलविहार के समय नारद जी को रसोई चीखना सुपुर्द था, गोकुल वाले वैश्य थे पर क्षत्रियों से ऐसा मेल था कि वसुदेव जी की स्त्री गोकुल में रहती थी और विदुर शूद्र थे तौ भी उन के घर सब जाते थे, युद्ध में भी युद्ध के पीछे एक दूसरे को देखने जाता था। और क्षत्रियों का भी परस्पर बहुत ही मेल होता महाभारत के युद्ध से स्पष्ट है पर ऐसे समय में भी दुर्य्योधन से हठी राजा ने लोगों का कहा ज़रा न माना और महाराज युधिष्ठिर को राज्य न दिया जिस का परिणाम यह हुआ कि लाखो राड़ें बच गईं, अब देखिए अपने पब्लिक ओपिनियन का ज़ोर अर्थात यदि सब लोगों के मत को दुर्य्योधन सुनता और भीष्म इत्यादि बुद्धिमानों की बात मानता तो यह घोर युद्ध क्यौं होता पर इसी सब लोगों की बात को अपने हठ और बल से न मानने का यह फल हुआ कि हजारों राज निर्वंश हो गए यद्यपि वे ब्राह्मण और दीन प्रजा जो उस को राज देने को कहते थे वे आप न लड़े पर परिणाम वही हुआ जो वे चाहते थे इस से मैं फिर यही कहूंगा कि सब साधारण की बात को न मानना उन्मत्त और अन्यायी राजा का काम है जिस का केवल अपजस रह जायगा और इस पब्लिक ओपिनियन का बल रचना अब उस न्यायी राजा का काम है जिस का नाम आदर से लिया जायगा।

[हरिश्चन्द्र मैगजीन अप्रैल सन 1874 ई.]

सामाजिक-सांस्कृतिक महत्त्व के लेख

स्त्री-1

हमारे भारतवर्ष के निवासी स्त्री के विषय में केवल इतना ही समझते हैं कि स्त्री एक ऐसी वस्तु है जिसे भगवान ने शुद्ध पुरुषों की सेवा के ही हेतु बनाया है और पुरुषों को उन को अन्न वस्त्र दे देना इतना ही कर्त्तव्य है इस से विशेष न तो यहां के लोगों का स्त्रियों में स्नेह है न आदर है यों तो कितने लोग स्त्रियों के स्नेह से माता पिता घर छोड़ देते हैं और आदर इतना करते हैं कि घर में जो कुछ हो वह स्त्री की आज्ञा से हो परन्तु यह स्नेह और आदर दोनों मूर्खतामय है और ऐसे आदर वा स्नेह से मूर्खता का अन्धकार विशेष होता है कुछ सामयिक वृद्धि वा वास्तव में परस्पर दम्पति का कुछ उपकार नहीं होता और यह आदर वा स्नेह केवल इतना ही समझ कर है कि स्त्री एक सुख की वस्तु है तो अब जब स्त्रियों में बुद्धि केवल सुखावलम्बिनी हुई तो उन के वास्तविक स्वरूप के ज्ञान का लोप हो गया और मूर्खता फैलने का यही कारण हुआ।

यह बात सोचने की है कि भगवान ने पुरुष और स्त्री दोनों को एक समान एक दूसरे का अपेक्षित और दोनों पर अपना अखंड स्नेह एक भाव रख कर बनाया तो हम लोग यदि उस की प्रजा पर विषम दृष्टि करैंगे तो यह बात क्या उसे नहीं बुरी लगैगी और क्या हम लोग उस के कोप पात्र न होंगे। तुम्हारे ही यदि कोई दाहिने आंख की तो रक्षा करै और बाईं आंख में काजल के बदले सूई गड़ावै तो क्या तुम न क्रोध करोगे अवश्य करोगे यही दशा स्त्री पुरुषों की है स्मरण करो कि विवाह के समय भगवान को बीच में साक्षी दे कर तुम ने स्त्री का कैसा आदर करना स्वीकार किया था और अब कैसा करते हैं हा! यह बड़े शोच का स्थान है।

यहां के लोगों ने सब भांति स्त्रियों को हीन कर रक्खा है और यही इस देश की हानि का मुख्य कारण है पुरुष स्वतन्त्र होकर घूमैं फिरैं स्त्रियां पिंजड़े में बन्द रहैं, पुरुष लिखैं पढ़ैं स्त्रियां मूर्ख बनी रहैं, पुरुष गद्दी तकिया लगा कर बैठें स्त्री झाड़ू दें रसोई करैं और दासियों की सी बनी रहैं, पुरुष तो अनेक विवाह करैं वेश्याओं के घर में घूमैं स्त्री यदि किसी की ओर आंख उठा कर देखैं तो नष्ट हो जाय, पुरुष की स्त्री मर जाय तो विवाह कर लें पर स्त्री बाल विधवा हो तौ भी वही दुःख भोगै हाय हाय हाय !!! यहा महा अनर्थ भगवान से कैसे देखा जायगा। भाइयो अनेक

प्रकार के आग्रह को छोड़ो और बुद्धि को बीच में साक्षी दो यह अनवर्त्त महा पाप का भार क्यों अपने ऊपर लेते हो।

हम यह नहीं कहते कि साहब लोगों की भांति स्त्रियों को एक संग स्वतन्त्र कर दो वरन पहिले अपने को और अपनी स्त्रियों को उस स्वतन्त्रता पाने के योग्य बनाओ जो उन लोगों में है।

हा! क्या न्याय वाली बुद्धि इस बात को नहीं कहती कि एक भगवान की अपने समान सृष्टि पर ऐसी दुष्टता सर्व्वथा अयोग्य है। पुरुष तो जीते रहैं स्त्रियां मार डाली जायं, पुरुष लोग अनेक विवाह कर के स्त्रियों को अन्न वस्त्र भी न दें केवल अपने नाम पर छोड़ दें, जो बिचारी बच्चा छोटेपन ही में रांड हो गई है फिर जन्म भर दुःख भोगै यहां तक कि यदि कोई दोष करै तो क्या वरन हंसी और होली में भी पुरुषों के बदले उन की मां बहिन गालियां सुनैं, त्राहि गोविन्द त्राहि गोविन्द!! ऐसा किस का पत्थर का हृदय है जो इस अत्याचार को सुन कर कम्पित न होगा और उस का जी न भर आवैगा। निश्चय है कि ऐसे वे ही लोग होंगे जो कि देहात्मवादी, न्यायशून्य, पाहन मूर्त्ति, आग्रह के घड़े और भगवान से निडर होंगे।

कभी सम्भव नहीं है कि जब तक स्त्रियों का आदर और उन में सच्चा स्नेह न किया जाय इस देश की वृद्धि हो यह एक बड़े आश्चर्य्य की बात है कि पंडित जी तो षट् शास्त्र के वेत्ता परम रसिक उन की स्त्री बिचारी (उन्हीं के दोष से) महा मूर्खा अब कहिए कि यह विषम प्रीति कैसे निबहैगी और इस्से कल्याण कैसे भावी है और लड़कों की शिक्षा क्या सम्भव है।

यह निश्चय रखिए कि बालकों की शिक्षा स्कूल के बल से नहीं होती इनकी शिक्षा देने वाली और छोटेपन ही से कुसंस्कार छुड़ाने वाली केवल माता ही है जिस ने उस छोटे शरीर की रक्षा की है और सर्व्वदा उस के संग रहती है।

हिन्दुस्तान के लोग बहुत विद्या पढ़ने पर भी असभ्य और रूखे होते हैं उस का मुख्य कारण यही है कि उन को मातृशिक्षा नहीं है। मातृशिक्षा को हम बारम्बार मुख्य इस हेतु से कहते हैं कि जिस दशा में बालकों का हृदय संसार के व्यवहारों से शून्य और अत्यन्त कोमल रहता है उस समय खेलाते, सुलाते, खिलाते, पिलाते माता ही शिक्षा दे सकती है और वही शिक्षा वज्र लीक हो कर मनुष्यों के चित्त पर खचित हो जायगी।

यदि अभी हम लोगों की बात पर विश्वास न हो तो इन बातों को पत्थरों के खम्भों पर खुदवा दो थोड़े दिन के पीछे आप ही सब लोगों को यह कहना निश्चय हो जायगा कि "हिन्दुस्तान के लोग जब तक स्त्रियों का आदर न करैंगे और शिक्षा न देंगे कभी इस देश की वृद्धि न होगी।"

[कविवचन सुधा, 9 फरवरी, सन 1872 ई.]

स्त्री-2

यह भारतवर्ष अनेक कारणों से बड़ा दुःखी हो रहा है, क्योंकि बारम्बार के शत्रुओं के चढ़ाव से इस के धन और विद्या दोनों नाश हो गए, और मूर्खता का अंधेरा इस पर ऐसा छाया कि अब हिन्दुओं को अपने घर के अमोल रत्न भी नहीं सूझते तो भारतखंड के दुःख समुद्र के उमड़ने में सब कारणीं में स्त्रियों का मूर्ख रहना और अपना भाग न पाना भी एक बड़ा कारण हुआ और वह मूर्खता यहां तक बढ़ी कि इन के मूल समेत सर्व्वनाश का समय निकट आ गया पर धन्य है सरकार अंगरेज बहादुर को जिसने इस मुरझाई हुई बेलि पर फिर से पानी डाल्ला और चारों ओर विद्या की वृद्धि का डंका बजा छोटे बड़े सब को पढ़ने लिखने का उत्साह बढ़ा उस में स्त्री शिक्षा का भी प्रचार हुआ तो हम भाग्य हीन हिन्दुस्तान के दिन फिरने की फिर से आशा हुई।

यद्यपि सरकार ने स्त्री शिक्षा का प्रबन्ध बहुत उत्तम किया है तथापि हम लोग देखते हैं तो हिन्दुओं के बड़े बड़े कुलों में अभी विद्या का प्रचार नहीं है और सब से बढ़ कर आश्चर्य्य यह है कि जो मूर्ख हैं वह तो किसी भांति स्त्रियों को पढ़ने लिखने देते भी हैं पर जो पंडित लोग हैं वे तो स्त्रियों के न पढ़ाने में और भी हठ करते हैं और न जानै अपने वंश के लोगों को मूर्ख देख कर रात दिन उन की संगत में उन से कैसे रहा जाता है क्योंकि विद्वानों को तो कभी मूर्ख का साथ नहीं अच्छा लगता और नीतियों में कहा भी है कि बन्दरों और रीछों के साथ बन परबतों में फिरना अच्छा पर मूर्खों के साथ स्वर्ग में इन्द्र के भवन में रहना अच्छा नहीं; उस पर विशेष यह है कि अपने को बड़ा चतुर और रसिक लगाते हैं पर घर में मूर्ख स्त्री देख के लाज नहीं करते, करैं क्या पुरुषों का भी दोष नहीं बुरे संस्कार की गांठ उन के हृदय में ऐसी दृढ़ बंध रही है कि उस का खुलना बहुत कठिन पड़ गया है।

हम इस बुरे संस्कार का कारण भी स्त्रियों ही का न पढ़ना कहैंगे क्योंकि मनुष्य पाठशालों में चाहे जितना पढ़े मातृशिक्षा बिना कभी उस की विद्या फलदायिनी नहीं होती क्योंकि मां के मुख से सीखी विद्या जन्म की विद्या है और गुरु से सीखी विद्या तोता लोगों की विद्या है, हम इस का प्रत्यक्ष उदाहरण देते हैं कि सब मनुष्य चाहे

जितना पढ़ैं अपनी मातृ.भाषा कभी नहीं भूलते और किसी देश के बालक को अपने पिता की वा वंश की बोली का कुछ अभ्यास न होगा पर मां और धाय जो बोली बोलती होंगी उसी का अभ्यास होगा, बालक के मुख से सब से पहिले मां का अक्षर निकलता है और यही कारण है कि सारे संसार की भाषा में माता प्रतिपादक शब्द में मकार अवश्य होगा जैसा माता, मां, मदर, मदर, माई, अम्मा इत्यादि तो उसी पहिली अवस्था में जब बालक केवल एक अक्षर बोलता है उस की माता उस को जो कुछ कह कर सिखावैगी वा जो जो चेष्टा करैगी उस का सब संस्कार उस बालक के जी पर खचित होता जायगा इस से बालक वही बोली बोलैगा जो उस की मां वा धाय बोलती होंगी, वास्तव में मनुष्य को माता से बढ़ कर और कोई देवता नहीं है माता प्रत्यक्ष देवता है माता ही हमारे संसार में आने का कारण है माता ने हमैं दस मास गर्भ में धारण किया है माता ने हमारे बालकपन में जब हम् असमर्थ थे पालन पोषण लालन किया है हमारे मूत्रपुरीष से घृणा नहीं किया है जो माता केवल हमारा मुख देख कर जीती है उस से बढ़ कर और कौन देवता वा गुरु है क्योंकि नियम है कि कुपुत्र होते हैं पर कुमाता नहीं होतीं क्यौंकि ऐसा कहीं पुस्तकों में प्रयोग ही नहीं मिलता लड़के को बनाना बिगाड़ना सब माता के हाथ है पुराणों में प्रसिद्ध है कि राजा अलर्क की रानी मदालसा ने अपने कई पुत्रों को ज्ञानी कर दिया तो जब सब हम लोगों का बनना बिगड़ना केवल माता के हाथ है तो हा! जब वह माता और धाय ही मूर्खा होंगी तब आगे क्या होना है।

क्या स्त्रियों का कुछ सत्व ही नहीं है? कभी नहीं, वे पुरुषों की समान भागिनी हैं ईश्वर का स्नेह जैसा अपने पुरुष सन्तान पर है वैसा ही स्त्री सन्तान पर उस की दोनों आंखैं समान हैं तो पुरुषों को सर्व्व भाव से उचित है कि अनीति को छोड़ कर नीति पथ पर चलैं और स्त्रियों की उन्नति में प्रवृत्त हों।

[बालाबोधिनी, जनवरी 1874 ई.। लेख के अन्त में क्रमशः लिखा है पर बालाबोधिनी के प्राप्त पृष्ठों में यह लेख नहीं मिला—सम्पादक]

मित्रता

अब तो संसार में ऐसे मित्र रह गए हैं कि जिस दिन उनका काम निकल चुका उस दिन उनके घर पर भी जाइये तदपि न बोलैंगे वरन घर में भीतर जा कर बैठ रहैंगे मानो उन से कोई ऋण लेने को आया है और यदि उनके पास मनुष्य द्वारा कहला भेजा जाय तो कहला भेजैंगे "I have no leisure, Sir" जो बड़ी कृपा की तो कहला भेजेंगे "Please stop a little, I am just now coming" अब घंटों बैठे रहिए घर में से न निकलैंगे यदि निकले भी तो मुंह बनाए भृकुटि चढ़ाए और ऐसी ऐसी वार्ता करैंगे कि मन को परम खेद हो—सच तो यह है कि अब इस लोक में मित्र रहे नहीं—बहुत से तो ऐसे होते हैं कि ''बिलकुल तूती चश्म'' होते हैं—मित्र उसे कहते हैं कि जो मित्र का हितकारी हो और उस के दुःख दूर करने में यथा शक्य श्रम करै उसे नहीं जो उलटा दुःख बढ़ावै। मित्र 'एन्टोनियो' और 'वेसोनियो' थे जिनका वर्णन 'मर्चेन्ट ऑफ वेनिस' में है।

स्वाभाविक मित्र होना तो बड़ा कठिन है। मनुष्य को चाहिए कि ऐसे लोगों पर जिन का ऊपर वर्णन हुआ कभी निश्चय न करै और उन को मित्र नहीं वरन शत्रु समझना चाहिए 'विषकुंभं पयोमुखं'। मनुष्य को उचित है कि मित्र को विपत्ति रूपी कसौटी पर परीक्षा करै।

हे भारतवर्ष! हाय! तेरी यह कुदशा क्यौं हो गई है हाय! हाय!! तेरे निवासियों में परस्पर मित्रता क्यौं नहीं रही? धिक् धिक् ऐसे मित्रों पर जिनका ऊपर वर्णन किया गया है।

मित्रता में अनगिनती लाभ है—जब तक मनुष्यों में परस्पर सत्य स्नेह (True Love) नहीं होता तब तक उन की कुछ उन्नति नहीं होती है।

परन्तु बड़े शोच का स्थान है कि एतद्देशीय जनों में मित्रता और परस्पर स्नेह क्यौं नहीं है।

आजकल के मित्रों में बड़ा भारी अवगुण यह है कि उन से कुछ वार्ता कहो तो वह झट इधर उधर कह देते हैं यहां तक अकथन योग्य वार्ताओं का भी ढोल

बजाते फिरते हैं। मनुष्य को चाहिए कि बात को किसी से न कहै हम ने तो एक मनुष्य को स्वमित्र जान कर उस से एक बात कही क्या उसे उचित है कि वह सब से कहता फिरे, कदापि नहीं।

इस से भी बढ़ कर एक दोष यह है कि मुंह पीछे बुराई करते हैं और इतनी लज्जा नहीं करते कि जिस को हम My dear sir, मेहरवानमन्, मित्र आदि नामों से पुकारते हैं उनहीं की निन्दा करैं छिः!

हे पाठक जनो आप निश्चय जानिये जो कुछ मैंने लिखा है वह सब सत्य है किसी विशेष पुरुष की निन्दा नहीं है और सब बातें भली भांति परीक्षा की गई है और इस के साथ हम को यह भी दृढ़ निश्चय है कि आप लोगों ने भी यह सब वार्ता परीक्षा की होगी और सच यही दशा पाई होगी। कुछ लोग ऐसे हैं जो मित्र लक्षण युत पाये जाते हैं अभी संसार सत्य मित्रों से रहित नहीं है पर बहुत ही कम है। इस बेर अब इस को समाप्त करता हूं और उस करुणा वरुणालय ईश्वर से निवेदन करता हूं कि मेरा मनोरथ पूरा करै कि इस देश के लोगों में नित्य परस्पर स्नेह होवे! अस्तु। यथावकाश इस विषय पर फिर कभी भी सविस्तर लिखूंगा।

[कविवचन सुधा, जून सन 1872 ई.]

भ्रूणहत्या

निवारण के हेतु आर्य्यगण से निवेदन

हम सर्कार से और अपने सब आर्य्य भाइयों से हाथ जोड़ कर निवेदन करते हैं इस को सब लोग एक बेर चित्त देकर और हठ छोड़ कर सुनैं। यदि सर्कार कहै कि हम धर्म्म विषय में नहीं बोलते तो उस का हम से पहिले उत्तर सुन ले। सती होना हमारे यहां स्त्रियों का परम धर्म्म है इस को सर्कार ने बल पूर्व्वक क्यौं रोका है? क्यौंकि यह धर्म्म प्राण से सम्बन्ध रखता है और प्रजा के प्राण की रक्षा राजा की सब के पहिले मान्य है। वैसे ही जो हम कहैंगे उस से भी प्रजा के प्राण से सम्बन्ध है इससे सर्कार को अवश्य सुनना चाहिए। अभी बनारस में बूलानाले पर से एक लड़की नल में से निकली है। निस्सन्देह भगवान ने उस को अपने प्रमेय बल से बचाया है नहीं तो उस की माता ('क्वचिदपि कुमाता न भवति' इस के ठीक विरुद्धाचरण करने वाली) तो अपनी जान में उस को मार ही चुकी थी। ऐसी हत्या सारे हिन्दुस्तान में यदि सब पकड़ी जायं और गिनी जायं तो प्रति महीने में एक हजार होती हौं। इस हत्या के कारण और दोषभागी कौन लोग हैं? हमारे ही आर्य्यगण और धर्म्माभिमानी लोग, यदि यह पौनर्भव सन्तति की निन्दा न करते उस का अनुमोदन करते तो यह हत्या क्यौं होती। यह न हम ने कभी कहा है और कहैंगे कि बल से सबका पुनः विवाह हो। परन्तु जो कन्या ही दशा में विधवा हो गई हैं वा जिन की काम चेष्टा हो उन का विवाह क्यौं न हो? इसीलिए कि हर महीने एक सहस्र आर्य सन्तति नष्ट हो? क्या हमारे धर्म्माभिमानी पंडित और आर्य्यगण उस प्रकृति के नित्य और प्रबल प्रवाह को भी अपने हठ से रोका चाहते हैं? वह कदापि न रुकैगा। समुद्र का वेग किस ने रोका है। सूर्य्य नित्य निकलै ही गा, वर्षा हो ही गी। वैसे ही मनुष्य के देह के मज्जा शुक्र इत्यादि अपना वेग करै ही गे। बड़े ऋषि मुनि जिस वेग को नहीं रौक सके उस वेग को आप इस काल की अबलाओं से रुकवाया चाहते हैं। आप के पुरखा ब्रह्मा पराशर ऋष्यशृङ्ग जिस आतुरता को नहीं सह सके उस को ये स्त्रियां सहैं, जिन को साधारण नीति में भी 'कामश्चाष्टगुणः स्मृतः' लिखते हैं। क्या ये उन महात्माओं से भी इन्द्रिय निग्रह में योगिनी और ब्रह्मचारिणी बढ़ कर हैं?

'विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो
ये चाम्बुपर्णाशनाः,
तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कजं
सुललितं दृष्ट्वैव मोहंगताः
शाल्योदं सघृतं पयोदधियुतं
भुज्जन्ति ये मानवा,
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेत्
विन्ध्यस्तरेत सागरम्॥1॥'

इस श्लोक में स्पष्ट लिखा है कि यदि विन्ध्याचल समुद्र में तिरै तो लोग इन्द्रियों का निग्रह कर सकैं। शायद आप लोग पत्थर को पानी में तिराया चाहते हैं पर आप का तिराया न तिरैगा। प्रबल प्रकृति का वेग आज तक न रुका है न रुकैगा। 'वह देखे ज्ञानी वैरागी बैठत ध्यान लगाय। उठत वेग ब्रह्मादिक हारे नर की कहा बसाय'। श्रीमुख से कहा है—'प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति' मारे अभिमान के प्रकृति के विरुद्ध तू कर पर प्रकृति तुझ को आप से आप उधर नियुक्त करैगी 'करिष्यस्य यशोऽपि तत्' काम का माहात्म्य स्वयं ब्रह्मा ब्रह्मवैवर्त्त-पुराण के कृष्ण जन्म खंड के 35 अध्याय में कहते हैं—

'स्त्रोपुंसोर्मोहनार्थाय
मुदा त्वञ्च विनिर्म्मितः।
हृदि योगेन सर्वेषा
मधिष्ठानं करिष्यसि॥'

फिर कालिका पुराण के दूसरे अध्याय में आप ब्रह्मा कहते हैं—

'अनेन चारु रूपेण
पुष्पवाणैश्च पञ्चभिः
मोहयन् पुरुषांस्त्रींश्च
कुरू सृष्टिं सनातनीम्॥1॥
न देवा न च गन्धर्वा
न किन्नरमहोरगाः।
नासुरा न च दैत्वा वा
न विद्याधरराक्षसाः॥2॥
न यक्षा न पिशाचाय
न भूता न विनायकाः।
न गुह्यका न सिद्धाय
न मनुष्या न पक्षिकः॥3॥

पशवो न मृगाः कीटाः
पतङ्गा जलजाय ये।
न ते सर्वे भविष्यन्ति
न लक्ष्या ये शरस्य ते॥4॥
अहं वा वासुदेवी वा
शिवो वा पुरुषोत्तमः।
भविष्यामस्तव वशे
किमत्यैः प्राणधारिभिः॥5॥
अवस्थानानि सर्वानि
सर्वव्यापी भवान् यतः।
किं वाचापि विशेषेण
सामान्यो नास्ति ते समः॥6॥
यत्र यत्र भवेत् प्राणो
शाद्वलास्तर वोऽथवा।
तत्र तत्र तव स्थान
मस्त्वाब्रह्म सदोदये॥7॥'

अर्थ—तुम इस सुन्दर रूप से सब को मोहो। देव दानवादिक से कीट पतंग पर्यन्त ऐसा कोई न होगा जो तुम्हारे बान का निशाना न बनै। हम विष्णु और शिव भी तुम्हारे वश होंगे तब औरों की क्या कथा है। सब स्थान में तुम व्यापी हो। इत्यादि।

चंडीपाठ में लिखा है—

'ज्ञानिना मपि चेतांसि
देवी भगवती हिसा।
बलादाकृष्य मोहाय
महामाया प्रयच्छति॥'

माया ज्ञानियों के चित्त को जबरदस्ती खींच कर मोह कर देती है। तो जहां बड़ों बड़ों की यह दशा है कहां स्त्रियों की किस ने चलाई है। इनकी तो उत्पत्ति ही ईश्वर ने ऐसी बनाई है। आप ही के शास्त्रों में लिखते हैं—

'हृदयं क्षुरधाराभं
शरत्पद्मोत्सवं मुखम्।
सुधोपमं सुमधुरं
वचनं स्वार्थसिद्धये॥
ददौ कार्य्यच्कलात् कार्य्यं
शश्वन्माया दुरत्यया।

पुंसश्चाष्टगुणः कामः
शश्वत् कामो जगहुरौ॥'

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण-ब्रह्मखंड 23-अध्याय)

अर्थ–स्त्रियों का छूरी का धार सा हृदय, कमल सा मुंह, अपना काम सिद्ध करने को अमृत सी बानी है। (साहसादिक) कार्य्य भगवान ने इनको छलने को दिया है। ये दुरत्यया माया हैं। पुरुष का आठ गुना इन में काम है और इनको चटपट काम उत्पन्न होता है। तो एक आना प्रकृति का वेग आप क्या आप के बड़े लोग न रोक सके पर इन से आठ आना रुकवाया चाहते हैं। आप के तो बड़े बड़े वीर इनके वश में हो जायं ये अपने को रोके रहैं।

श्री भागवते भगवद्वचनम्–

''बलं ये पश्य मायाया
स्त्रीमय्याः जयिनो दिशाम्।
या करोति पदाक्रान्ता
भ्रूविजन्भेन केवलम्॥''

देवता ऋषि बड़े बड़े चक्रवर्ती जिस का वेग तनिक भी न रोक सके उस को कलियुग की स्त्रियां रोकै। 'दैवीह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया यह श्री मुख वचन है तो फिर इस माया को कौन जीत सकता है। बृहस्पति की स्त्री तारा और गौतम की स्त्री अहल्या तो रुकी ही नहीं अब ये स्त्रियां रुकैंगी।

'स्त्रियः स्वभावतो दुष्टाः' यह आप ही का शास्त्र कहता है। मनु जी ने भी कहा कि 'नारी घी का घड़ा है और पुरुष अग्नि है, जहां दोनों रहैंगे पिघलैंगे। स्त्री कुल रूपादिक नहीं देखती। अहल्या को जब नारद जी समझाने गए हैं तो उस ने उन को खूब आड़े हाथ लिया है और यह कहा है कि 'स्त्री कदापि काम का वेग नहीं रोक सकती। संसार में सती स्त्री तभी तक है जब तक़ उन को मौका नहीं मिलता, ऐसी ही अनेक बातें कही कि नारद जी निरुत्तर हो गए (हम विशेष लिख नहीं सकते लज्जा आती है शास्त्रों में आप इन के आचरण को देखिए) और क्या आप का चित्त खुद इस बात को न कहता होगा। हां इस का हमारे पास उत्तर नहीं कि समझते सब कुछ हैं पर मानैंगे एक नहीं।

अपने परम पूर्व्व पुरुष जगद्विख्यात और जगत मान्य परम प्राचीन जार्य्य शिरो भूषण मनु जी की उदारता और उन की समझ की ओर देखो। क्या उन से मान्य भी कोई और है? साक्षात वेद कहता है, यत् मनुर बदत् तद् भेषजम्' । क्या तुम्हारे धर्म्म शास्त्र कहने वालों में कोई इन से भी मान्य विशेष है? देखो उन को स्त्रियों की दुर्गाह्य प्रकृति का कैसा ध्यान था। उन्हीं को नहीं वरंच सब ऋषियों को इनका ऐसा ही ध्यान था इसी से स्त्री की ऋतुमती होने से शुद्धि लिखी है और प्रायश्चित भी थोड़ा ही लिखा है। यद्यपि मनुजी ने स्त्रियों को पुरुष के वश में रहने की बहुत

ही ताकीद किया है पर उनकी प्रकृति का निर्वाह कैसा किया है। इन के मत से 12 प्रकार के पुत्र हैं—(1) औरस, जो विवाहिता स्त्री में अपने से होय। (2) क्षेत्रज जो पागल वा क्लीव वा रोगी वा मृतपति की स्त्री नियोग से जो उत्पन्न करै वह जिस की स्त्री हो उस का क्षेत्रज। (3) दत्तक, जिस को उस के माता किसी को अपुत्र जानकर दे वह उस का दत्तक पुत्र होय। (4) कृत्रिम, जिस को गुण देख कर अपने पुत्र के तुल्य बनावै वह कृत्रिम पुत्र। (5) गूढ़ोत्पन्न, यदि स्त्री किसी से पुत्र उत्पन्न करै पर कोई जाने न, कि किस का पुत्र है तो वह स्त्री जिस की विवाहिता हो उस का वह गूढ़ोत्पन पुत्र कहलावैगा। (6) अपविद्ध, जिस बालक को माता पिता ने त्याग कर दिया हो उस को जो ले कर पालै वह उस का अपविद्ध पुत्र होगा। (7) कानीन, बाप के घर में क्वांरी कन्या पुत्रोत्पादन करै वह कन्या जब ब्याही जाय तो ब्याहने वाले का वह लड़का कानीन पुत्र होगा। (8) सहोढ़, माता पिता के घर में कन्या को गर्भ रह जाय उसी गर्भ समेत जो जान के वा बिना जाने उस कन्या से विवाह करै उस को पुत्र होय तो जो ब्याह करै उस का वह सहोढ़ पुत्र होगा। (9) क्रीतक, माता पिता से मोल लेकर जो पुत्र बतया जाय। (10) पौनर्भव, जो पति से छोड़ दी गई हुई स्त्री वा विधवा स्त्री दूसरों से ब्याह कर के पुत्र उत्पन्न करै वह उस ब्याहने वाले का पौनर्भव पुत्र है। (11) स्वयं दत्त, माता पिता बिना का होय वा निष्कारण जिस को माता पिता ने त्याग कर दिया होय वह बालक अपने को जिसे समर्पण कर दे उस का स्वयंदत्त पुत्र होता है। (12) पारशव, जो काम से ब्राह्मण शूद्रा में उत्पन्न करै वह पारशव पुत्र होता है। यह सब पुत्र प्रतिनिधि हैं। अब यह सोचना चाहिए इन पुत्रों में किस से किस से माता से रुधिर सम्बन्ध है? क्षेत्रज, गूढ़ोत्पन्न, कानीन, सहोढ़ इन चार पुत्रों से पिता के रुधिर सम्बन्ध नहीं केवल माता से इन का सम्बन्ध है। दत्तक, क्रीतक, स्वयंदत्त, कृत्रिम और अपविद्ध इन पांचों से माता पिता किसी के रुधिर सम्बन्ध नहीं। अब रहे औरस पौनर्भव और पारशव। इन्हीं तीन पुत्रों से माता पिता दोनों से सम्बन्ध है। उस में भी पारशव पुत्र की जाति बदल जाती है और वह निषाद हो जाता है।

यथा—

''ब्राह्मणाद्वैश्य कन्याया
मम्बष्ठो नाम जायते।
निषादः शूद्र कन्यायां
यः पारशव उच्यते॥1॥''

'शूद्र कन्याया मूढ़ायां निषाद उत्पद्यते यतः संज्ञानारेण पारशवश्चोच्यते तस्योपनयत संस्कार-निषेध माह—स पारयन्नेव शवस्तस्मात् पारशवः स्मृतः॥ स जीवन्तेव शूद्रतुल्यः'—इति मनु कुल्लकभट्टौ। ब्राह्मण से वैश्य कन्या में होय सौ अरबष्ठ, शूद्र कन्या में हो सो विषाद उसी का नाम पारशव है। उस का संस्कार नहीं होता है क्योंकि वह जीता

हुआ भी शव तुल्य है। तो अब दो ही पुत्र ऐसे ठहरे जिन से माता पिता के रुधिर से सम्बन्ध भी हो और एक ही जाति के उन के माता पिता भी हों और वे माता पिता ही की जाति के भी हों, एक औरस, दूसरा पौनर्भव। इस से सिद्ध होता है कि पौनर्भव की इज्जत औरस के समान नहीं तो पास पास है। तो क्या आप लोग हजारों स्त्रियों को वेश्या बनाना और लाखों भ्रूणहत्या कराना पसन्द करते हो, पर भारतवर्ष में पौनर्भव सन्तति रहना नहीं पसन्द करते? यदि ऐसा ही है तो आप लोग निस्सन्देह आर्य्यावर्त्त के शत्रु हौ। बुरा न मानिएगा। सच्चा कहने से सब को बुरा लगता है।

हम आप से वाद नहीं करते हाथ जोड़ कर धर्म्म युक्ति मन और परमेश्वर को बीच में साक्षी दे कर शपथ पूर्व्वक आप ही से सत्य पूछते हैं कि यह व्यभिचार बढ़ना कुलनाश गोत्रलोप होना सहस्रावधि गर्भहत्या, बालहत्या, स्त्रीहत्या होना अच्छा वा पौनर्भव सन्तति होना अच्छा? जो कहो कि हत्या को कौन अनुमोदन करैगा तो फिर पुनर्भू का विवाह क्यौं नहीं अनुमोदन करते? कैसे, हिन्दुओं के वज्र से भी कठिन हृदय से विधवा का दुःख देखा जाता है। आप नित्य 'दाल की मंडी' जाओ तो कुछ नहीं स्त्री यदि दूसरे से खाली बात भी करती हो तो उस का सिर काटने को तैयार हो जाओ। हाय रे न्याय! अपनी स्त्री मरे पर कैसा कूद के ब्याह कर लेते हो पर स्त्रियों को नहीं करने देते। क्यौंकि इन्द्रिय मन तुम्हीं को हैं उन को थोड़े ही हैं। सब अनर्थ हों अपने कुल में कलङ्क लगै स्त्रियां वेश्या हो जायं, गर्भ गिरैं, बालक मरैं यह बातैं जाहिर हों थाना, पुलिस, अदालत, जेहलखाना सब होय पर पुनर्विवाह न होय। होय कैसे इस में नाक कटैगी। उस में क्या नाक कटती है? फूटी सही जायगी आंजी न सहैंगे। सच है–'जबरदस्त का ठेंगा सिर पर'। यदि स्त्रियां भी प्रबल होतीं तो यह कैसे होने पाता!!

मेरे प्यारे भाइयो देखो व्यभिचार दिन दिन कैसा बढ़ा जाता है। इसके रोकने का एक मात्र यही उपाय है। जिस स्त्री को ऐसी देखो वा जिस का गौना न हुआ हो वा जिस में तनिक भी काम चेष्टा सन्देह हो उस को चटपट किसी के माथे मढ़ो। याद रक्खो 'जिस का बाप जीता है वह हराम का नहीं कहलाता' फिर उन के दोष भी छिप जायंगे। इसमें आप लोगों को और बहुत कुछ करना भी नहीं है केवल इतना ही करना है कि जो पुनर्विवाह करै उस को जाति से बाहर मत करो और न उसकी निन्दा करो। जो कोई पूछने आवै उस का अनुमोदन करो तो इसका रिवाज आप से आप हो जाय। जो कहो कि कलियुग में वर्ज्य है तो आप को तो भोजन, शयन, नाच, तमाशा 'दाल की मंडी' भांग, शराब, दक्षिणा, फसाद, झूठ, मुकदमा, ऐश, आराम कुछ वर्ज्य नहीं है विचारी स्त्रियों का विवाह वर्ज्य है। देवताओ! कुछ तो भगवान से डरो। जो अधर्म्म हैं पहिले उन को तो वर्ज्य करो भला यह तो शास्त्र विहित एक धर्म्म है।

देखो भ्रूणहत्या वा बालहत्या का कैसा दोष है। प्रायश्चित्त विवेक में लिखा

है कि यदि गर्भ पुरुष हो तो पुरुष वध और स्त्री गर्भ हो तो स्त्री वध का प्रायश्चित्त करना और जो न जाना जाय तो पुरुष वध प्रायश्चित्त करना। बाल हत्या का तो कुछ पूछना ही नहीं महापाप है। 'मित्रद्वेष', शिशोर्वधं,' 'बालघ्नान् गुरुघातिनः', 'ब्रह्मवान् बालक घ्नांच, इत्यादि वाक्यों में यह दारुण असाधारण पाप है। फिर यह पाप स्त्रियों से आप लोग क्यौं कराते हैं। कृपा पूर्व्वक यह कालानुरूप धर्म्म समझ के आज्ञा दीजिए।

देखिए, आप के बड़े लोगों को कैसे हृदय थे। उन्होंने अपना अनादर स्वीकार किया पर स्त्रियों पर कैसी क्षमा किया है। क्या उन के चित्त आप से मलिन और कृपण थे? अब आप चाहे नपुंसक हों पर स्त्री आप के हेतु यदि गूढ़ोत्पन्न पुत्र उत्पन्न करै तो आप कैसा उस का सिर काटने को मौजूद होंगे वरंच बालक गर्भदाता और माता तीनों का प्राण (यदि फांसी पड़ने का खौफ न हो) लेंगे। पर आगे के लोग इस को सहन करते थे। अब यदि ज्ञात हो कि इस कन्या को बालक हो चुका है वा गर्भ है तो उस का कोई ब्याह ही न करै पर आप के उदार चित्त के पुरखा लोग ऐसी स्त्रियों से ब्याह करते थे और वैसे पुत्र को कानीन मानते थे। ब्याहे पर गर्भ है जानिए तो आप या तो उस गर्भ का नाश कीजिए या स्त्री का नाश कीजिए या त्याग कीजिए पर आप के बड़े लोग उस गर्भ जात पुत्र को सहोढ़ कर के स्वीकार करते थे। भला अब ऐसा कौन सुहृत होगा जो कुल की रक्षा के वास्ते क्षेत्रज उत्पन्न करावैगा पर तब के सब कृपालुचित्त बान्धव ऐसा ही करते थे। देखिए शास्त्रकारों ने तीन प्रकार की पुनर्भू स्त्रियां लिखी हैं।

यथा मिताक्षरा—

'कन्यैवाक्षतयोनिर्या
पाणिग्रहणदूषिता।
पुनर्भूः प्रथमा प्रोक्ता
पुनः संस्कारकर्म्मणा॥
देशधर्म्मानवेक्ष्य स्त्री
गुरुमियो प्रदीयते।
उत्पन्नसाहसान्यस्मै
सा द्वितीया प्रकीर्त्तिता॥
असत्सु देवरेषु स्त्री
बान्धवैर्या प्रदीयते।
सवर्णाय सपिण्डाय
सा तृतीया प्रकीत्तिता॥'

जो कन्या ही हो जिस का गौना न हुआ हो केवल विवाह हुआ हो तो उस का फिर से संस्कार हो इस से वह पहिली पुनर्भूः है। देश के धर्म्मों को देख कर जो स्त्री (अर्थात विवाह और गौना हुई स्त्री) गुरु लोग किसी दूसरे को यह जान कर

दें कि इस के शरीर में काम का संचार है वह दूसरी पुनर्भूः है। जो बुरे देवरों को (पर वे सवर्ण और सपिंड हों) स्त्री बान्धवों से दी जाय वह तीसरे पुनर्भूः है॥ देखिए इन तीनों पुनर्भू स्त्रियों की कैसी सुन्दर व्यवस्था है। अर्थात जिस का गौना न हुआ हो उस को तो बड़े लोग फिर से ब्याह कर ही दें। जिस का गौना हो चुका है उस में यदि बड़े लोग काम का प्रचार देखें तो उस को भी किसी से ब्याह दें। या नहीं तो किसी देवर को उस को बान्धव लोग ब्याह दें। इन तीनों दशा में स्त्रियों का कल्याण है। इस के प्रचार के हेतु यदि पुरुष लोग आप ऐसी स्त्रियों को न पहिचान सकैं तो किसी स्त्री से कह दें वह उन के चित्त का भेद ले कर उन से कहै और जिस को इच्छा संसारी सुख की बाकी हो ऐसी स्त्रियां पहिचान पहिचान के ब्याह दी जायं। हम सरकार को इस बीच में इसी वास्ते हाथ डालने को कहते हैं कि वह स्त्रियों को चिता की अग्नि से तो बचाती है पर इस घोर कामाग्नि में रात दिन उन को क्यों दाहती है। इस से अब इस काल में परिश्रम और हठ पूर्वक इस का प्रचार कराना चाहिए। क्यौंकि बिना प्रचार हुए लोगों की लज्जा न छूटैगी और लज्जा छूटे बिना काम न चलैगा। जहां चाल चल गई वहां फिर न रुकै गो ऐसा करने से लाखों जीव बचैंगे।

हिन्दुओं की जाति ऐसी है जैसे मैमाथ की नसल। मैमाथ वह जन्तु है जिस की मोमियाई बनती है। अब केवल इस जन्तु की ठठरी मिलती है जीते जीव नहीं मिलते। इन के नाश हो जाने का यही कारण है कि इनकी नसल बढ़ती नहीं थी अन्त में छीजते छीजते अब एक न रहे। जैसा रूमियों का धर्म्म जिस की अब कहानी मात्र बाकी है। ठीक यही दशा हम हिन्दुओं की भी है। बढ़ते एक नहीं रात दिन छीजते जाते हैं। हर बरस सैकड़ों वरन् हजारों मुसलमान होते हैं हजारों क्रिस्तान होते हैं। बढ़ने की एक की भी उम्मीद नहीं। उस पर भी हजारों जीव ये नाश हों फिर क्या पूछना है। थोड़े दिन में आर्य्य सन्तति का नाम मात्र रह जायगा।

देखो यदि तुम्हारे पूर्व्व पुरुष लोग भी इस में लज्जा करते तो आज तक आप लोगों के इतने भी दर्शन न होते। उन लोगों ने इस प्रकार की सन्ततियों का सर्व्वदा आदर पूर्व्वक ग्रहण किया था। आप लोगों के मुख्य धर्म्म वक्ता और वेदों का विभाग करने वाले व्यास जी जिन की कविता से हम लोगों का संसार भर से साहित्य में अब भी सिर ऊंचा है पराशर जी के कानीन पुत्र थे। जिस रघुवंश का नाम जगत् में विख्यात है और जो वंश क्षत्रियों का अभिमान स्वरूप है उस वंश को वशिष्ठ जी ने राजा को साबित जान कर उत्पन्न किया है। जो पाण्डु और धृतराष्ट्र पौरव वंश की शोभा हैं वे भी अपने पिता के क्षेत्रज थे। जिस धर्म्मराज के नाम से हिन्दुओं के चित्त में धर्म्म का संचार होता है, जिस भीम की गदा और जिस अर्जुन के गांडीव की कथा से अद्यापि आर्य्य लोगों की भुजा फरकती है वे राजा पांडु के क्षेत्रज थे। जिस दमयन्ती ने भारतवर्ष में पातिव्रत्य और प्रेम की ध्वजा गाड़ रक्खी है उस ने (छल से सही) घोषणा की थी कि हम दूसरा स्वयंवर करते हैं। जिस द्रौपदी का प्रातःकाल

आर्य्य लोग मंगल के हेतु नाम स्मरण करते हैं उसके पांच पति थे। जिस विदुर की धर्म्म नीति आप लोगों के व्यवहार की प्रमाण भूत हैं उन्हें व्यास जी ने भाई के दासी क्षेत्र से उत्पन्न किया था। जिस ईसा को आज दिन संसार का तीसरा हिस्सा प्रभु कह के सिर झुकाता है और जिस के मत के लोग इस समय जगत के सब मनुष्यों में प्रबल हैं वे जोजफ के कानीन पुत्र थे। क्या कारण है कि उस काल में यह सन्तति आदर के साथ गृहीत हुई? क्यौंकि उस काल के लोगों के चित्त उदार और सच्चे तथा परिणामदर्शी थे इस में परिशेष में फिर हमारी यही प्रार्थना है कि आप लोग इस बाल हठ को छोड़ कर असंख्य गर्भहत्या और बाल हत्या मिटाइए और नाशावसन्न इस आर्य्य सन्तति की रक्षा कीजिए।

(हरिश्चन्द्र चन्द्रिका मार्च, सन 1875 ई.)

जातीय संगीत

भारतवर्ष की उन्नति के जो अनेक उपाय महात्मागण आजकल सोच रहे हैं उन में एक और उपाय भी होने की आवश्यकता है। इस विषय के बड़े बड़े लेख और काव्य प्रकाश होते हैं, किन्तु वे जनसाधारण के दृष्टिगोचर नहीं होते। इस के हेतु मैंने यह सोचा है कि जातीय संगीत की छोटी छोटी पुस्तकें बनें और वे सारे देश, गांव गांव, में साधारण लोगों में प्रचार की जायं। यह सब लोग जानते हैं कि जो बात साधारण लोगों में फैलेगी उसी का प्रचार सार्वदेशिक होगा और यह भी विदित है कि जितना ग्रामगीत शीघ्र फैलते हैं और जितना काव्य को संगीत द्वारा सुन कर चित्त पर प्रभाव होता है उतना साधारण शिक्षा से नहीं होता। इस से साधारण लोगों के चित्त पर भी इन बातों का अंकुर जमाने को इस प्रकार से जो संगीत फैलाया जाय तो बहुत कुछ संस्कार बदल जाने की आशा है। इसी हेतु मेरी इच्छा है कि मैं ऐसे ऐसे गीतों को संग्रह करूं और उस को छोटी छोटी पुस्तकों में मुद्रित करूं। इस विषय में मैं, जिन को जिन को कुछ भी रचनाशक्ति है, उन से सहायता चाहता हूं कि वे लोग भी इस विषय पर गीत वा छन्द बना कर स्वतन्त्र प्रकाश करें या मेरे पास भेज दें, मैं उस को प्रकाश करूंगा और सब लोग अपनी मंडली में गानेवालों को यह पुस्तक दें। जो लोग धनिक हैं वह नियम करैं कि जो गुणी इन गीतों को गावैगा उसी का वे लोग गाना सुनैंगे। स्त्रियों की भी ऐसे ही गीतों पर रुचि बढ़ाई जाय और उन को ऐसे गीतों के गाने का अभिनन्दन किया जाय। ऐसी पुस्तकें या बिना मूल्य वितरण की जाय या इन का मूल्य अति स्वल्प रक्खा जाय। जिन लोगों को ग्रामीणों से सम्बन्ध है वे गांव में ऐसी पुस्तकें भेज दें। जहां कहीं ऐसे गीत सुनैं उस का अभिनन्दन करैं। इस हेतु ऐसे गीत बहुत छोटे छोटे छन्दों में और साधारण भाषा में बने, वरंच गंवारी भाषाओं में और स्त्रियों की भाषा में विशेष हों। कजली, ठुमरी, खेमटा, कहरवा, अद्धा, चैती, होली, सांझी, लम्बे, लावनी, जांते के गीत, बिरहा, चनैनी, गजल इत्यादि ग्राम गीतों में इन का प्रचार हो और सब देश की भाषाओं में इसी अनुसार हो, अर्थात पंजाब में पंजाबी, बुंदेलखंड में बुंदेलखंडी, बिहार में बिहारी, ऐसे जिन देशों में जिन भाषा का साधारण प्रचार हो उसी भाषा में ये गीत बनें। उत्साही लोग इस में जो

बनाने की शक्ति रखते हैं वे बनावैं, जो छपवाने की शक्ति रखते हैं वे छपवा दें और जो प्रचार की शक्ति रखते हैं वे प्रचार करैं। मुझ से जहां तक हो सकैगा मैं भी करूंगा। जो गीत आवैंगे उन को मैं यथाशक्ति प्रचार करूंगा। इस से सब लोगों से निवेदन है कि गीतादिक भेज कर मेरी इस विषय में सहायता करैं और यह विषय प्रचार के योग्य है कि नहीं और इसका प्रचार सुलभ रीति से कैसे हो सकता है इस विषय में प्रकाश कर के अनुगृहीत करेंगे। मैंने ऐसी पुस्तकों के हेतु नीचे लिखे हुए विषय चुने हैं। इन में और भी जिन विषयों की आवश्यकता हो लिखैं। ऐसे गीतों में रोचक बातें जो स्त्रियों और गंवारों को अच्छी लगै, होना चाहिए और शृंगार, हास्य आदि रस इस में मिले रहें जिस में इन का प्रचार सहज में हो जाय।

बाल्य विवाह—इस में स्त्री का बालक पति होने का दुःख, फिर परस्पर मन न मिलने का वर्णन, उस से अनेक भावी अमंगल और अप्रीतिजनक परिणाम।

जन्मपत्री की विधि—इस से बिना मन मिले स्त्री पुरुष का विवाह और इस की अशास्त्रता।

बालकों की शिक्षा—इस की आवश्यकता, प्रणाली, शिष्टाचार शिक्षा, व्यवहार शिक्षा आदि।

बालकों से बर्ताव—इस में बालकों के योग्य रीति पर बर्ताव न करने में उन का नाश होना।

अंगरेजी फैशन—इस से बिगड़ कर बालकों का मद्यादि सेवन और स्वधर्म विस्मरण।

स्वधर्मचिन्ता—इस की आवश्यकता।

भ्रूणहत्या और शिशुहत्या—इस के प्रचार के कारण, उस के मिटाने के उपाय।

फूट और बैर—इस के दुर्गुण, इस के कारण भारत की क्या क्या हानि हुई इस का वर्णन।

मैत्री और ऐक्य—इस के बढ़ने के उपाय, इस के शुभ फल।

बहुजातित्व और बहुभक्तित्व—के दोष, इस से परस्पर चित्त का न मिलना, इसी से एक दूसरे के सहाय में असमर्थ होना।

योग्यता—अर्थात केवल वाणी का विस्तार न कर के सब कामों के करने की योग्यता पहुंचाना और उदाहरण दिखलाने का विषय।

पूर्व्वज आर्य्यों की स्तुति—इस में उन के शौर्य्य, औदार्य्य सत्य, चातुर्य्य, विद्यादि गुणों का वर्णन।

जन्मभूमि—इस से स्नेह और इस के सुधारने की आवश्यकता का वर्णन।

आलस्य और सन्तोष—इन की संसार के विषय में निन्दा और इस से हानि।

व्यापार की उन्नति—इस की आवश्यकता और उपाय।

नशा—इस की निन्दा इत्यादि।

अदालत—इस में रुपया व्यय कर के नाश होना और आपस में न समझने का परिणाम।

हिन्दुस्तान की वस्तु हिन्दुस्तानियों को व्यवहार करना—इस की आवश्यकता, इस के गुण, इस के न होने से हानि का वर्णन।

भारतवर्ष के दुर्भाग्य का वर्णन—करुणा रस संवलित।

ऐसे ही और और विषय जिन में देशों की उन्नति की सम्भावना हो लिए जायं। यद्यपि यह एक एक विषय एक एक नाटक, उपन्यास वा काव्य आदि के ग्रन्थ बनाने के योग्य हैं और इन पर अलग ग्रन्थ बनें तो बड़ी ही उत्तम बात है, पर यहां तो इन विषयों के छोटे छोटे सरल देशभाषा में गीत और छन्दों की आवश्यकता है जो पृथक पुस्तकाकार मुद्रित हो कर साधारण जनों में फैलाए जायंगे। मैं आशा करता हूं कि इस विषय की समालोचना कर के और पत्रों के सम्पादक महोदयगण मेरी अवश्य सहायता करैंगे और उत्साही जन ऐसी पुस्तकों का प्रचार करैंगे।

[कविवचन सुधा, मई सन 1879 ई., इस लेख का विज्ञापन भी छपा था]

खुशी

हस्बदिलख्वाह आसूदगी को खुशी कह सकते हैं यानी जो हमारे दिल की ख्वाहिश हो वह कोशिश करने से या इत्तिफ़ाक़ियाः बग़ैर कोशिश किए बर आवे तो हम को खुशी हासिल होती है। खुशी जिन्दगी के फल को कहते हैं, अगर खुशी नहीं है तो जिन्दगी हराम है क्योंकि जहां तक खयाल किया जाता है मालूम होता है कि इस दुनिया में भी तमाम ज़िन्दगी का नतीजा खुशी है।

इसी खुशी के हम तीन दर्जे कायम कर सकते हैं यानी आराम, खुशी और लुत्फ–आराम वह हालत है जिस में तकलीफ का एक हिस्सा या बिलकुल तकलीफ रफअ हो जावे। खुशी वह हालत है जिस में आराम का हिस्सा तकलीफ के मेकदार से ज्यादा हो जाय। और लुत्फ वह हालत है जिस में तकलीफ का नाम भी न बाकी रहे।

खुशी तीन किस्मों में बंटी है यानी दीनी खुशी, दुनियबी खुशी और ग़लत खुशी।

दीनी खुशी अपने अपने मज़हब के उकदे के मुताबिक कुछ कुछ अलग है मगर नतीजा सब का एक ही है यानी इतात दुनियबी से छूट कर हमेशा के वास्ते परमेश्वर की कुर्बत मयस्सर होनी ही अस्ली खुशी है। हम लोगों में परमेश्वर का नाम सत्‌चित आनन्द है और हम लोगों के नेक अकीदै के मुताबिक़ परमेश्वर का नाम रूप सब बिलकुल तलीफ़ है इसी से उस की याद में लुत्फ हासिल होता है। उपनिषद् में एक जगह सब की खुशी का मुकाबिला किया है। वह लिखते हैं कि खुशी जिन्दगी का एक जुज़े आज़म है और दुनिया में जितने मख़लूक़ात हैं सब खुशी ही के वास्ते मख़लूक हैं। इसी सब ख़िलक़त में जानदारों की बनावट और लियाक़त के मुताबिक़ खुशी बंटी हुई है; कीड़ा सिर्फ इस बात में खुश होता है कि एक पत्ते पर से दूसरे पत्ते पर जाय, चिड़ियों की खुशी का दर्जा इस से कुछ बढ़ा है यानी इधर उधर परवाज़ करना बोलना वगैरह। इसी तरह अखीर में आदमी की खुशी बनिस्बत और जानवरों के बहुत चढ़ी बढ़ी है। आदमियों में भी बनिस्बत बेवकूफों के समझदारों की खुशी का दर्जा ऊंचा है। आदमियों की खुशी से देवताओं की खुशी बहुत ज्यादः है। इस लम्बी चौड़ी तकरीर का खुलासा उन्होंने यह निकाला है कि सब से ज्यादः

और लतीफ़ परमेश्वर है। उस में कितना लुत्फ़ और खुशी है जो हम लोग नहीं जान सकते। इसी से अगर हम लोगों को खुशी और लुत्फ़ की तलाश है तो हम लोगों को उसी का भजन करना चाहिए।

इस के पहिले दुनियावी खुशी का बयान किया जाय उस खुशी का बयान आप लोग सुन लीजिए जो अब हम हिन्दुओं को खास कर साकिनाने बनारस को मयस्सर है। सब से बड़ी खुशी बेफ़िकरी है–

''अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका यों कहें, कि सब के दाता राम॥''

ऐसे ही खूब भांग पीना, झन्नाटे इक्के पर सवार होकर बहरी ओर जाना, कभी कभी कुछ गाना सुन लेना, बरसात के दिनों में अगर फोलनी दाना मयस्सर हो तो क्या बात है। अगर इस खुशी का दर्जा बहुत बढ़ गया तो एक आध सैल हो गई कुछ खाना कुछ पीना कुछ नाच कुछ तमाशा हो गया और अगर यही खुशी 'सिविलाइज्ड' की गई तो उस की छोटी छोटी कुमेटियों या वर्ष की दावत से बदल दिया।

इस से मेरा यह मतलब नहीं है कि इन बातों में बिलकुल खुशी नहीं है। बेशक तफ़रीह में खुशी है मगर उन्हीं लोगों को जो हमेशा बड़ी खुशी की तलाश में रहते हैं और जो दुनियावी खुशी के बयान में हम दिखावैंगे।

जिन की तबीयत तहकीकात की तरफ रुजुअ है और जो लोग हर शय और हर फेल का सबब और नतीजा दरयाफ्त करने की ख्वाहिश रखते हैं और यह भी जानना चाहते हैं कि इस दुनिया में जिन्दगी की हालत में इनसान को किस चीज़ की ज्यादः जुरूरत है उन पर यह बात बखूबी रौशन होगी कि इस किस्म के खयालों को तहज़ीब के कायदों के पैरों पर रह कर दलीलों से सुलझाने में और बसबूत कामिल इस अम्र का तस्फियः करने में कैसे वक्त दर्पेश होते हैं। चुनांचे जब हम खयाल करते हैं कि दुनिया में हम को किस खास चीज़ की जुरूरत और वह जुरूरत लाजमी क्यों है तो दिल में मुखतलिफ वजूहात के साथ कई किस्म के खयाल पैदा होते हैं और मुखतलिफ हाजतों के रफअ करने की मुखतलिफ सूरतें दरपेश करती हैं मगर इस मौक़अ प्रर हम रूह की उस ख़ास हाजत का जिक्र करैंगे जिसे जिन्दगी का वसूल और अक्ल का नतीजा कहना चाहिए यानी खुशी। यह वह चीज़ है जिस के हासिल करने की कोशिश हम पर उतनी ही लाजिम है जितना उस के तहसील के तरीकों के मालूम करने की भी जुरूरत है। इसी से इस लाजिम मल्जूम जुरूरत की कैफ़िर्यत को हम खुशी के नाम से पुकारते हैं। अब यह सवाल पैदा हुआ कि हमारी जिन्दगी के वसूल का यह लतीफ़ हिस्सा यानी खुशी क्या चीज़ है और क्यौं कर हासिल हो सकती है। इस सवाल का जवाब अकसर बड़े बड़े आलिमों ने अपने अपने तौर पर दिया है जिन सभों को इख्तिसार से पंहिले बयान कर के तब जो कुछ होगा

हम अपनी राय जाहिर करेंगे। मशहूर फिलासफ़र पेली का क़ौल है कि खुशी दिल की वह हालत है कि जिस में तअदाद राहत की रंज से ज्यादः बढ़ जाय। खुशी की शुरूअ हालत ख्वाहिश के मुताबिक काम शुरू करना, बाद अज़आ और कामियाब होता है वह काम चाहे किसी किस्म का क्यों न हो मसलन इल्म व हुनर सीखना, मुल्क फ़तह करना, बाग लगाना, गाना, खाना वगैरह वगैरह इसी खुशी के हासिल करने के वास्ते पहिले हम लोगों को चन्द दर चन्द तकलीफें इन कामों में कामयाब होने को उठानी पड़ती हैं। मुमकिन है कि बगैर खुशी हासिल होने तकलीफ़ रफ़अ हो जाय। [मगर जब तकलीफ होगी तब खुशी ख़ाह न खाह जाय हो जायगी। हां बिलकुल तकलीफ़ के दूर तो जाने को हम बेशक खुशी कह सकते हैं और इस सबब से खुशी हासिल करने का गोया यह वसूल है कि पहिले की तकलीफ़ को कोशिश की तकलीफ़ से बदलना और कामियाबी की खुशी से उसी कोशिश की तकलीफ़ को कामयाबी की खुशी से जाया कर देना।] और इसी सबब से खुशी की बतौर सरसरी के तहक़ीक़ात की जाय तो यह बात साबित होगी कि खुशी उस हालत का नाम है जिस में रंज का हिस्सा राहत से दब गया है। केराट साहब का क़ौल है कि खुशी हमेशा तकलीफ़ का नतीजा है और इस की मिसाल मकान बनाने से साफ जाहिर है। यह बात हम लोगों की आदत में दाखिल है कि अपनी मौजूदः हालत को कभी नहीं पसन्द करते और हमेशा अपनी हालत असली से बढ़ने की कोशिश करते हैं तकलीफ़ मौजूदः को दबा कर खुशी के हिस्से को बढ़ाया चाहते हैं। अगर हमारी खुशी हमेशा कयाम पजीर होती तो हम हालत मौजूदः से नहीं घटे हुए होते क्योंकि हम लोग किसी किस्म की कोशिश न करते और जिस का नतीजा यह होता कि कोई नई बात न जाहिर होती इसी से गोया उसी कारसाज हकीकी ने दुनिया की तरक्की के वास्ते यह कायदा मुकर्रर किया है कि आदमी पहिले जैसी तकलीफ उठावे पीछे से आराम हो और इसी बुनियाद पर आदमी की खासियत भी ऐसी ही बनाई है। हां यह बात बेशक है कि किसी को कम तकलीफ़ है और किसी को ज्यादः और कोई उस थोड़ी कोशिश में हासिल करता है और किसी को अपनी उम्र का एक बड़ा हिस्सा उस के हासिल करने में सर्फ करना होता है। इसी को तफरीह हम लोग कहते हैं कि यह आदमी खुश है और यह ज्यादः खुश है। इसी सबूतों से कहा जाता है कि खुशी खुद कोई चीज़ नहीं है बल्कि तकलीफ के उलटे अक्स का नाम खुशी और यह सबब है कि रंज और राहत लाजिम मलजूम हैं। बल्कि इसी से हमेशा यह एक मुअइअन कायदा है कि कोई काम बगैर तकलीफ़ के शुरू नहीं होता।

सर विलियम हमिल्टन खुशी की तारीफ में फरमाते हैं कि खुशी खुद कोई चीज़ नहीं है बल्कि आदमी की ख़ासियत या आदत को जब कोई रुकावट नहीं होती तो यही हालत खुशी की कहलाती है।

इन आलिमों की राय पर बहस न कर के अब हम खुशी के लफ्ज को भी कुछ बयान किया चाहते हैं। खुशी एक नाम है जो आराम को यानी ख़्वाहिश के पूरे होने की और तकलीफ़ों की हालत को कहते हैं और इस ऊपर के लफ्जी बयान से भी साबित हुआ कि खुशी एक ऐसा लफ्ज है जो हमेशा तकलीफ़ के मुक़ाबले में मुस्तअमल होता है।

बहुत लोगों क़ा खयाल है कि खुशी से इल्म से कुछ इलाक़ा नहीं है बल्कि वह एक ख़सलत जबली है जो इन्सान और हैवान दोनों में बराबर होती है। मगर यह बात नहीं है क्यौंकि इस किस्म की हैवानी खुशी से आलिम लोगों की खुशी से क्या फ़र्क है यह जिस को कुछ भी शऊर है बखूबी जान सकते हैं और इसी से कहा जा सकता है कि मिल्स हैवानों के जो खुशी है वह झूठी खुशी है और जो खुशी के दर्जः से बढ़ी हुई है वह खुशी है बल्कि खुदापरस्त लोग इसी वास्ते इन दोनों खुशियों से बढ़ कर के एक खुशी ऐसी मानते हैं जिस की कोशिश में दुनियावी खुशियों को भी तर्क कर देना होता है।

यह हर शख्स जानता है कि बार बार इस्तअमाल करने से कैसी भी खुशी क्यौं न हो जायः हो जायगी बल्कि ऐसी हालत में उसी खुशी का नाम बदल कर आदत है। यही सबब है कि अय्याश लोग अकसर ग़मगीन देखे गए हैं क्यौंकि पहिले जिस खुशी को उन्होंने बड़ी कोशिश से हासिल किया था अब वह उनका रोजमर्रः हो गया और हवस कम न हुई पर जब वह रोज अपनी औक़ात ताक़त इज्ज़त और रुपया सर्फ करते हैं मगर हज़ नहीं हासिल होता तो ग़मगीन होते हैं। इसी क़िस्म से खाना, पीना, नाच, रंग वगैरह की खुशी भी जल्द जायः हो जाती है मगर हां शिकार वगैरह की खुशी का दर्जा कुछ इस से बड़ा है और इसी तरह वह खुशी जो सनअत सीखने से हासिल होती है मसलन रंगराजी, इल्म मुसीक़ी कारीगरी वगैरह ऊपर बयान की हुई खुशियों से ज्यादः देरपा है क्यौंकि गुंजाइश के सबब से यह खुशी जल्दी जायः नहीं होती और इसी से जल्द जायः होने वाली खुशी के तलबगारों को अखीर में इसी खुशी से उकता कर के गोशःनशीनी की तलाश होती है।

यही हम कह सकते हैं कि हर शख्स को अपने अपने हौसला और हिम्मत के मुआफ़िक ज्यादा ज्यादा खुशी मिलती है। इस बयान से मेरा यह मतलब नहीं है कि बड़े मर्तबः के लोगों को ग़रीबों से ज्यादः खुशी होती है बल्कि उन ग़रीबों को जो कि अपनी हालत में तो ग़रीब हैं मगर उन के हौसले बहुत बड़े हैं बनिस्बत अमीरों के हमेशः ज्यादः खुशी हासिल होती है।

तवारीख से यह बात बखूबी साबित होती है कि बड़े बड़े फतह करने वाले बादशाह या शाहजादे बनिस्बत अवाम के हमेशः ज्यादातर मुसीबतें झेलते रहे हैं और खुशी से यहां तक महरूम रहे हैं कि उन में से अक्सरों ने खुदकुशी की है और बहुतेरे घर बार छोड़ कर फक़ीर हो गए हैं। फीजमानन शहनशाह रूस पर इस की

मिसाल बहुत ठीक घटती है। बेशक दुनिया में वह सब से बड़ा और सब से ज्यादः खुशी से महरूम है। गरीब की एक जान हजार दुश्मन। बल्कि हमारे हाजिरीन में से ज्यादः लोग ऐसे होंगे जो दर हक़ीक़त इस वक्त हमारे जनाब मुअल्ला अल्काब गर्दूरकाब शहनशाहे रूस दाम सल्तनतहू से बहुत ज्यादा खुशी होंगे।

इसी से हम कहते हैं कि खुशी से मर्त्तबः से कुछ वास्ता नहीं खुशी एक नेअमते उज़्मा है जिसे हर शख्स नहीं पाता। फारसी किताबों में मशहूर किस्सा है कि एक खुदापरस्त हमेशः परमेश्वर से अपने रंजों की शिकायत किया करता था। अल्लाह तअला ने उस की यह शिकायत रफअ करने को एक आईना दिया और फरमाया कि इस आईना में तू सब का दिल देख और जो इन्सान तुझ को तेरी हालत से ज्यादा खुश मालूम हो उस का नाम बतला कि तेरी हालत वैसी ही कर दी जाय। इस शख्स ने एक एक के दिल का इम्तिहान किया और ज्यों ज्यों ज्यादा रुतबे के आदमियों का दिल देखा गया त्यों त्यों ज्यादातर तकलीफ़ों से घेरा हुआ पाया। यहां तक कि जब बादशाह के दिल के देखने की नौबत आई तब उस आईना में सिवाय काले दागों के कुछ न बचा और उस ने घबरा कर आईने को दरिया में फेंक दिया और अपनी असली हालत पर खुदा का शुक्र किया। इस कहने से मेरा यह मतलब नहीं है कि आदमी अपने हौसलों को पस्त कर दे और कहे बादशाह होना न चाहिए बल्कि हमेशा अपने हौसले को बढ़ा कर कामयाब होता रहे मगर बाद कामयाबी के अपनी हालत ऐसी न परेशान रक्खे जिस से अपनी कोशिशों का सुख भोगने के बदले उसे रात दिन दुःख उठाना पड़े हमेशा हुकुमा जब अमीरों से उन के तरद्दुदात की शिकायत करते हैं तो उन को रहम की नज़र से देखते हैं मगर वे उमरा अपने से छोटे दर्जे वालों को कभी हम कि नजर से नहीं देखते बल्कि हिक़ारत की। इस का यही सबब है कि उलमा अपनी कोशिश से कामयाब हो कर खुशी के दर्जे को पहुंच गए हैं और किसी किस्म के तरद्दुद बाकी न रहने से वह दूसरों की मदद में अपने औकात सर्फ कर सकते हैं। बर खिलाफ इस के उमरा अपनी कोशिशों की नाकामयाबी से दूसरों पर हमेशः हसद किया करते हैं। महवे का खास फ़ायदा ऊंचा हौसला और बड़ी बड़ी खुशियों में शामिल रहने का खयाल है और यह वह खुशियां हैं जो हर हालत में एक सूं रहती हैं। और इन खुशियों का नतीजा यह होता है कि आसूदः लोग अपने कौम वतन और दुनिया की तरक्की की तदबीर के हौसले का मौका पाते हैं। बरखिलाफ इस के हैवानी खुशी के जोयां उमरा आपस में दुश्मनी बढ़ाए, हसद फैलाए बगैर हज़ ज़िन्दगी उठाए अपनी जिन्दगी मुफ्त बरबाद करते हैं।

मेरे ऊपर के बयान से आप लोगों पर जाहिर हो गया होगा कि खुशी इमारत पर मुस्तसना नहीं बल्कि एक खुदादाद चीज़ है। अब मैं बयान करता हूं कि खुशी किस चीज़ में है। अब हासिल करने की और बादहू उस के कायम रखने की तदबीर सोचनी जुरूर हुई। खुशी हासिल करने का तरीका जानने के लिए सब के पहिले

लियाकत की जुरूरत है। बहुत सी ऐसी हालतें हैं जिनमें खुशी हासिल करने की कोशिश की जाती है मगर उस का नतीजा उलटा होता है और अक्सर रंज के मौकों में यकायक खुशी हासिल हो जाती है इसी से खुशी हासिल करने की खास तदबीरों का बयान करना मुश्किल है। सिर्फ अपनी हाजतों को पूरा करना खुशी नहीं कही जा सकती क्यौंकि बहुत सी हाजतें ऐसी होती हैं जो महज गलत वसूलों पर कायम होती हैं। अक्सर उलमा का कौल है कि खुशी मुहब्बत में है। दुनिया में खुदा ने मुहब्बत के सजावार भाई, जोरू, लड़के, रिश्तेदार और दोस्त वगैरह बहुतेरे बनाए हैं। अक्सर इन लोगों की अदममौजूदगी में खुशी न हासिल होने से लोग फकीर हो जाते हैं या दुनिया में रहते हैं तो परेशान रहते हैं। चन्द लोग दूसरों की हाज़त रफ़अ करने को खुशी कहते हैं क्यौंकि दूसरे लोग खुशी हासिल करने की जो कोशिश करते हैं उन को अपनी कोशिश में कामयाब बना कर खुश कर देना गोया उन की खुशी में शरीक होना है।

आज उलमा खुशी हासिल करने की कोशिश ही को खुशी कहते हैं मगर इस में मुश्किल यह है कि पहिले से उस कोशिश के अखीर नतीजे की कामयाबी को बखूबी जांच कर लेना चाहिए। दूसरे जब तक कि उस काम का अंजाम बखूबी न हो जाय बराबर मुसतअदी की भी जुरूरत है। पेली का कौल है कि खुशी जितनी अपने इरादों की मजबूती में है उतनी सिर्फ खयालात और कोशिश में नहीं। इस कौल की तसदीक़ बहुत साफ़ है। जो अपने इरादों पर मजबूत है वह हमेशा अपनी कामयाबी को अपनी आंखों के सामने देखता है और अगर ऐसा शख्स अपना काम पूरा किए हुए भी मर जाय तो उसको वही खुशी हासिल करने के वास्ते काम के पीछे लगे रहना निहायत जुरूर है ख्वाह वह अपने फ़ायदे के वास्ते हो या आम फ़ायदे के वास्ते हो। अक्लमन्द लोग इसी काम में लगे रहने को दिल्लगी कहते हैं और यह वह दिल्लगी है जो आदमियों को अपने इरादों पर कामयाब कर के खुशी ही नहीं बख्शती है बल्कि रूहानी व जिस्मानी सिहत को भी कायम रखती हैं।

इन में खुशी के चन्द वसीले ऐसे हैं जिन का असर आदमी अपनी मौत के बाद भी छोड़ जा सकता है मसलन मुल्क की जमाअतों का कायम करना, स्कूल और शफ़ाखानों की बुनियाद डालना वगैरः वगैरः।

ज़ाति फ़ायदों की खुशी भी बाज़ हालत में आदमी के मरने के बाद भी कायम रह सकती है मसलन अपने खानदान के खुर्द व नोश की सूरत बेखलिश क़ायम कर जाना। किसी काम की तरफ़ मज़बूती से दिल लगाने में एक फ़ायदा यह भी है कि बीच में छोटी छोटी तकलीफें जो इत्तिफ़ाक से सरज़द होती हैं उन को आदमी अपनी होनहार खुशी की धुन में बिलकुल खयाल में नहीं लाता।

खुशी की एक उमदा हालत यह भी है कि अपनी बुरी आदत को बदल देना। वह आदमी कैसा खुश होगा जब वह अपने को बुरी आदत से छूटा हुआ देखेगा।

बहुत से लोग गैर मामूली ख्वाहिशों के पूरे होने को खुशी कहते हैं जैसा कि जो शख़्स हमेशा तनहाई में रहता है उसे अगर दोस्तों की सुहबत नसीब होती है तो उस को ग़नीमत जानता है। मगर कोशिश कुनिन्दा को ऐसे मौका में बनिस्बत सुस्त लोगों के ऐसे हालत में भी ज्यादा खुशी हासिल होती है। मसलन जो फ़िलासफ़ी की बड़ी बड़ी किताबों के पढ़ने में हमेशा अपना वक्त सर्फ करता है उसे अगर छोटी मोटी कोई किस्से की किताब मिल जाय तो वह बड़ी खुशी से पढ़ेगा बरख़िलाफ़ इस के जो हमेशा किस्से कहानियों से जी बहलाता है उस को अगर फिलासफी की किताब दे दी जाय तो उस का जी उलझैगा और वह उसे फेंक देगा।

गैर मामूली खुशी अमीरों पर भी असर करती है। मसलन किसी अमीर की सालाना आमदनी हजार रुपया है मगर किसी साल इत्तिफ़ाक़ से दस या बारह आ जावें तो, उस को खुशी हा़सिल होगी। यही मिसाल इस बात की दलील है कि अगरचे दौलतमन्दी खुशी की मूजिब है मगर उस में भी तरक्की ज्यादः खुशी देती है।

खुशी का एक बड़ा भारी सबब तन्दुरुस्ती भी है और यह तन्दुरुस्ती तब ही दुरुस्त रह सकती है जब आदमी रूहानी या जिस्मानी तकलीफ से बच सकता है। खुशी है वह जिस का बदन बलराम या रीढ़ या चरबी से नहीं तैयार है। बल्कि किसी किस्म की तकलीफ़ न होने की आसूदगी से तैयार है। मगर यह खयाल जुरूर है कि यह तन्दुरुस्ती उस किस्म की बेफिक्री से न पैदा हो जिस से कि तमाम कोशिश और हौसले पस्त हो जायं जैसा कि हमारे हज़रात बनारस की खुशी है।

हम पहिले कह चुके हैं कि सच्ची खुशी के लिए लियाक़त की जुरूरत है मगर इस लियाक़त के साथ दुनियावी तहजीब और दीनी ईमानदारी की भी निहायत जुरूरत है। अक्सर लोगों को बहुत सी ऐसी बातों में खुशी हासिल होती है जो दर हक़ीकत ईमान, तहजीब, आकबत, आबरू, बल्कि जान, माल और जिस्मों आराम को भी गारत करनेवाले होते हैं। तो क्या हम ऐसी खुशी को भी असली खुशी कहेंगे? मसलन मूजी़ को ईजारसानी में, बदकार को बदी में, किमार बाज को जुए में और ऐसे ही बहुत सी बातों में खुशी मान ली जाती है जो हिकमतन, शरहन और यकीनन, हर सूरत से सिवाय ज़रर के फायदा नहीं पहुंचाती। इस सूरत में तो बल्कि यह सोचना लाजिम आता है कि ऐसी खुशियों के नज़दीक भी न जाय क्यौंकि जब कोई शय तुम्हारी अक्ल पर ग़ालिब आ जाय तो तुम नशे के आलम की तरह, अपने हवास पर काबू न रख कर झूठी खुशी की तलाश में जाहिरी लज्जत के धोखे से ज़हर का प्याला पी जाओगे। हकीकी खुशी वही है ज़िस का अंजाम वह आग़ाज दोनों खुश है। असली खुशी सुफहए दिल से रंज का नाम यकक़लम हटा देती है और तमाम जिस्म की, हवा से खमसः को और जान को ऐसी राहत देती है कि उस हालत महवीयत में उसी सामाने खुशी की निस्बत हर लहजः में दिल नई नई उलफ़तें और नए नए शौक़ पैदा करता है। इस कैफ़ियत का ठीक ठीक जाहिर करना जबान की

कूव्वत से बाहर है इस से तजरिबःकार लोगों के कयास ही पर छोड़ दिया जाता है।

पेली ने लिखा है कि खुशी तहजीब वाकिया जमाअतों की मुतफर्रिक लोगों में करीब करीब बराबर हिस्सों में बंटी है और इसी से बुराई करने वाला हमेशा बमुकाबला ईमानदार दुनियावी खुशी से भी महरूम रहता है। खुशी से राम को अलाहिदः करने के लिए एक खास किस्म की लियाक़त की जुरूरत होती है जो हर शख्स में नहीं पाई जाती इसी से खालिस खुशी का लुत्फ हर शख्स को नसीब नहीं होता। दुनिया में तकलीफ़ भी जब अपनी हद को पहुंचती है खुशी का मजा चखाती है। जब आदमी पर हद से ज्यादः जुल्म होता है या हालत सक़रात पहुंचती है तब नई खुशी से बदल जाती है और यही सबब है कि आदमी जितना छोटी छोटी तकलीफ़ों से तंग आता है उतना बड़ी तकलीफ से नहीं घबराता। सच्चे आशिक़ों की हिजरत की तकलीफ जब हद से ज्यादः बढ़ जाती है तब फिराक़ में वस्ल से ज्यादः मजा मिलता है। सुई गड़ने में जो तकलीफ होती है वह बल्कि नहीं बरदाश्त होती मगर जंग में मुतवातिर चोटों को आदमी बेतकलीफ बरदाश्त कर सकता है। अफरीका के मशहूर सैयाह डॉक्टर ल्यूंगशटन (लिविंगस्टोन) ने लिखा है जब वह बेर के जंगल में फंस गए थे तो उन को मायूसी के साथ एक किस्म की खुशी हुई थी। इसी तरह अक्सर मौत शहीद के वक्त लोग खुश पाये गए हैं। इस का सबब यह है कि जब आदमी की हालत बिलकुल ना उमैदी को पहुंचाती है तो उस तकलीफ का खौफ़ का बाकी नहीं रहता मसलन जब तक आदमी को जीस्त की उमैद है, उसको मौत का खौफ रहेगा मगर जिस वक्त कि जीस्त की उम्मैद बिलकुल मुनकतअ हो गई फिर उस को किस बात का खौफ़ रहा। यही सबब है कि हिन्दू शास्त्रकारों ने खौफ़ और रंज़ की असली हालत को भी एक रस माना है और जाहिर कि ट्राजिडी यानी ऐसे तमाशे जिन का आखिर हिस्सा बिलकुल रंज से भरा हो देखने में एक अजीब किस्म का लुत्फ देती है बल्कि ट्राजिडी में जैसी उम्दा किताबें लिखी गई हैं वैसी कामेडी में नहीं। जिस तरह रंज की आखरी हालत खुशी से बदल जाती है उसी तरह खुशी की भी आखरी हालत रंज से बदल जाती है और इसी से ज्यादा खुशी के वक्त लोग शिद्दत से रोते हुए पाये गए हैं। खुलासा कलाम यह कि इस किस्म की बहुत सी खुशियां दुनिया में हैं जिन को हम खालिस खुशी नहीं कह सकते।

अब हम इस बात पर ग़ौर किया चाहते हैं कि वह अस्ली खुशी हिन्दुओं को क्यों नहीं हासिल होती क्योंकि जब हम इसी खुशी को अपनी पूरी बुलन्दी की हद पर हर सूरत से कामिल देखना चाहते हैं तो हमेशा ग़ैर क़ौमों में पाते हैं। इसकी ज़ाहिर वजूहात जो मालूम होती हैं उस में सब से पहिला सबब हिन्दुओं के दोनों व दुनियावी तरीकों का आपस में मिल जाना और तनज्जुली के जमाने के कम बेश फ़ाजिलों का इहकाम शरअी में दखल दर माकूलात करना है जिन के कलाम पर

आप ने अपनी नातजरिबःकारी से पूरा अमल कर लिया है। इन फुजला ने अपनी कम हिम्मती की वजह से ऐसे कायदे जारी किये जिन से आखिरकार हम लोगों की यह तर्स के लायक हालत पहुंची कि हम लोग उस खुशी को जो फ़ी जमाना गैर कौमों को हासिल है कभी खाबोख़याल में भी नहीं ला सकते। इन फिलासफरों के फिलासफी का इत्र निकाल कर जिन बातों को हमारे आराम के लिए जुरूरी बल्कि हमारी नजात का मूजिब ठहराया है वे अगर इस नजर में देखे जावे जिस से हम खुशी को अब असली हालत पर गैर कौमों में बतलाते हैं तो साफ जाहिर होगा कि इन्हीं की तअलीम का यह फल है कि परमेश्वर ने इन बेचारे हिन्दुओं को इस सच्ची खुशी से महरूम रख कर इन के हिस्से से अपनी एक दूसरी प्यारी खिलकत की गोद भर दी है जहां कि हर एक की उम्र का जाम खुशी से लबालब नजर आता है, इन कदीम जमाने के फिलासफरों के उसूल की बहस बहुत तूल है और इसी तरह उस को सिलसिलेवार दलीलों से रद करने के लिए भी बड़ी गुंजाइश चाहिए इसलिए यहां सिर्फ उन पुराने ख़यालों का खुलासा दिखलाया जाता है कि किस तरीके पर उन्होंने अपनी उस अनोखी खुशी की बुनियाद कायम की है और वह इस तरक्कीयाफ्ता जमाने के आकिलों के कौलों फेअल के नजदीक कितनी हेच है।

इन उलमा की खुशी का पहिला तरीका सन्तोष यानी कनाअत है। उन्होंने अपनी पेचीदा इबारत के बेमानी मजमून में जिस का हर फिकरा अब हदीस गिना जाता है आखीर को यह साबित किया है कि खुशी व रंज दोनों गलत और बहम हैं यानी रंज और राहत से अलहदा वह हालत जिस में अक्ल, ख़याल, हवास और हरकत (शायद सकते की बीमारी की हालत) सब सलफ़ हो जावें वही परमानन्द है और वही खुशी का असलुल्वसूल और लुब्बेलवाब है। आदमी को इस हालत तक पहुंचने के लिए उन लोगों ने चन्द कायदे भी ईजाद फरमाए हैं जिन में अव्वल उन के कलाम पर बिला हुज्जत यकीन लाना हरगिज हरगिज दलील और अक्ल को दखल न देना। दूसरे उसी गारतगर सन्तोष को इख्तियार करना और ख्वाहिश व हाजतों को दिल में पैदा न होने देना। तीसरे सब कुछ बरदाश्त कर लेना और रंज और राहत को एक अम्रे तकदीरी समझ कर हमबखुद रहना। चौथे नेक और बद में तमीज न करना और भला बुरा सब को यकसां समझना। पांचवें (मुआज अल्लाह) खालिक और मख़लूक न समझना।

जाहिर है कि पहिले कायदे पर अमल करने ही से अक्ल पर ज़वाल आया और फायदः व नुकसान का ख़याल जाता रहा। उन्हीं आंखों को अपने हाथ से फोड़ कर बहकते बहकते उस अन्धे कुएं में जा पड़े जिस में परमेश्वर ही हाथ पकड़ कर निकाले तो निकलना मुमकिन है। दूसरे क़ायदे की इख्तियार करते ही नामर्दी छा गई काहिली बढ़ने से हिम्मत बहादुरी और हौसले का नाम ही न बाक़ी रहा फौरन बेबस होकर ज़माने के हेरफेर के मुताबिक़ हमेशा के वास्ते अपने मुल्क़ को ग़ैर क़ौम की नज

कर आप परमानन्द की मूरत बन बैठे। ग़ौर का मुकाम है कि जब ख्वाहिश और हाजत न होगी तब आदमी को किसी शय से तअल्लुक बाकी न रहेगा जिस के हासिल होने या क़ायम रहने को हम खुशी का मूजिब कहें। आंसूदगी को एक मौका तक कौन न पसन्द करेगा क्योंकि बक़द्र ख्वाहिश उसके हासिल होने पर जब तक हम ऐसी नई ख्वाहिश न पैदा करें जिस के पूरे करने का जरियः पहिले से सोच लिया हो यह जुरूर है कि हम पहिली ख्वाहिश पर कामयाब होने का मज़ा हासिल करने के लिए आसूदगी इख्तियार करें। सिवाय इस के आसूदगी से यह मुराद नहीं है कि हमारी भूख जाती रहे और हम को हर रोज़ ताज़ा खाना खाने की जुरूरत न बाकी रहे। जब हम खाना खा चुकते हैं बेशक आसूदगी हासिल करते हैं मगर फिर मेहनत वगैरह से भूख बढ़ा कर खाने या नया शौक़ पैदा करते हैं। उसी तरह जितना हमारा इल्म बढ़ता जाता है और खुशी के नए नए सामान नजर आते हैं उतना ही हमारी आदमीयत पर फ़र्ज होता है कि अगर हम अपनी हालत का बेहतर होना न पसन्द करें तो भी अपनी जमाअत की हाजत रफ़अ करने के ख़याल से उस सामान के मुहैया करने की तदबीर से बाज न आवें। बल्कि जिस हालत में किसी ऐसी आफ़त नागहानी से हम पर कोई सदमा ऐसा सख्त हायल होता है कि जिस से दिल पस्त और बेहौसला हो जाता है और हरगिज़ किसी ख्वाहिश के पैदा करने या उस के बढ़ाने में खुशी नहीं दिखलाती उस वक्त भी अगर इस कम्बख्त सन्तोष का गुजर न हुआ होय तो दूसरों को खुशी पहुंचाने से इन्सान खुशी हासिल कर सकता है। क्यौंकि हिकमत से यह साबित है कि खुशी का बदला खुशी और रंज का बदला रंज मिलता है। यह बात ज़ाहिर है कि तरक्की और क़नाअत से ज़िद है और जब तरक्की मैकूफ हुई तो ज़माना जुरूर तनज्जुली पहुंचाएगा।

जब हम देखते हैं कि हमारे हर चहार तरफ़ हर कौम के लोग बाजी लगा लगा कर और जान लड़ा कर दौड़ रहे हैं और अपनी अपनी मुस्तअदी और कूवत के जोर से तरक्की के बुकचे लूट कर मालामाल हुए जाते हैं तब किस तरह दिल कुबूल कर सकता है कि हम कनाअत के टुकड़े तोड़ कर पेट भरें और मुहताजी के जहन्नुम को खुशी से कुबूल करें। अलबत्तः लाचारी की हालत में सब्र उस वक्त तक काम दे सकता है कि जब तक हम अपनी हालत बदलने की दूसरी सूरत न पैदा कर सकें। तीसरे कायदे की निस्बत यह कहना है कि सख्ती के बरदाश्त करने की आदत उसी कनाअत से दिल बुझे जाने और पिता मर जाने के बाद खुद ब खुद पैदा होती है, उस वक्त गैरत जो इन्सान को हैवान से अलहदा करनेवाली चीज़ है गुम हो जाती है और जब यह इन्सान का उमदा जेवर खो गया तो खुशी का सिर्फ़ नाम याद रह सकता है। बरदाश्त सिर्फ दुश्मन की ताकत घटा कर हिकमतें अमली से उस पर ग़ालिब आने का मौका पाने के लिए है न कि हमेशा के लिए गुलामी इख्तियार करने की थोड़े कायदे की तअलीम में खुशी और रंज का फ़र्क

ही न बाकी रक्खा कि एक के हासिल करने और दूसरे के रफ़अः करने की जुरूरत होती। उस अनूठे कारीगर ने अपने कारीगरी की बारीकी जानने के लिए जो कुछ हमें तमीज बख्शा है उस से हम दम पर दम नए तिलस्मात का भेद जानते जाते हैं जिस से हमारे दल का अंधेरा खुद ब खुद दूर होता है और हमारी आंखों के सामने वह बातें दिखलाई पड़ती हैं जिस के बगैर हम किसी चीज़ की पूरी पूरी कद्र नहीं कर सकते। ज़ाहिर है कि जब हम कद्र ही नहीं कर सकते तो हमें न उस के हासिल होने की ख्वाहिश होगी न हासिल होने पर खुशी होगी। हर शख्स इस की वजह खुद दरयाफ्त कर सकता है कि तमीज़ के साथ खुशी की तअदाद बढ़ती है बल्कि मुख्तलिफ़ हुकमा इस बात पर बहस करते हैं और खुशी जानकारी है या अनजानपन। एक का कौल है कि इल्म ही खुशी का मूजिब है क्योंकि अपनी ख्वाहिश और उसके पूरे होने की कद्र आदमी इल्म से करता है बरख़िलाफ इस के दूसरा आलिम कहता है कि जानकारी ही से ख्वाहिश बढ़ती है और आदमी अपनी हशमत मौजूदः को कम समझता है। ख़ैर इस बहस का जवाब और मौकअ पर मौजूदः है। इस वक्त इस कहने से मतलब यही है कि हर हालत में बे तमीज को खुशी की कद्र नहीं मालूम हो सकती क्यौंकि वह अपनी गलती नहीं पहचान सकता और इसी से वाकिफ़कारी के फ़ायदों को नहीं उठाता जिस पर कि खुशी का घटना बढ़ना मौजूद है।

पांचवें कायदे की निस्बत हम इतना ही कह सकते हैं कि इस शैतानी ख़याल से सख्त मुसीबत, इन्तिहा की आजिजी और मायूसी की हालत में जब कि किसी सूरत में तस्कीन नहीं होती और खुशी का नाम भी जबान से नहीं निकल सकता उस वक्त बन्दों के वास्ते एक आखरी दरवाजा फर्य्याद का जो खुला था वह भी बन्द कर दिया गया। तमाम उम्र देखा ये कि कभी दो मुख्तलिफ जुज एक नहीं हुए मगर इन दिल्लगीबाजों ने यकीन करा ही दिया कि कोंहार और खिलौना एक ही चीज़ है पर और के तजरिबः और आदमी की बनावट की ख़ासियत को बखूबी मालूम करने से मालूम होता है कि हमारी जिन्दगी का कड़ुआ प्याला उस की याद के आबहयात के दो चार कतरे शामिल किए बगैर किसी खॉलिस खुशी से शीरीं किया नहीं जा सकता मगर जब याद और यादकुनिन्दा ही बाकी न रहा तो फ़क़त इस जिन्दगी के नतीजे ही रह गये। ख़ैर इस तूल कलामी से कुछ हासिल नहीं अब सिर्फ इतना दिखलाना और बाकी है कि उन क़ौमों में जिन को प़रमेश्वर ने असली खुशी हासिल करने का शऊर और मनसब बख्शा है हिन्दुओं के बरखिलाफ जाहिरा क्या फर्क है। कौमियत का पास, अपने तरक्की की कोशिश, बेतकल्लुफी आजादी, इल्म और हुनर सीखने का खानदानी रिवाज, बे हुनरी और काहिली और एहसान उठाने की शर्म, मुस्तअदी, दिलेरी, सिपहगिरी का शौक, फनून की चाह, बे गरज दोस्ती और उस की शर्तों की पाबन्दी, तहजीब की कैद सफाई, कद्रदानी, खुदा का बखौफ, और मजहब

का रस्म और दूरंदेशी के सिवाय खुशी का बुनियाद, औरतों की लियाकत और इरादे, ऐसी ही बहुत सी बातें हैं जो उन कौमों को खुदा ने बख्शीं है और हम उन से महरूम हैं। खुशी तो इन सिफतनों की गुलाम है मुमकिन है कि जहां यह सिफतें मौजूद हों खुशी खुद ब खुद बस्तः न हाजिर हो। मगर बरखिलाफ इस के हमारे पास जो सामान हैं रंज के हैं यानी बे इख्तियारी, दीनी और दुनियावी कायदों का एक होना, ना तजरिबकार बुजुर्गों की बात पर अमल करना, मजहब के उन फिजूल उकायद की पाबन्दी जिन से दर हकीकत मजहब से कोई इलाका नहीं है, अपने हसब व नसब का भूल जाना, हमदर्दी का दिल से गुम होना, तरीका तालीम के वसूलों का पस्त होना, अपनी पाबन्दियों से मुल्क की आबोहवा को बिगाड़ कर तन्दुरुस्ती में फर्क डालना, तकलीफ ही को सबब और आराम का मूजिब समझना, दौलत का हमेशा बाहर जाना और कार के उम्दा वसीलों का ज़ायः होना, मुख्तलिफ मजाहिब की पाबन्दी से दिलों का न होना एक और सब से बड़ी बात उस परमेश्वर का हम लोगों से नाराज रहना ऐसी ही बहुत सी बातें हैं जिन से हम हिन्दुओं को अब ख्वाब में भी खुशी नसीब नहीं है कि जिन में से एक एक तहकीकात और बयान के वास्ते अलग अलग किताबें लिखी जायं तो भी काफी न हो।

संगीत सार

भारतवर्ष की सब विद्याओं के साथ यथाक्रम संगीत का भी लोप हो गया। यह गानशास्त्र हमारे यहां इतना आदरणीय है कि सामवेद के मन्त्र मात्र गाए जाते हैं। हमारे यहां वरंच यह कहावत प्रसिद्ध है 'प्रथम नाद तब वेद'। अब भारतवर्ष का संपूर्ण संगीत केवल कजली ठुमरी पर आ रहा है। तथापि प्राचीन काल में यह शास्त्र कितना गंभीर था यह हम इस लेख में दिखलावेंगे।

गाना, बजाना, बताना और नाचना इस के समुच्चय को संगीत कहते हैं। प्राचीन काल में भरत, हनुमत्, कलनाथ और सोमेश्वर यह चार मत संगीत के थे। कोई कोई शारदा, शिव, हनुमत् और भरत यह चार मत कहते हैं। सात अध्याओं में यह शास्त्र बंटा है जैसे स्वर, राग, ताल, नृत्य, भाव, कोक और हस्त। सम्यक् प्रकार से जो गाया जाय उसे संगीत कहते हैं, धातु और मातु संयुक्त सब गीत होते हैं। नादात्मक धातु और अक्षरात्मक मातु कहलाते हैं। वह गीत यन्त्र और गात्र विभाग से दो तरह के हैं। बीना बेनु इत्यादि से जो गाया जाय वह यन्त्र और कंठ से जो गाया जाय वह गात्र गीत है। गीत निबद्ध और अनिबद्ध दो प्रकार के होते हैं, अक्षरों के नियम और गमक के नियम बिना अनिबद्ध और ताल मान गमक अक्षर रसादि के नियम सहित निबद्ध। शुद्ध, शालंग और संकीर्ण के भेद से यह गीत तीन प्रकार के हैं परन्तु यह भेद प्रबन्ध ही के होते हैं। शुद्ध के एलादिक बीस भेद हैं, यथा एला, सोध्यभवा, पाट करण, पंच, तालेश्वर, कैरात, स्मर, चक्रपाल, विजया, गद्य, त्रिभंगी, टेंकौ, वर्णपुट, सर्गपुट, द्विपदिका, मुक्तावली, माहका, लम्ब, दंडक और वर्त्तनी। इन गीतों के छह अंग हैं यथा पद, तान, बिरुद, ताल, पाट और स्वर। ध्रुवक, मंडक प्रतिमंडक, निःसारक, वासक, प्रतिलाभ, एकतालिका, यति और झूमरी ये शालग के भेद हैं। चैत्र, मंगलक, नगनिका, चर्चा, अतिनाट, उन्नवी, दोहा, बहुला, गुरुबला, गीता, गोबि, हेम्ना, कोपी, कारिका, त्रिपदिका और अधा से संकीर्ण के भेद हैं। गीत प्रबन्ध में अक्षरों के मात्राशुद्धि पुनरुक्ति इत्यादि दोष नहीं होते। गाना बजाना सब दो प्रकार का होता है, एक ध्वन्यात्मक दूसरा रागात्मक। रागात्मक चार प्रकार के होते हैं, यथा स्वर प्रधान अर्थात् स्वर के आग्रह से जिस में ताल को मुख्यता न रहै, दूसरा उभय

प्रधान जिस में ताल बराबर रहै और स्वर भी सुन्दर हों, तीसरा शुद्धता प्रधान जिस में राग के शुद्ध रूप रहने का आग्रह हो चाहै माधुर्य हो चाहै न हो, चौथा माधुर्य प्रधान जिस में राग का शुद्ध रूप कुछ बिगड़े तो बिगड़े पर माधुर्य रहै।

स्वर—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद ये सात हैं। मयूर, गऊ, बकरी, कौंच, कोकिल, अश्व और हाथी इनके शब्द में क्रम से पूर्वोक्त स्वर निकलते हैं। नासा, कंठ, उर, तालु, जिह्वा और दन्त छह स्थान से जो उत्पन्न हो वह षड्ज, (ऋषोशगतौ) स्वर की गति नाभि से सिर तक पहुंचे इस से ऋषभ, गन्धवाही वायु की नलिकाओं में वह स्वर पूर्ण हो इस से गान्धार, फिर वह स्वर मध्य अर्थात नाभि तक प्राप्त हो इस से मध्यम, (धयतिस्वरान् इति धैवत) मध्यम के आगे भी जो स्वरों को खींचे वह धैवत, पूर्वोक्त पांचों सुरों को पूर्ण करै वा पंचम स्थान मूर्द्धा तक पहुंचे वह पंचम और (निषीदन्तिस्वरा अस्मिन् इति निषादः) स्वरों का जिस में विराम हो अर्थात जिस से ऊंचा और कोई स्वर न हो वह निषाद। इन्हीं सातों सुरों के प्रथमाक्षर[1] से स रि ग म प ध नि ये सात स्वर वर्ण नियत हुए। षड्ज, पंचम और मध्यम में चार, ऋषभ-धैवत में तीन और गान्धार-निषाद में दो श्रुति हैं। सम्पूर्ण स्वर सरिगमपधनि। खाड़व निषादं विना अर्थात सरिगमपध और उड़व ऋषभ और पंचम बिना अर्थात सगमधनि। नाटवसन्तादि सम्पूर्ण राग सातों सुर से, खाड़व राग छह सुर से और उड़व पांच सुर से गाए जाते हैं। नाम के क्रम से रखने से इनका प्रस्तार होता है और नष्ट, उद्दिष्ट, मेरु, मर्कटी, पताका, सूची, सप्तसागर इत्यादि में इस का विस्तार होता है।

राग—जैसे रास में वंशी के सात रन्ध्रों से सात सुरों की उत्पत्ति मानते हैं वैसे ही रास में 1608 गोपियों के गाने से सोलह सौ आठ तरह के राग हैं, जो एक एक मुख्य से दो सौ अट्ठाईस तरह के होकर बने हैं। भरत और हनुमत् मत से छह राग भैरव, कौशिक (मालकोस), हिन्दोल, दीपक, श्री और सोमेश्वर, कलानाथ के मत से छ राग श्री, वसन्त, पंचम, भैरव, मेघ और नटनारायण। पूर्व्वमत में प्रत्येक राग को पांच रागिनी, पर मत में छह रागिनी आठ पुत्र और एक एक पुत्र भार्या। अन्य मत से मालव, मल्लार, श्री, वसन्त, हिल्लाल और कर्णाट ये छह राग हैं। मालव की रागिनी धानसी, मालसी, रामकीरी, सिंघुड़ा, कोंड़ा और आसावरा। मल्लार की बेलावली, 'पूर्वा, कानड़ा, माधवी, कोंड़ा और केदारिका। श्री की गान्धार, शुभगा, गौरी, कौमारिका, बेलवारी, और बैरागी। वसन्त की टोड़ी, पंचमी, ललिता, पटमंजरी, गुज्जरी और विभाषा। हिल्लोल की मायूरी, दीपिका, देशकारी, पाहिड़ा, बराड़ी और मोरहारी। कर्णाट का नाटिका, भूपाली, रामकली, गडा, कामादा और कल्यानी। इनमें बराड़ी, मायूरी, कोड़ा, वैरागी, धानुषी, बेलावली और मोरहारी मध्याह्न को, गान्धारी, दीपिका, कल्यानी,

---

1. 'ष' 'ऋ' के उच्चारण की सुगमता के हेतु 'स' 'रि' माना है।

पूरबी, कान्हड़ा, शाखी, गौरी, केदारा, पाहड़ी, मालसी, नाटी, मायूरी, भूपाली और सिधुड़ा सांझ को और बाकी सबेरे गाना। राग छओ तीसरे पहर से आधीरात तक। वर्षा में मल्लार और वसन्त पंचमी से रामनवमी तक वसन्त और वामन द्वादशी से विजय दशमी तक मालसी यह समय नियत है। बेलावली, गान्धारी, ललिता, पटमंजरी, वैरागा, मोरहाटी और पाहिड़ी (पहाड़ी) यह करुणा में, पूरबी, कान्हड़ा, गौरी, रामकोरी, दापिका, आसावरी, विभाषा, वडारी और गड़ा यह वीर में, शेष शृंगार रस में गाना। वैसे ही मालव, श्री, हिल्लोल और मल्लार शृंगार में और वसन्त और कर्णाट वीररस में गाना। यह पूर्वोक्त अन्य मत दक्षिण में प्रचलित हैं इधर नहीं। कहते हैं कि शिव, शारद, नारद और गन्धर्व यह चार मत पृथक हैं। इधर हनुमत् और भरत मत मिल के प्रचलित हैं। हनुमत् मत से प्रथम राग भैरव, उस का स्थान महादेवजी की भांति उत्पत्ति शिवजी के मुख से, जाति उड़व अर्थात धनिसगम, यह पंचस्वर, गृहधैवत, गाने का समय शरतऋतु में प्रातःकाल, भैरवी, बंगाली, बगरी, मधुमाधवी और सिंधवी यह पांच रागनी, हर्ष, तिलक, सूहा, पूरिया, माधव, बलनेह, मधु और पंचम ये आठ पुत्र। कलानाथ-मत से यह चतुर्थराग, इसकी भैरवी, गुर्जरी, भासा, बेलावली, कर्णाटी और बड़हंसा यह छह रागिनी, देवशाख, ललित, मालकोस, बिलावल, हर्ष, माधव, बलनेह, और मधु ये आठ पुत्र। सोमेश्वर-मत से भैरवी, गुनकली, देवा, गूजड़ि, बंगाली और बहुली ये छह रागिनी और गाने का समय ग्रीषम। भरत-मत से ललिता, मधुमाधवी, बरारी, बाहाकली और भैरवी यह पांच रागिनी, देवशाख, ललित, बिलावल, हर्ष, माधव, बंगाल, विभाव और पंचम ये आठ पुत्र, सूहा, बेलावली, सोरठी, कुंभारी, अंदाही, बहुलगूजरी, पटमंजरी, मिरवी यह आठ पुत्र-भार्या, मतान्तर से भैरवी, बंगाली, बैरागी मध्यमा, मधुमाधवी और सिंधवी यह छह रागिनी, कोशक, अजयपाल, श्याम, खरताप, शुद्ध और टोल यह छह पुत्र, अष्टी, रेवा, बहुला, सोहिनी, रामेली और सूहा यह छह पुत्रवधू। सब मतों से रागों का परस्पर भेद दिखा कर अब केवल प्रसिद्ध हनुमत् और भरत मत सब रागों का वर्णन करते हैं। मालकोस भरत मत से दूसरा राग है, विष्णु के कंठ से निकला है, सम्पूर्ण जाति, स्वर सातो सरिगमपधनि, गृह षड्ज स्वर, शरद्ऋतु में पिछली रात को गाने का समय, ध्यान युवा गौर पुरुष, इसकी रागिनी हनुमत् मत से यथा—टोड़ी, गुनकली, गौरी, खम्भावती और ककुभ, आठ पुत्र यथा मारू, मेवाड़, बड़हंस, प्रबल, चन्द्रक, नन्द, भ्रमर और खुखर। भरत मत से गौरी, दयावती देवदाली, खम्भावती और ककुभ रागिनी, और गान्धार, शुद्ध, मकर, त्रिछन, महाना, शक्रवल्लभ, माली और कामोद पुत्र, घनाश्री, मालश्री, जयश्री, सुधवारी, दुर्गा गान्धारी, भीमपलासी और कामोद, आठ पुत्र भार्या। हिंदोल भरत मत से द्वितीय और हनुमत् से तृतीय राग है, उत्पत्ति ब्रह्मा के शरीर से, जाति उड़व, स्वर सगमपध पांच, गृह षड्ज, गान समय वसन्त ऋतु दिन का प्रथम भाग, ध्यान स्वर्ण वर्ण हिंडोले पर झूलता हुआ। हनुमत् मत से रागिनी रामकली, देशाखी, ललिता, बेलावली और पटमंजरी,

पुत्र चन्द्रबिम्ब, मंडल, शुभ, आनन्द, विनोद, गौर प्रधान और विभास। भरत मत से रागिनी रामकली, मालावती, आशावरी, देवारी और गुनकली, पुत्र वसन्त, मालवी मारू, कुशल, लंकादहन, बखार बन्ध, नागधुन और धवल, पुत्रवधू लीलावती, कैरवी, चैती, पारावती, पूरबी, तिरवरी, देवगिरि और सुरमती। दीपक हनुमत् मत से दूसरा और भरत मत से चतुर्थराग, सूर्य के नेत्र से उत्पत्ति, जाति सम्पूर्ण, स्वर सरिगमपधनि सात, गृह षड्ज, गाने का समय ग्रीष्म का मध्याह्न, हाथी पर सवार वीरवेष। हनुमत् मत से रागिनी इस की देसी, कामोद, केदार, कान्हरा और कर्नाटी, पुत्र कुन्तल, कमल, कलिंग, चम्पक, कुसुंभ; राम, लहिल और हिम्माल। श्री राग दोनों मतों से पांचवां राग, जाति सम्पूर्ण, सात स्वर सरिगमपधनि, गृह षड्ज, समय हेमन्त की सन्ध्या, ध्यान सुन्दर सिंहासनारूढ़ पुरुष। हनुमत् मत से रागिनी मालश्री, मारवा, घनाश्री, वसन्त और आशावरी, पुत्र सिन्धु, मालव, गौड़, गुनसागर, कुम्भ, गम्भीर, संकर और विहाग, भरत मत से रागिनी सिंघवी, काफी, देसी, विचित्रा और सोरठी, पुत्र श्री रमण, कोलाहल, सामन्त, संकर, राकेश्वर, खट, बड़हंस और देसकार (मतान्तर से हम्मीर और कल्याण भी), पुत्र भार्य्या कुम्भा, सोहनी, शारदा, ध्याया, शशिरेखा, सरस्वती, क्षमा और बैया। मेघ दोनों मत से छठा राग, ध्यान श्यामरंग, शोणित खड्ग हस्त, जाति उड़व, पंचस्वर यथा ध नि स रि ग, गृह धैवत, गान समय वर्षा की रात्रि, रागिनी टंक, मदपारी, गूजरी, भूपाली और देशी, पुत्र जालन्धर, सार, नटनारायन, शंकराभरण, कल्याण, गजधर, गान्धार और सहान, भरत मत से पांच रागिनी मलारी, मुलतानी, देसी, रतिवल्लभा और कावेरी, पुत्र यथा कलायर, नागेश्वरी, सहाना, पूरिया तिलक, कान्हरा, स्तम्भ, शंकराभरण, पुत्र-वधू यथा कर्नाटी, कादवी, ककल्लनाट, पहाड़ी, मांझ, परज, नटभंजी, शुद्ध नट। यह छह रागों का वर्णन हुआ। अब और बातों का भी वर्णन करते हैं।

मूर्च्छना वह वस्तु है जो खरज से ऋषभ तक पहुंचने में जहां स्वर बदलैगा वहां लगै। यह तो हनुमत् मत से है। भरत मत से स्वरों के गान में गले का कंपाना मूर्च्छना है। और मतों से ग्राम का सातवें भाग का नाम मूर्च्छना है। षड्ज ग्राम की मूर्च्छना, यथा ललिता, मध्यमा, चित्रा, रोहिनी, मर्तगजा, सौवीरा। मध्यम ग्राम की मूर्च्छना, यथा पंचमी, मत्सरी, मधु, मध्या, शुद्धा, अन्ता, कलावती और तीव्र। गांधार ग्राम की मूर्च्छना 7 यथा रौद्री, ब्राह्मी, वैष्णवी, स्वेदरी, सुरा, नादावती और विशाला। इन्हीं मूर्च्छनाओं का जहां शेष में विस्तार होता है उन को तान कहते हैं। वे 49 हैं। इन्हीं में स्वरों के मेल से कूटतान होती हैं। इन मूर्च्छनाओं के जनक तीन ग्राम हैं—षड्ज, मध्यम, गांधार। इन तीन ग्रामों में पूर्व्व दो पृथ्वी पर और अन्त का स्वर्ग में गाया जाता है।

श्रुति वह वस्तु है जो स्वरों का आरम्भ करती है और सूक्ष्मरूप से स्वरों में व्याप्त रहती हैं। ये 4 षड्ज में, 3 ऋषभ में, 2 गान्धार में, 4 मध्यम में, 4 पंचम में, 3 धैवत में, 2 निषाद में, यही 22 श्रुति हैं। कोमल, अति कोमल, समान, तीव्र,

तीव्रतर से रीति रागों में यथा रीति सुर बरते जाते हैं और जहां सूक्ष्म और स्फुट स्वर लगते हैं वहां काकली कहलाती हैं। लोगों का चित्त रंजन करते हैं इस से इनकी राग संज्ञा है और जहां राग रागिनियों के ध्यान रूप क्रिया आदि लिखे हैं, उन का आशय यह है कि वैसे अवसर पर वे राग योग्य होते हैं। जैसे भैरवी का ध्यान है कि स्वेत वस्त्र सबेरे शिव पूजन करती है, तो जानो कि ऐसे ही सबेरे शिव पूजन के अवसर में इस का गाना उत्तम है।

हमारे प्रबन्ध के पढ़नेवालों को एक ही रागिनी का नाम बारम्बार कई रागों में देख कर आश्चर्य्य होगा। इस में हमारा दोष नहीं, यह संगीत शास्त्र के प्रचार की न्यूनता से ग्रन्थों में गड़बड़ हो गई है। कोई अन्वेषण करने वाला हुआ नहीं, जो ग्रन्थकारों को मिला वा उन्होंने सुना लिख दिया। यह तो जब अपने गले वा हाथ से करता हो और ग्रन्थों को भी जानता हो वह एक बेर निर्णय कर के लिखै तब यह सब ठीक हो जाय।

ताल। समय का सूक्ष्म से सूक्ष्म और बड़ा से बड़ा समान विभाग ताल है। विचार कर के देखो तो छन्दों की प्रवृत्ति भी ताल ही से होगी। एक गिरह की लकीर खींचो तो इस बिन्दु से लकीर के उस बिन्दु तक उंगली ले जाने में जो काल लगैगा वह ताल ठहरा और उसी गिरह भर के बाल बराबर मोटे जितने सूक्ष्म भाग हैं उन के प्रति भाग पर जो काल लगा वह भी ताल है। पर ऐसे सूक्ष्म और ऐसे गुरु जिनके बरताव में काल का स्मरण न रहै वह कुछ काम नहीं आते। सिद्धान्त यह कि गाने के अनुकूल समय का विभाग ही ताल है। नृत्य, गान वा वाद्य को नियमित काल से उठाना, नियमित काल पर समाप्त करना। उसी नियमित काल को अनेक समान भागों पर बांट देने की जो क्रिया है वह ताल है। महादेवजी के नृत्य तांडव और पार्वतीजी के नृत्य लास्य का प्रथमाक्षर लेकर ताल शब्द बना है, वा तल नाम हाथ की हथेली वा पद-तल इस का भाव ताल है; क्यौंकि प्रायः ताल विन्यास हाथ वा पैर ही से होता है। तालों के बनाने को चार मात्रा की कल्पना है, एक नियमित काल की मात्रा होती है अर्द्धमात्रा की द्रुत, एक मात्रा की लघु, दो मात्रा की गुरु और तीन मात्रा की लुप्त संज्ञा है। चंचतूपुट, चारुपुट, चारुपुट इत्यादि साठ ताल के मुख्य और एक सौ एक गौण भेद संगीतदामोदर वाले शुभंकर ने किए हैं। इन चार मात्राओं पर अंगुल्यादि से संकेत कर के ये ताल बनते हैं और इन्हीं मात्राओं को जहां बीच बीच में छोड़ देते हैं और काल के समाप्त का चिह्न बीच में नहीं करते फिर दूसरे तीसरे इत्यादि पर चिह्न करते हैं तो उस बीच में छूटे हुए काल में जहां नियमित मात्रा समाप्त होती हैं पर प्रकट नहीं की जातीं उसे वा खाली कहते हैं। एक नियम काल कल्पित मात्रा के ताल समाप्त होने पर फिर से वही ताल आरम्भ करने को इन दोनों की मित्रतासूचक जो बीच का एक नियमित समान काल है वह भी ख अर्थात खाली कहलाता है। चंचतूपुट ताल में दो गुरु एक लघु और एक प्लुत

हैं, एक गुरु लघु और प्लुत चारुपुट में हैं, ऐसे ही सब तालों का प्रस्तार है। जहां मात्रा के काल अनुसार तान की समाप्ति होती है उस को सम कहते हैं। इन चौंसठ तालों के अतिरिक्त आठ अष्टताल, ग्यारह रुद्रताल, चार ब्रह्मताल और चौदह इन्द्रताल हैं। रुद्रताल का प्रथम भेद वीर विक्रम यथा एक मात्रा एक शून्य ऐसी तीन आवृत्ति फिर दो ताल यह वीर विक्रम हुआ। ऐसे ही सब ताल यथा मात्रानुसार जानो। आज कल प्रसिद्ध ताल चौताला, तिताला, एकताला, आड़ा, रूपक, झपताल इत्यादि हैं।

संगीत के पूर्वोक्त तीन भेद अर्थात स्वर, राग और ताल गले के अतिरिक्त वाद्यों से भी सम्पादित होते हैं, अतएव अब वाद्यों का वर्णन करते हैं। बाजों के चार भेद हैं, यथा तत, सुशिर, आनद्ध और घन। नए मत से अर्थात कालानुसार दो भेद और कर सकते हैं, यथा समष्टि और स्वयं वह। तार से जो बजैं वह तत यथा वीणादिक। फूंकने से बजैं वह सुशिर यथा वंशी इत्यादिक। चमड़े से मढ़े हों वह आनद्ध यथा मृदंगादिक। कांसादिक से जो ताल सूचक हों वह घन यथा झांझ आदिक। ये चारों वा तीन वा दो जिसमें मिले हों वह समष्टि यथा हारमोनियम आदि और जो ताली इत्यादि से बजैं वह स्वयं वह यथा अरगन आदि। ये सब वाद्य तीन भेद में विभक्त हैं यथा स्वर वाही, ताल वाही और उभय वाही। तम्बूरादिक स्वर वाही, झांझ इत्यादि ताल वाही, वीणादिक उभय वाही। इन चारों में तत में वीणा, सुशिर में वंशी, आनद्ध में मृदंग और घन में ताल (झांझ) मुख्य हैं। तत यथा अलाबुनी, ब्रह्मबीना, किन्नरी, लघुकिन्नरी, विपंची, वल्लकी, ज्येष्ठा, चित्रा, ज्योतिष्मती, जया, हस्तिका, कुब्जिका, कूर्मी, शारंगी, परिवादिनी, त्रिशरी, शतचंद्री, नकुलौष्ठी, टंसरी, उडम्बरी, पिनाकी, निबन्ध, तानपुर, स्वरोद, स्वरमंडल, स्वरसमुद्र, शुष्कल, रुद्र, गदावरण, हस्तक, विलास्य, मधुस्पन्दी और घोण इत्यादि। वीणा के तीन भेद हैं यथा वल्लकी, पंचतन्त्री (विपंची) और परिवादिनी। ध्वनिमाला, रंगमल्ली, घोषवती, कंठकूजिका और विद्युत् ये वीणा ही के नामान्तर हैं। वीणा के सात भेद और हैं यथा नारद की महती, दीव की लम्बी, सरस्वती की कच्छपी, तुम्बरू की कलावती, विश्वावसु का बृहती और चांडालों की कंडील वीना अथवा चांडाली (इस का प्रयोजन शव क्रिया के समय पड़ता था)। वीणा के अंग को कोलम्बिक, बन्धन को उपनाह, दंड को प्रवाल, बगल के काठ को ककुभ और प्रसेवक और वंशशाला, काकलिका, कूनिका, मेरु इत्यादि और वस्तुओं को कहते हैं। सुशिर यथा वंशी, मुरली, वेणु (तीनों वंशी के भेद), पारी, मधुरी, तित्तरी, शंख, काहला, तोंमड़ी, निषंग, बुक्का, शृंगिका, मुखचंग, स्वरनाभि, आवर्त्ती, शृंग, कापालिका, चर्म्मवंश, स्वरनादी (सैनाई), वक्रगला, चर्म्मदिहा और गलस्वरा इत्यादि। वेणु रक्तचन्दन, खैर, चन्दन, स्वर्ण, चांदी, तामा, लोहा और कठिन पाषाण का होता है परन्तु बांस का सब से उत्तम है। मतंग मुनि के मत से बांस ही का वेणु होता है। दस अंगुल का वेणु महानन्द, इस के ब्रह्मा देवता, ग्यारह अंगुल का नन्द इस के रुद्र देवता, बारह अंगुल का विजय इस के सूर्य्य देवता और चौदह अंगुल का जय इस के विष्णु

देवता। वंशी की फूंक में निबिड़ता प्रौढ़ता, सुस्वरता, शीघ्रता और मधुरता ये पांच गुण हैं और सीत्कार-बाहुल्य, स्तब्ध, विस्वर, खंडित, लघु और अमधुर ये छह दोष हैं। तेरह और सत्रह अंगुल की वंशी नहीं बनाना इस में आचार्य्यों ने दोष माना है। कानी उंगली जा सकै इतना बीच का छेद (पोलापन) रहै, यह छेद आर पार रहै पर सिर की ओर किसी वस्तु से अवरुद्ध वा बन्धनान्तर संयुक्त रहै, सिर से एक अंगुल वा दो अंगुल छोड़ कर स्वर का छेद करना, फिर पांच अंगुल छोड़ कर सात सुर के सात छेद आधे आधे अंगुल पर बैर के बीज के बराबर करै, दोनों ओर तार वा चर्म्मतार से वंशी को बांधे और बीच में सिक्कक (छींके) स्वर की मधुर और श्रुति उत्पन्न करने को लगावै। आयुक्ति बद्धयुक्ति और युक्ति (अर्थात् छिद्रों को बन्द करना खोलना और उस से श्रुति लय तान इत्यादि किंचित् बन्द कर के निकालना) ये तीन अंगुलि क्रिया हैं और अकम्पत्व और सुस्वरत्व ये दो अंगुली के गुण हैं। गानेवालों को सहायता देना, स्थान देना, उन के दोष छिपाना और जिन स्वरों पर गला न पहुंचै वे स्वर निकालने ये चार इस में लाभ हैं। भगवान की तीन वंशी हैं यथा घर में बजाने की 12 अंगुल की मुरली संज्ञक, श्री गोपीजन की बुलाने की 18 अंगुल की वंशी संज्ञक और गऊ बुलाने की एक हाथ की वेणु संज्ञक। इस से ज्ञात होता है, वेणु का प्रमाण एक हाथ तक है। आनद्ध में मर्दल, अर्द्ध मर्दल, मर्दल खंड, ढलक, मुरज, ढका, पटह, बिबक, दर्पवाद्य, पवन, घन, रंच, कलास, विकलास, टाकली, अर्द्धटाकली, जिलाट, कलिका, गो, मुद्री, अलाबुज, लावज, त्रिवल्य, कठ कमठ, भेरी, हुडुक्क, कुडुक, झनस, मुरल, भल्ली, दुकुल्ली, दौंडिशान, डमरू, तुम्बुर, टमुकिड्डु, कुंडली, स्तंक, अभिघट, रज, दुन्दुभी, टूटुकी, ददुर, उपांग, खंजरीट और करचंग ये सब हैं। इन में मर्दल (मृदंग) श्रेष्ठ है। मर्दल खैर के काठ का अच्छा होता है। चमड़े की डोरी से मेरु संयुक्त कर के दोनों मुंह मढ़ा कर कसना। मढ़ने के पीछे छह महीने तक न बजाना। काठ का दल आध अंगुल मोटा हो और बाईं पूरी दस वा बारह अंगुल चौड़ी हो तथा दाहिनी उस से एक वा आधी अंगुल छोटी हो। बाईं ओर तो पिसान की पूरी चिपकाना ओर दाहिनी और खरली (खली) की पूरी लगा के सुखा देना। वह खरली—राख, गेरू, भात और केंदुक (गालव, शायद भाषा में केंदुआ कहते हैं) की हो वो चिपीटक (चूड़ा?) में जीवनीसत्व (?) मिला कर लगाना। मट्टी का हो तो मृदंग कहलाता है। इस में पाट, बिधि पाट, कूटपाट और खंड पाट ये चार प्रकार के वर्ण हैं और यति, उड़व, अवच्छेद, गजर, रूपक, ध्रुव, गलप, सारिगोनी, नाद, कथित, प्रहरन और वृन्दन ये बारह प्रबन्ध हैं धन में करताल, कांस्यताल, कम्बिका, जयघंटा, शुक्तिका, पटवाद्य, पट्टातौघ, घर्घर, दंदा, झंझा, मज्जीर, कर्तरी, उंकुर, काष्टताल, प्रस्तरताल, इंतताल, जलतरंग, तालतरंग, पात्रतरंग, त्रिकोणघंटा, डोलक इत्यादि हैं। घन के दो भेद हैं। अनुरक्त वह जिन में गीतों का अनुगमन हो और विरक्त वह

जो केवल ताल दें। लड़ाई में वीरों का गर्जन और ये चार वाद्य बजते हैं, इस से लड़ाई की पंचवाद्य संज्ञा है। यह वाद्यों का साधारण वर्णन हुआ। ऐसे ही अननिगती वाद्य हैं, जो अबनाम मात्रावशेष हैं। उन के रंग रूप की किसी को खबर नहीं।

संगीत का चौथा अंग नृत्य है। ताल, मान, रस, भाव, हास, विलास, वाद्यादि संयुक्त अंग विक्षेप का नाम नृत्य, इस के दो भेद तालाश्रित नृत्य और भावाश्रित नृत्य। नृत्य मधुर हो तो लास्य और उत्कट हो तो तांडव कहलाता है। तांडव के परेली और बहुरूप ये दो भेद हैं। जिस में अंग बहुत चलैं पर अभिनय थोड़ा हो वह परेली, इसी की देशी भी संज्ञा है। जहां अभिनय बहुत हो और रूपान्तरधारण इत्यादि क्रिया हो वह बहुरूप। लास्य के छुरित और यौवत दो भेद हैं। जहां नायिका-नायक रसपूर्वक भाव परस्पर दिखाते, चुम्बन इत्यादि करते नृत्य करैं वह छुरित और जहां नटी वा नटी, वेषधारी सुन्दर पुरुष नाचें वह यौवत। हाथ-पैर-सिर-नेत्र का चलाना, मुड़ना, फिरना, भाव, कमर लचकाना, घुंघरू बजाना, गाना, वस्त्र उठाना और घूमना इन सब नृत्य के अंगों में जिस को अभ्यास न हो और जो सुन्दर न हो वह न नाचै। अलागलाग, उरपतिरप, लगडांट, लहाछेह, घट बढ़ और संकोचन-प्रसारन ये नृत्य के काम हैं और शिव-नृत्य, मयूरनृत्य, रास नृत्य, कुक्कुटनृत्य, मंडूकनृत्य, बलाकानृत्य, हंसनृत्य, कर्त्तव्यनृत्य, मंडलनृत्य, युगलनृत्य, एकहाज्ञनृत्य, आलातचक्र, कलानृत्य इत्यादि नृत्य के और अनेक भेद हैं।

संगीत का पांचवां अंग भाव है। निर्विकार चित्त में प्रीतम वा प्रिया के संयोग वा वियोग के सुख वा दुःख के अनुभाव से जो प्रथम विकार हो वह भाव है। उसी का अनुकरण नृत्य में करना भावक्रिया है। हंसना, रोना, उदास होना, प्रसन्न होना, व्याकुल होना, छकना, मत्त होना, बुलाना, प्रणाम करना इत्यादि क्रिया को गीत अर्थ के अनुसार प्रत्यक्ष दिखाना भाव है। भाव के चार भेद हैं, यथा स्वर, नेत्र, मुखाकृत और अंग। स्वर से दुःख, सुख इत्यादि का बोध कराना स्वर भाव है। यह बहुत कठिन है क्योंकि गाने के स्वरों का व्यत्यय न होकर भाव पगट हों यह कठिन बात है। नेत्र ही से सब बातों का बोध हो और अंग न चलैं, वह नेत्र भाव है। यह भी कठिन है पर तादृश नहीं परन्तु इस में नेत्र ही से हंसी प्रगट करना वा अनायास आंसू बहाना कठिन काम है। मुख की चेष्टा ही से भाव प्रगट करना मुखाकृत भाव है, अर्थात कोई अंग न हिलै, भौं-नेत्र इत्यादि यथा स्थान स्थित रहैं और भाव चेष्ट से प्रगंट हो, यह भी बहुत कठिन है। अंग अर्थात नेत्र हाथ इत्यादि अंगों में भाव बताना अंग भाव है। यह औरों की अपेक्षा सहज है। नृत्य वा गीत में इन में से एक वा दो वा तीन वा चारों साथ ही किए जाते हैं। भाव रसज्ञता जितनी विशेष होगी उतने ही अच्छे होंगे क्योंकि अनुभवगम्य हैं।

संगीत का छठा भेद कोक अर्थात नायिका, नायक, रस, रसाभास आलम्बन,

उद्दीपन, अलंकार, समय, समाज इत्यादि का ज्ञान कोक है। यह साहित्य ग्रन्थों में सविस्तर वर्णित है इस से यहां नहीं लिखते। इस का जानना संगीत वाले को अवश्य क्यौंकि भाव और नृत्य में इसके बिना काम नहीं चलता।

सातवां भेद हस्त है। नाचने गाने वा बताने में हाथ चलाना हस्त है। इस के दो भेद हैं, एक लयाश्रित दूसरा भावाश्रित। प्रायः यह नृत्य और भाव के अन्तर्गत ही आता है, इसकी कोई विशेषता नहीं।

पूर्वोक्त सातों अंग की समष्टि का नाम आदि संगीत-दामोदर, संगीत-कल्पतरु, संगीतसार इत्यादि ग्रन्थों से चुन कर और अपनी जानकारी के अनुसार भी ये बातें यहां लिखी गई हैं। इस को लिख कर प्रकाश करने में हमारा कुछ प्रयोजन है। शास्त्र दो प्रकार के होते हैं। एक अदृष्टवाद दूसरे दृष्टवाद। अदृष्टवाद परलोक इत्यादि के मत में मनुष्य को तर्क छोड़ कर केवल शास्त्र अवलम्बन करना चाहिए। दृष्टवाद में शास्त्रों के और बुद्धि के तथा अपने और दूसरों के अनुभव के विरुद्ध जो बात हो वह माननी चाहिए। संगीत शास्त्र के और अपने मत के अविरुद्ध मनुष्य को बरतना उचित है। अब देखिए कि संगीत की क्या दशा हो रही है। कितनी रागिनियों का गाना कौन कहे किसी ने नाम भी नहीं सुना है। कितनी मत भेद से दो दो चार चार रागों की रागिनी हैं, यह क्या? केवल अन्ध परम्परा। हम यह पूछते हैं कि प्रथम गाने में चार मत होने ही का क्या प्रयोजन है? एक भैरव राग सारा संसार एक स्वर-क्रम और रीति से गावै, यदि कहीं मतों के भेद से चारों भैरव में भेद है तो उस में एक को भैरव सिद्ध रक्खो बाकी या तो किसी दूसरे राग में आप ही मिले निकलैंगे, यदि न मिले निकलैं, उनका दूसरा नाम रक्खें। ऐसे ही हजारों बातैं हैं, कोई बंधा हुआ नियम नहीं। जितने इस विद्या के जानने वाले हैं, अपने अभिमान में मत्त हैं। कोई ऐसा नियम नहीं कि जिस के अनुसार सब चलैं। यही कारण है कि रागों के पत्थर पिघलने इत्यादि प्रभाव लोप हो गए। हा! किसी काल में इस शास्त्र का ऐसा कठिन नियम था कि पुराणों में बराबर लिखा है कि ब्रह्मा ने अमुक गन्धर्व को ताल से वा स्वर से चूकने से यह शाप दिया। शिवजी ने यह शाप दिया, इन्द्र ने यह शाप दिया, वही संगीत शास्त्र अब है कि कोई नियम नहीं। शास्त्र असिल सब डूब गए। कुछ जैनों ने नाश किये, कुछ मुसलमानों ने। मुसलमानों में अकबर और मुहम्मदशाह को इस का ध्यान भी हुआ तो बड़े बड़े गवैये मुसलमान बनाए गए, जिस से हिन्दुओं का जी और भी रहा सहा टूट गया। चलिए सब विद्या मिट्टी में मिली। इस में मुख्य कारण यही हुआ कि केवल गुरुमुख श्रुति पर यह विद्या रही। किसी ने कभी इस को ऐसी सुगम रीति पर न लिखा कि उसे देख कर वही काम दूसरे कर सके। धन्य! राजा यतीन्द्रमोहन ठाकुर और शौरीन्द्रमोहन ठाकुर, जिन्होंने इस काल में इस विद्या की बड़ी ही वृद्धि की। श्रीक्षेत्रमोहन गोस्वामी ने इस विषय में नियम भी बनाए हैं और बाबू कृष्णधन बनर्जी ने एक सितार शिक्षा भी छपवाई है। उधर के लोगों ने

इस विषय में बहुत कुछ किया है पर इधर अभी कुछ नहीं हुआ। हमारे काशी के बाबू महेशचन्द्रा देव ने सितार, बीन और तानपूरा बनाने में जैसे परिश्रम कर के खूंटी, तूमा, इत्यादि में नई उपयोगी बात निकाली हैं वैसे ही और सब जान कर लोग मिल कर एक बेर इस लुप्त हुए शास्त्र का भली भांति मन्थन कर के इस की एक सनियम उज्ज्वल परिपाटी बना डालैं। नहीं तो यह शास्त्र कुछ दिन में लोप हो जायगा। और हमारे हिन्दुस्तानी अमीरों को चाहिए कि वारबधू के मुखचन्द्र के सुन्दरता ही पर इस विद्या की इति श्री न करैं, कुछ आगे भी बढ़ैं। हम ने इस में जो बातें लिखी हैं उन को सब के खंडन मंडन-पूर्व्वक निर्णय करने के वास्ते यहां प्रकाश करते हैं। जो लोग जानकार हैं वे आनन्द से जो इस में अयोग्य हो उस का खंडन करैं, जो बात हमारे समझ में न आई हो उसे समझावैं और जो योग्य हो उस का अनुमोदन करैं। इस विषय में जो कोई पत्र भेजैगा उसे हम बड़े आनन्दपूर्व्वक प्रकाश करैंगे। आशा है कि हमारा परिश्रम व्यर्थ न जायगा और इस विद्या के रसिक लोग हमारी बिनती के अनुसार इस के उद्धार का उपाय शीघ्र ही करैंगे।

[हरिश्चन्द्र चन्द्रिका खंड-2, संख्या 8, सितम्बर, 1875 में प्रकाशित]

ग्रीष्मऋतु

अहाहा! यह भी कैसी भयंकर ऋतु है 'ग्रीष्मोनामर्तुरभवचातिप्रेयोंच्छरीरिणं' इस में प्रचंड मार्तंड अपनी घोर किरणों से स्थावर जंगम और जल सब का रस खींच लेता है, जीते ही सब जीव निर्जीव हो जाते हैं। जीवन केवल जीवन में आ अटकता है और वह जल भी इस उग्र सूर्य्य से इस ऋतु में इतना डरता है कि प्रायः छोटी नदी और छोटे सरोवर तो शुष्क ही हो जाते हैं, कुओं में यद्यपि जल इतने नीचे छिपा रहता है कि सूर्य्य के दुखदायी किरण वाण वहां न पहुंचे तौ भी मारे डर के थर थर कांपता है। पर देखो शत्रु के घर में कैसे भी बलिष्ठ फंस जाता है तो शत्रु निर्बल होने पर भी अपना दाव लिये बिना नहीं छोड़ते, इन्हीं सूर्य्य की खरतर किरणों को जब जल अपने तरंग भुजाओं से पकड़ लेता है तो टुकड़े टुकड़े कर इधर उधर बहा देता है और जब अपनी किरणों का अपने सामने हजारों टुकड़े, होना देखता है तो सूर्य्य भी जल में थरथर कांपता है; मत्स्य, कच्छ इत्यादि जीव गरमी के मारे भीतर से उबल उबल कर ऊपर उछले पड़ते हैं और ऊंट, भैंस, सूवर इत्यादि स्थल के पशु भी जल में जा बैठते हैं; हंस, बगले, बतक, जलकुक्कुट, पनडुबियां और चकई चकवे पक्षी हो कर भी इस ऋतु में शुद्ध जलचर जान पड़ते हैं; अन्न का आदर घट जाता है, शान्ति केवल जल में होती है, स्त्रियों को यद्यपि सहज ही वस्त्राभूषण से बहुत प्रीती है, परन्तु इस ऋतु में वे भी उन्हें उतार उतार के फेंक देती हैं और बन की भीलिनों की भांति फूल पत्तों ही में अपने को सज बज कर प्रीतम की बड़ी प्यारी भुआओं को धर्म्म के भय से बारम्बार कंठ पर धरती और उतारती रहती है काशी से प्रस्तरमय नगर का तो कुछ पूछना ही नहीं घर सब तनदूर हो जाते हैं छत के पत्थरों को चन्द्रमा अपनी शीत किरणों से प्रातःकाल के वायु से भी सहायता लेकर नहीं ठंड़ा कर सकता। यदि किसी छोटी खिड़की के पास मुंह ले जाओ तो अजगरों की श्वास और लोहारों की धौकनी के सामने बैठने का आनन्द मिलता है, यद्यपि नीची गलियों में सूर्य्य की उल्वण किरणें नहीं पहुंचतीं तौ भी वे उन संतप्त गृहों के संताप से ऐसी संतप्त हो जाती हैं और उमस जाती हैं कि संकेत बदे हुए नायिका नायकों के अतिरिक्त जिन का ऐसा प्राणों का शत्रु सूर्य्य भी शरदृऋतु के चन्द्रमा सा आनन्ददायक होता

है, एक 'चिड़िया का पूत' भी नहीं रहता, पृथ्वी तवा सी संतप्त हो जाती है, लोग तहखानों में, वृक्षों की छाया में, टट्टियों की आड़ में, पौसरों में, जलाशयों के निकट और छाया के स्थानों में दिन भर अधमरे से पड़े रहते हैं, और अपने इस दिन पर वियोगिनियों की रातें निछावर किया करते हैं। गऊ, घोड़े इत्यादि घरैले पशु और सुग्गा, कौआ इत्यादि पक्षी भी व्याकुल होकर हांफा करते हैं और दीन कुत्ते तो साहिब मजिस्ट्रेट की आज्ञा से भी विशेष चुस्त होकर जीभ निकाले दुम दबाए इधर-उधर आकुल हो दौड़ा करते हैं कहीं शरण नहीं मिलती, जहां कहीं पौसरों का पानी गिरा रहता है या पनघट होता है वहां घड़ी दो घड़ी पड़े रह कर कुछ विश्रामाभास कर लिया करते हैं वायु का प्राण नामकरण इसी ऋतु में हुआ होगा; पंखे लोगों के ऐसे मित्र हो रहे हैं कि क्षणभर भी नहीं छूटते धनवान लोग खसखानों में थर्मेन्टीडोट के सामने बर्फ का पानी पिया करते हैं परन्तु धनहीन लोगों को तो किसी प्रकार से भी इस ऋतु में सुख नहीं मिलता कबूतर के दरबे की भांति किराये के घरों में कलौजी से कसे सड़ा करते हैं और वायु के स्वच्छ न रहने से अनेक रोगों से भी पीड़ित रहते हैं, रेल पर जाने वाले पथिक कपड़ा पहिने बोझे से लदे सिपाहियों का धक्का खाए रुपया गवाए भूखे प्यासे बिना नहाये धोये गाड़ी की कोठड़ियों में अचार के मटके में पसीने से पसीने नमकीन नीम्बू से ठसे जीसे खट्टे होने के धूप में तपाये जाते हैं, और उस में भी जब गाड़ी स्टेशनों पर पानी लेने को खड़ी हो जाती है तब तो संयमिनी से यमराज आकर अपने शतावधि नरकों को एक एक कोठरियों पर न्योछावर कर के फेंके देते हैं क्योंकि चलने में तो कुछ हवा लगती भी है पर रुक जाने से तो ट्रेन की ट्रेन कलकत्ते की हो जाती है पहिले तो प्रायः अधिक पथिक बेसुध पड़े रहते हैं और यदि कभी चौंक उठते हैं तो केवल पानी पानी का शब्द उन के मुख से सुन पड़ता है। जैसे बहेलिए के पिटारियों में वारे फेरे की सिरोहियां कसी रहती है वही दशा इन जात्रियों की होती है। यद्यपि यमलोक और रेललोक की यात्रा को साथ ही प्रस्थान करते हैं पर न जानै किन पुन्यों से वे बच कर घर पहुंचते हैं।

बन और पहाड़ों की भी यही दशा है, हिरने चौकड़ी भूले मृगतृष्णा के पीछे दौड़ते फिरते हैं मोर मुंह खोले इधर से इधर दौड़ते हैं छोटी छोटी चिड़ियां तो भुन भुन के डाल पर से नीचे गिर गिर पड़ती हैं, सिंह तराइयों में से सिकार देख कर भी नहीं उठते; पर्व्वत अंवा से हो जाते हैं, वृक्ष सब मुरझाए हुए, दूब सूखी हुई, कहीं कोकिल और कठफोड़वा के शब्द कान में पड़ते हैं कहीं पनडुब्बी बोलती है, जहां कहीं सोते वा झरने वा कुंड वा झील होती है वहां चारों ओर जीवों का झुण्ड घिरा रहता है ऐसे कठिन और भीषण ग्रीष्म ऋतु में भी जो भी वृन्दावन की लीला में भींगे रहते हैं और प्रेम में जिनके, नेत्र से फुहारे चलते हैं वे शीतल चित्त रहते हैं क्योंकि सच 'वृन्दावन गुणैर्वसन्त इव लक्ष्यते' यह लिखा है, वही ग्रीष्म ऋतु

श्री वृन्दावन में बसन्त-सा ज्ञात होता है जिस का पाठक जनों को इस पत्र के सम्पादक के पिता के इस ग्रीष्म वर्णन से स्पष्ट अनुभव होगा।

॥बरवै॥

व्यापी कछु कछु गरमी माधव मास।
रचहिं फूल को बंगला तिय सहुलास॥

॥कवित्त॥

गोपिन बनायो छायो सरस सुवासन सों इन्द्र हू न पायो मन भायो जाकी तूल को।
चम्पक चमेली बेला बेलिन के वृंद बने नलिन को कलस अलिन मन भूल को॥
गिरिधरदास बैठे गिरिधर लाल जामै धन सम अंगरंग विज्जु सो दुकूल को।
कालिन्दी के कूल को करन सुख मूल को हरन दुख सूल को वन्यो मकान फूल को॥

॥बरवै॥

इमि फूलन को बंगला विरचहिं बाल।
करहि सिंगार फूल को गिरिधर लाल॥

॥कवित्त॥

करन मैं करना को सोहत करन फूल बेलन की बेलन की सारी छवि धरती।
मोतिया की मोती नथ मनमथ चापमी मैं मौलसिरी माला नौलसिरी कंठ भरती॥
गिरिधरदास चम्पाकलिन की चम्पाकली जुही औलि जुही गोपमनि ओप हरती।
तेरे करवीर करवीर को कंगन चारु पंकज की पायजेब पायजेब करती॥

॥दोहा॥

इमि विहरत बैसाख हरि लीने राधा बाल।
करुनासिन्धु मनोज बपु ओज भरे गोपाल॥
वृन्दावन आवत भई ग्रीष्म रितु अति ताप।
तदपि विपिन पर भाव सों होति न भीसम दाप॥

॥कवित्त॥

परम प्रचंड मारतंड को तपत तेज मंडित अखंड रज अवनि आकास पर।
पावक सो पौन कै घमंड नवखंड छायो दिवस निहारी भीति होहिं सबै नारि नर॥
गिरिधरदास पात पात के भए के वृच्छ ईंधन से दरसें दवागिनि दुखदतर।
ग्रीषम महीप महा भीसम के राज बीच मृग मृगराज हैं सभीसम प्रताप डर॥

॥नरेश छन्द॥

लखि ग्रीषम कौं इमि नागरी।
कमला सम रूप उजागरी॥
इमि बोलहिं बैन खुसी भरी।
लखुरी रितु ताप करी खरी॥

॥कवित्त॥

जीवन न सोखै निज जीवन कों सोखति है सूरन तपत यह विरह प्रकाम है।
धूर नहि छाई ए विकल्प मनहीं के सब रति ना घटति यह तन रति नाम है॥
गिरिधरदास है न लौर सी लुआर घोर सांम याहि जानौ जातें उपजति त्रास है।
मृगना दुरे हैं ए मनोरथ दुरे हैं सब ग्रीषम नहीं कोऊ वियोगिनि को वास है॥

॥दोहा॥

अति प्रफुलित रितु राज तरू लखि मन अमह सुभाव।
ग्रीषम दहत दवागि निमि वृच्छन तेज प्रभाव॥
फूलि फूलि विरहिनि बधी बहु बसन्त गुनि ताहि।
मनहुं पराछित करत हैं तरू दवागि तन दाहि॥
संगी गुन रंगी सुमति गिरिधरदास उदोत।
वृष सवार से दुसह रवि वृष सवार स्वै होत॥
बहुधा लखिय दवागि बन रितु पति बिछुरन जागि।
जब तब जाहिर होति जनु ग्रीषम उर विरहागि॥
जल रितु आवति देखि जनु ग्रीषम नृपति रिसाइ।
सब जल सोख्यो जानि कै जिमि ने सकै सो आइ॥
जग जीवन प्रद होन को सहि अति आतप त्रास।
मनहु तपस्या करति हैं ग्रीषम गिरिधरदास॥
जीवन जारै जगत को बात अगिनि लौं पुष्ट।
अमन करै पटु वृन्द कों ग्रीषम कै कोउ दुष्ट॥
गरमै विग्रह ज्वाल मैं पवन धीवर दर्प।
जग जीवन नासन अहै ग्रीषम के गुरु सर्प॥
बधै जल कर पसुन बन रखै जला कर जीव।
मरे जान जहान मैं ग्रीषम माया सीव॥
तुवा मुखै जलपान बिनु पत्र विसन तन त्यागि।
ग्रीषम मनु तरु तपहि बन अति जल पत्रन लागि॥

॥सोरठा॥

ग्रीषम कै द्वै मास जेठ और अषाढ़ है।
जदपि ताप कर खास तदपि सुखद वृन्दविपिन॥

॥कवित्त॥

जगह जराऊ जामें जड़े हैं जब हिरात जगमग जोति जाकी जगलौं जमति है।
जामैं जटु जानि जान प्यारी जात... जगमुख ज्वाल... जोन्हमी जगति है॥
गिरिधरदास जोर जबर जबानी को है जोहि जोहि जलगृह जीव में जकति है।
जगत के जीवन के जीय सों जुराए जीय जोए जोपिता को जेठ जरनि जरति है॥

॥बरवै॥

जेठ मास गोपालहि ब्रज की बाल।
चन्दन चारु समरपहिं परम निहाल॥

॥सवैया॥

चादर चन्द की झीनी विनाय कै ओढ़ी अनंगनै ताप निकन्दन।
कैधौं लसै धन पावस को घनसारद औट अछोट अनन्दन॥
कैधौं सिंगार के अंग अहै लपट्यो जस ताको हरै दुख दन्दन।
कैधौं धन्यो नन्दनन्दननै जग बन्दन तो मन फन्दन चन्दन॥

॥दोहा॥

जेठ मास जमुना महं जुमना वर गोपाल।
करहिं चारु असनानहिं संग लिए व्रजवाल॥

॥कवित्त॥

राधिका लै राधिका खन चले केलिकाजै संग व्रजवाल-रूपवन्त अति पविसों।
खेलैं घनस्याम नारिमंडल मै सोभा मंडि कुंडल करन है प्रकास कर रविसों॥
गिरिधरदास भरि अंजुलि जलहि मैलैं बदनपै कुचपै कहाह किमि कवि सों।
जलसो जलज कढ़ैं जलजसो जल कढ़ैं जलज जलज पै जलहि डारैं छविसों॥
आनन अमल उडुअ धप अधिक आछो अंबुजसी अदभुत आभा ईछननि मैं।
अभय अमोल ओज आगर अनूप अति अजब उरोज अहै ईस उन्नतनि मैं॥
आछे अबलोके सों अनंग अंगना उमादि आवतिन गिरिधरदास आदरनि मैं।
अबला अनोखी ऐसी इससों उमंग सजै आयो हैं असाढ़ ओढ़े आनन्द अवनि मैं॥

॥बरवै॥

जदपि अहै यह ग्रीषम ताप निधान।
तदपि कछु वरसा समजल प्रद जान॥
मास असाढ़ प्रिया लै गोकुल राव।
करत सैर जुमना में चढि नाव नाव॥

॥कवित्त॥

सुन्दर बनावसों बनाई नाव कंचन की इन्द्रधनु तृनमस तूल जामैं भासो है।
सुखमा करन धार कालिन्दी को स्याम त्यौं करन धार ललिता ललितरूप खासो है॥
गिरिधरदास बैठे गिरिधर प्यारी मग छवि ना कहाय होत सुकवि हरासो है।
मनो मनोभव नव जान बैठावति संग सघन घटापै चढ़ो देखत तमासो है॥

[हरिश्चन्द्र मैगजीन मई 1874 में प्रकाशित]

सूर्य्योदय

देखो! सूर्य्य का उदय हो गया। अहा! इस की शोभा इस समय ऐसी दिखाई पड़ती है मानो अन्धकार को जीतने को दिन ने यह गोला मारा है, अथवा प्रकाश का यह पिंड है वा आकाश का यह कोई बड़ा लाल कमल खिला है, वा लोगों के शुभाशुभ कर्म्म की खराद का यह चक्र है, अथवा चन्द्रमा के रथ का पहिया है, घिसने से लाल हो गया है, अथवा काल के निर्लेप होने की सौगन्द खाने का यह तपाया हुआ लोहे का गोला है, अथवा उस बड़े आतिशबाज़ का, जिस ने रात को अद्भुत गंज सितारा छोड़ा था, वह दिन का गुब्बारा है वा यह एक लाल व्योमयान (बेलून) है जो समय को लिए इधर उधर फिरा करता है, वा संसारियों का दिन के काम पर जो अनुराग है यह उसका समूह है, वा पूर्व्व दिशा का माणिक्य का सीसफूल है, वा लाल खिलाड़ी का यह लाल पतंग है, वा समय रेल का आगमन सूचक यह गागे की लाल लालन है, वा उस बाजीगर का यह भी एक खेल है कि अधर में एक लाल झाड़ रौशन कर दिया है, वा काल रूपी यह कोई बड़ा गृद्ध है जो जगत को खाता चला आता है, वा उस बड़े टकसाल की यह एक अशरफी है जो चन्द्रमा ऐसे रुपये से भी दाम में सोलहगुनी है, वा समय रूपी चलान की पेटी पर यह लाह की मोहर है, वा आकाशरूपी दिगम्बर का भी मांगने का यह ताम्बे का कटोरा है, वा अंधेरे से लड़ने वाले चन्द्रमा वीर की यह खून भरी ढाल है, वा ज्योतिषियों की बुद्धि की घुड़दौड़ का सीमाचिह्न है, वा वे कितना भी गिना किए हाथ कुछ न लगा उसी की यह बिन्दु है, वा रात दिन के तौलने का तराजू का पलड़ा है, वा मजीठ का कुंड है, वा लाल पत्थर का गुम्मज है वा काल का चक्र है, वा बेलालता का यह पक्की मिट्टी का थावला है, वा जगत् के सिर का छत्र है , वा काल महाराज की सूरजमुखी है, वा संसार के सिर की वह लट्टूदार पगड़ी है, वा उस हठीले बालक के खेल का यह चकई है, जो उस की आज्ञा रूपी डोर पर ऊंची नीची हुआ करती है, वा जगत् को जगाने का नगाड़ा है, वा सब को उठते शकुन होने को यह सामने दिशा की लाल हथेली है, या उस कर्म्मकांडी का यह अग्निकुंड. जिस में नित्य वह जगत् की आयु होम करता है, वा उस मंगलमूर्त्ति की यह मंगला आरती है, वा उस दरबार के गरज देने की यह घड़ी है, वा कोई लाल आरसी सामने खड़ी है, वा उस परम प्रकाशित

भवन का एक मोखा है, वा आकाश सरोवर का यह लाल कछुवा है, वा किरणों की जाल फैलाने वाला कोई मधुवा है, जगत् को मृगतृष्णा भ्रम के जादू में फंसाने का छूमन्तर का पिटारा है, या उस कबूतरबाज़ का सुरखा लक्का कबूतर है, वा संवत जलाने वाली होली है, वा संसार का सिरमौर है, वा जगत् पर दयाल के अपार अनुराग का यह एक किनका है, वा लोगों के बुरे भले कामों के लाल बही पर लेखा लगाने की यह दवात है, वा उस के दरबार के शिखर का कलस है, वा समय की आंच में जगत पकाने का पजावा है वा वह उस भार का मुंह है जिस का संसार लावा है या होनहार की सवारी का वनाती चकडोल है, वा संसार का पानी खींचने वाला डोल है, वा दिक्कुञ्जर का रंगीन हौदा है, वा उस व्यौपारी का यह भी एक बटखरा है जिस का संसार सौदा है, वा भाग्यरूपी स्टाम्प की यह लाल मुहर है, वा काल की इस संसाररूपी रणभूमि की नदी का फेन है, वा काल सर्प का फल है, वा समयरूपी मतवाले हाथी का घंटा है, वा जगत जालसाज का मन है इसी से सारा टंटा है, वा लोगों की बुद्धि रूपी सरस्वती का कुंड है, वा काल कबन्ध का मूंड है, वा आकाश दर्पण में यह भूगोल का प्रतिबिम्ब है, वा चन्द्रमा का बड़ा भाई है, वा केसर के रङ्ग का फुहारा है, या भूगोल में जहां लाखों ग्रह पड़े हैं वहां एक यह भी छोटा मोटा लाल मण्डल है, वा पूर्व्व दिशा सोहागिन का सिन्धोरा है, वा शकुन का नारियल का गोला है, जो रोली में बोरा है, वा लोक का दीप है, वा सर्व्वदा फैसन बदलने वाले काल की चद्दरदार टोपी है, वा सच पूछो तो उस की जेबी घड़ी वरंच धरम घड़ी है, या नीलम की तख्ती पर एक चुन्नी जड़ी है, वा नभ का मुकुट है, वा आलोक का खान है, वा जगत पीसने की चक्की है, वा कपट नाटक सूत्रधार का यह भी कोई गोलमटोल लाल चेहरा है, या उस खिलाड़ी की शतरंज का कोई सुर्ख मुहरा है।

व्यंग्यप्रधान रचनाएं

लेवी प्राण लेवी

श्रीयुत लॉर्ड म्यो साहिब बहादुर गवर्नर जेनरल हिन्द ने काशी में 1 नवम्बर को एक 'लेवी' का दरबार किया था। यद्यपि 'दरबार' और 'लेवी' में बहुत भेद है पर यह 'लेवी' और 'दरबार' दोनों के बीच की अपूर्व वस्तु थी। श्री मन्महाराजाधिराज काशिराज की कोठी में इस 'लेवी' के हेतु एक डेरा दल बादल खड़ा किया गया था जो सूर्य्य नारायण और श्रीयुत लॉर्ड साहिब के तेज और प्रताप परम सुशीतल खसखाने की भांति हो गया था और गरमी भी मारे गरमी के इसी खसखाने में आ छिपी थी, डेरे के बीच में चंदवा के नीचे एक सोने की कुरसी धरी थी। नाम लिखने वाले मुंशी बद्रीनाथ फूले फाले अबा पहिने पगड़ी सजे पुराने दादुर की भांति इधर उधर उछलते और शब्द करते फिरते थे और बाबू भी वैसे ही छोटे तेंदुए बने गरज रहे थे। पहिले लोगों ने यह प्रगट किया कि जूता पहिन कर जाने की आज्ञा नहीं है। फिर कोलाहल हुआ कि चाहो जैसे आओ जिस पर भी शाहजादों के अतिरिक्त केवल चार रईस जूता पहिरे हुए थे। इतने में बंगाली बाबू सब का नम्बर लगाने लगे और पंडितों को दक्षिणा बंटने वाली सभा की भांति एक एक का नाम लेकर पुकार के बल्लमटेर की पल्टन की चाल से सब को खड़ा कर दिया। बनारस के रईस भी कठपुतली बने हुए उसी गत नाचते रहे। जब खड़े खड़े बड़ी देर हुई और पैर टूटने लगे और इस तपस्या पर भी श्रीयुत लॉर्ड साहिब के दर्शन न हुए तब राय नारायण दास आनरेरी मजिस्ट्रेट हौलदार की भांति बोल उठे 'सिट डौन' (बैठ जाओ)। सब लोग खड़े खड़े थक तो गए ही थे मुंह के बल बैठ गए परन्तु राय साहब को यह 'कवायद' कराना तभी अच्छा लगता जब उन के हाथ में एक लकड़ी भी होती। लॉर्ड साहब की 'लेवी' समझ कर कपड़े भी सब लोग अच्छे अच्छे पहिन कर आए थे पर वे सब उस गरमी में बड़े दुखदाई हो गए। जामे वाले गरमी के मारे जामे के बाहर हुए जाते थे, पगड़ीवालों को पगड़ी सिर का बोझ सी हो रही थी और दुशाले और कमखाब की चपकन वालों को गरमी ने अच्छी भांति जीत रक्खा था। सब के अंगों से पसीने की नदी बहती थी मानो श्रीयुत को सब लोग आदर से 'अर्घ्य पाद्य' देते थे। कोई खड़ा हो जाता था तो कोई बैठा ही रह जाता था कोई घबड़ा कर डेरे के बाहर घूमने चला जाता

था कि इतने में कोलाहल हुआ 'लाट साहब आते हैं'। रायनारायण दास साहिब ने फिर अपने मुख को खोला 'स्टैंड अप' (खड़े हो जाव)। सब के सब एक साथ खड़े हो गए। राय साहिब का 'सिट डौन कहना' तो सब को अच्छा लगा पर 'स्टैंड अप' कहना तो सब को बुरा लगा मानो भले बुरे का फल देने वाले राय साहिब ही थे। इतने में फिर कुछ आने में देर हुई और फिर सब लोग बैठ गए। वाह वाह दरबार क्या था। 'कठपुतली का तमाशा' था या बल्लमटेरों की 'कवायद' थी या बन्दरों का नाच था या किसी पाप का फल भुगतना था या 'फौजदारी की सजा थी'। बैठते देर न हुई थी कि श्रीयुत लॉर्ड साहिब आए और फिर सब के सब उठ खड़े हुए। श्रीमान् के संग श्री काशीराज और उनके चिरंजीव राजकुमार और बहुत से साहिब लोग थे। श्रीयुत लॉर्ड साहिब बीच में खड़े हो गए। उन की दाहिनी ओर श्री काशीराज और उन के राजकुमार शोभित हुए। पहिले तैमूर के वंशवालों की मुलाकाल हुई फिर महाराज विजयानगरम् और उन के कुंअर की। इसी भांति सब लोगों का नाम बोलते गए और सलाम होती गई। श्री महाराज वियजानगरम् की बाईं ओर खड़े हो गए थे। जब सब लोगों की हाजिरी हो चुकी श्रीयुत लॉर्ड साहिब कोठी पधारे और सब लोग इस बन्दीगृह से छूट छूट कर अपने अपने घर आए। रईसों के नम्बर की यही दशा थी कि आगे के पीछे और पीछे के आगे अन्धेरनगरी हो रही थी। बनारस वालों को न इस बात का ध्यान कभी रहा है और न रहेगा। ये बिचारे तो मोम की नाक हैं चाहे जिधर फेर दो, हाय—पश्चिमोत्तर देश वासी कब कायरपन छोड़ैंगे और कब इनकी उन्नति होगी और कब इनको परमेश्वर वह सभ्यता देगा जो हिन्दुस्तान के और खंड वासियों ने पाई है।

[कविवचन सुधा, खं. 2, सं. 5, सन 1870 ई.]

गुरु और महन्त

क्या गुरु और महन्त लोगों को यह ज्ञान नहीं कि उन के चेलों के पास द्रव्य किस किस भांति आता है निश्चय है कि नहीं जानते नहीं तो इतना अपव्यय न करते इस के दृष्टान्त अनेक प्रत्यक्ष हैं—गुरु लोगों को सोचना अवश्य है कि किसी एक ने जो आप को एक रुपया भेंट किया है वह रुपया उस ने कहीं से पड़ा पाया है वा उस की उस्में कुछ जोखिम भी लगी है। वह जानै कि वह रुपया 200 रुपये का ब्याज है अर्थात जिन के पास थोड़ा सा रुपया है और वे व्यवहार में जब दो सै की जोखिम ईश्वर के भरोसे छोड़ देते हैं तब एक महीने पीछे बीस बखेड़ा खड़ा कर के एक रुपया पाते हैं तो इस दशा में उन लोगों को उस रुपये का बड़ा आदर करना योग्य है क्यौंकि सर्व्वदा वह वस्तु आदर ही के योग्य है जो कष्ट से मिलै। परन्तु यह तो निश्चय है कि जो वस्तु बिना कष्ट के मिलती है उस का आदर नहीं होता क्यौंकि ऐसे लोग प्रायः रुपया फूंक देते हैं। हा! वह द्रव्य जो ईश्वर के हेतु और परलोक में सहायता पाने के हेतु दिया गय है उस को वेश्या या केवल घोड़े बग्गी में व्यर्थ करना कैसी अयोग्य बात है। अब मन्दिरों में सतोगुन के बदले रजोगुन और तमोगुन पूर्ण रहता है और मन्दिर वा मठ वाले अपने को हाकिम भी समझते हैं और प्रायः दर्शन करने वालों को कोड़ा मारना वा धक्का देना वा कुछ अंड बंड कह देना तो उन का साधारण धर्म्म है और स्त्री विषय का तो पूछना ही नहीं है। मन्दिर क्या होते हैं मानो स्त्रियों की खान हैं—जैसी चाहिए लीजिए—वरंच अच्छी स्त्री भी जाकर बिगड़ जाती हैं आश्चर्य्य यह है कि जिन को वे लोग बेटी कहते हैं और जो उन के परलोक के मध्यस्थ हैं और जिन को वह दीक्षा देते हैं उन स्त्रियों की ओर वे आप ही बुरी दृष्टि से देखते हैं धिक्! जब उपदेश करैंगे तब तो कहैंगे कि हम श्री कृष्ण के वा राम के वा शिव के दास हैं पर जब स्त्री एकान्त में मिलै तो हम श्री कृष्ण तुम गोपी हम राम तुम सीता हम शिव तुम पार्वती कहैंगे छिः ऐसा कहते ही उन की रसना गल क्यौं नहीं जाती क्या ऐसे लोग कभी परलोक में सहायक हो सकते हैं कभी नहीं। क्या वे लोग भगवान क दर्बार में भी जाने पावैंगे जिन के मन्दिर ही सब से उत्तम संकेत हैं। अब आजकल सब मेलों और वेश्यागारों को मन्दिरों ने जीत

लिया है जिस पुरुष की इच्छा हुई कि कुछ नेत्रों को आनन्द देना चाहिए वे मन्दिर पहुंचे—वहां बिना कुछ व्यय के रूप का खजाना खुला रहता है फिर ऐसा कौन मूर्ख है जो इस लूट से अपने को वंचित करे—वहां के सेवकों की यह दशा है कि उन्मत्त होकर निर्भय स्त्रियों के यूथ में प्रवेश करते हैं मानो वह गऊ का थोक विधाता ने उन्हीं साड़ों के हेतु बनाया है और गुरुओं की यह दशा है कि जिस दिन कोई उत्सवादिक होगा उस दिन सज सजा कर पुतले से बन कर चंवर लेकर खड़े हुए पर नयन भृंगों के विश्राम स्त्रियों के मुख कमल हो रहे हैं—सेवकों में अनेक दूत पास खड़े रहते हैं जो नेत्र में जंची उनसे भुगतान होने लगा दूतों ने उपदेश दिया कि श्री महाराज से मिल कर जन्म क्यों नहीं कृतार्थ करतीं सेवकों का तो तन मन धन सब गुरु का है उस भुलावे में जो सीधी थी वह तो आ गईं और जो पविव्रता थी वह बलात्कार से ली गई वा उन्ने दर्शन छोड़ दिया और जो कोई उपाय नहीं होता तो गुरु लोग किसी बहाने से उन से अंग का स्पर्श ही भीड़ में कर के कृतार्थ हो जाते हैं और अलभ्य वस्तु की उतनी ही लब्धि बहुत समझते हैं परन्तु इस के विरुद्ध कितनी ऐसी ऐसी भी श्रद्धावती स्त्री मिल जाती हैं जो द्रव्य देकर कृतार्थ होती हैं। क्या स्त्री रसिक इस बात को सुन कर डाह से न जल जायंगे कि ये गुरु लोग विद्या धन से वंचित होकर भी स्त्री धन् और द्रव्य धन एक संग पाते हैं। विचारे स्त्रैण लाखों रु. व्यय करके भी जिन का दर्शन नहीं पाते वे उन्हें उलटा हाथ फेर देती हैं हा!!! अरे मेरे प्यारे हिन्दुओ! तुम इन के जाल में कब तक फंसे रहोगे! अरे क्या तुम को यही संसार से बचावेंगे और इन्हीं के भरोसे तुम को भगवान मिलैगा? क्या सत्य, शौच, दया, दम, नियम समेत उस्की भक्ति नाश हो गई कि इस धर्म्माभास पर तुम भूल रहे हौ हा! देखो तुम्हें कोई कुछ गाली देता है तो तुम कैसे क्रुद्ध होते हो पर इस सच्ची गाली से तुम नहीं बुरा मानते कि तुम्हारे समक्ष तुम्हारे वा तुम्हारे जाति की स्त्रियों की यह गति होती है क्या तुम लोगों से लज्जा भी उठ गई? क्या उस परम भक्ति का फल यही है जो लिखा गया? वा क्या सब पांडवों के समान धर्म्म मानने वाले हो गए हौ कि दुःशासन और दुर्योधन तथा कीचक ने द्रौपदी की अनेक दुर्दशा किया पर वे ऐसे धर्म्म से बंधे थे कि कुछ न बोले?

निश्चय जानो कि ये लोग परलोक में कुछ काम न आवैंगे ये तो केवल पत्थर की नाव हैं परलोक में वे ही काम आवैंगे जो सब विद्या से भूषित निष्कलंक चरित्र और ईश्वर में निश्च्छला भक्ति रखते हैं।

[कविवचन सुधा, 2 सितम्बर, सन 1872 ई.]

ईश्वर बड़ा विलक्षण है

यह उसी का विलक्षणपन है कि जिस भूमि में उदयन, शूद्रक विक्रम भोज ऐसे राजा कालिदास बाण से पंडित दे उसी भूमि में हमारे तुमारे से लोग हैं, यह उसी का विलक्षणपन है कि मुसलमानों ने हिन्दुस्थान को बहुत दिन तक भोगा अब अंगरेज भोगते हैं, मुसलमानों को अपने पक्षपात हैं अंगरेजों को अपनों का, हिन्दू दोनों की समझ में मूर्ख हैं इसी से।–

यह उसी का विलक्षणपन है कि हिन्दू निर्लज्ज हो गए हैं, ऐसे समय में जब कि सब आगे बढ़ा चाहते हैं, ये चूकते हैं और पीछे ही रहे जाते हैं, विशेष कर के सब संसारी का आलस्य पश्चिमोत्तर देश वासियों में घुसा है और अपने को भूल रहे हैं क्षुद्रपना नहीं छूटता इसी से।–

यह उसी का विलक्षणपना है कि हम लोग समाचार पत्र लिखते हैं और यह अभिमान करते हैं कि हमारे इन लेखों से हमारे भाइयों का कुछ उपकार हो, भला नक्कारखाने में तूती की आवाज़ कौन सुनता है, सब अपने रंग में उस की माया से मस्त हैं उन को क्यों नहीं छोड़ते हैं क्यों नहीं विराग करते, संसार मिटै हम को क्या हम कौन जो कहें, पर यह नहीं समझते हम अपने ही अभिमान में चूर हैं यह भी सब उसी की माया है इसी से हम कहते हैं ईश्वर बड़ा विलक्षण है।

जीते हैं जानते हैं कि संसार का पट्टा मैंने लिखवा लिया है पहिले तो मैं मरूंगा ही नहीं और जो मरा भी तो सब मेरे साथ जायगा इसी से।–

सच है मनुष्य यह कैसे सोचै जो हम बैठे हैं, खाते-पीते हैं, चैन करते हैं कभी सोचते नहीं कि हमारी दशान्तर भी होगी वही हम कैसे मरैंगे कदापि नहीं आता, इसी से।–

मजा है, तमाशा है, खेल है, धूम है, दिल्लगी है, मसखरापन है, लुच्चापन है, हंसी है, मूर्खता है, खिलौने हैं, बालक हैं पट्ठे हैं, नामसझ हैं, जड़ हैं, जीव हैं, मोहित हैं, उल्लू के पट्ठे हैं, सब परन्तु उस के समझ में और उस के लोगों के समझ में भेद है इसी से।–

उसके नाते परस्पर सब केवल सगे भाई बहन हैं पर लोग जाति कुजातिवर्ण, आश्रम, नीच ऊंच, राजा प्रजा, स्त्री पुत्र, इत्यादि अनेक भेद समझते हैं इसी से।–

यह उसी की विलक्षणपना है कि हिन्दुओं को सब के पहिले उस ने लक्ष्मी और सरस्वती दी और चिरकाल तक उन को इस देश में स्थिर किया परन्तु अब वही हिन्दू दास और अर्धशिक्षित हो रहे हैं इसी से।–

अनेक प्रकार के जीव, विचित्र स्वभाव, अलग-अलग धर्म्म और रुचि, विचित्र विचित्र रंग, काम, क्रोध, मद, ईर्षा, अभिमान दम्भ, पैशुन्य आनृत्य इत्यादि अनेक प्रकार के स्वभाव बना कर लम्बा चौड़ा गोरखधन्धा का जाल फैला कर इस घनचक्कर में सब को घुमा दिया है इसी से।–

एक बेचारा सुख से अपना कालक्षेप करता है कुछ उस के काम में विघ्न डाल कर व्यर्थ बिना बात बैठे बिठाए उस को रुला दिया, कोई दुःख में है उस को एक संग सुख दे दिया इसी से।–

एक को घटाया, एक को बढ़ाया, एक को बनाया, एक को बिगाड़ा, राई को पर्व्वत किया पर्व्वत को राई, राजा को रंक किया रंक को राजा, भरी ढलकाया खाली भरा इसी से।–

उदार और पंडित दरिद्र मूर्ख धनवान, सुन्दर और रसिक को कुरूपा कूढ़ स्त्री, कुरसिक को सुन्दर वा रसिक स्त्री, सुस्वामी को कुसेवक, सुसेवक को कुस्वामी इत्यादि संसार में कई बातैं बेजोड़ हैं इसी से।–

प्रत्यक्ष लोग देखते हैं कि हमारे बाप दादा इत्यादि मर गए और नित्य लोग मरते जाते हैं तब भी जो लोग–

भला इस संसार बनाने का क्या काम था? व्यर्थ इतने उल्लू एक सङ्ग पिंजरे में बन्द कर दिए किसी को दुःखी बनाया किसी को सुखी, किसी को राजा बनाया किसी को फकीर, इसी से मैं कहता हूं कि ईश्वर बड़ा विलक्षण है।

सब उस में लय रहता, किसी को कुछ दुःख सुख का अनुभव न होता वह केवल परम आनन्दमय अपने रमता इसी से।–

कोई इस को हां कहता है कोई नहीं, कोई मिला कोई अलग, कोई एक कोई अनेक तो उस के अपने माहात्म्य की दुर्दशा क्यौं करानी थी इसी से।–

सर्व्व सामर्थ्यमान उस को सुन कर भी लोग सर्व्वदा उस को नहीं मानते पर हां जब कुछ दुःख पड़ता है तब स्मरण करते हैं जब लोगों का कुछ बनता है तो उस को धन्यवाद तो थोड़े लोग देते हैं पर जो कुछ काम बिगड़ता है तो गाली सभी देते हैं, पानी न बरसै तो, घर का कोई मर जाय तो, रोग फैले तो, हार जाय तो सब प्रकार से वह गाली सुनता है इसी से।

स्तोत्र पंचरत्न

भूमिका

प्रिय पाठकगण! यद्यपि ये स्तोत्र हास्यजनक हैं तथापि विज्ञ लोग इन से अनेकहों उपदेश निकाल सकते हैं। शोच का विषय है कि इन दिनों हम आर्य्य लोगों का दीन भारतवर्ष मांस मदिरा वेश्यादि दोषों से ग्रस्त हो रहा है। यदि इस के बचाव का कोई उपाय शीघ्र न किया जायगा तो हम लोगों को बड़ी भारी क्षति सहनी पड़ेगी अतएव शीघ्र ही इन आपत्तियों से भारतवासियों को बचाना उचित है।

बकरी विलाप को इस में सम्मिलित करने में केवल यही प्रयोजन है कि इस दीन दुखिया के विलाप को सुन कर मांसलोलुप महाशय बकरों पर दया करें और वृथा ही अपनी जिह्वा के स्वादार्थ इन सहायहीन बेचारों के प्राण न लें। संसार में सहस्रों ही एंक से एक उत्तम स्वादिष्ट खाद्य वस्तु ईश्वर न उत्पन्न की है कुछ मांस के सिर में सुरखाब का पर लगा ही नहीं है अतएव आशा है कि पाठकगण इस घृणित और जघन्य कार्य से अपना अपना हाथ खींच लेंगे।

—हरिश्चन्द्र

स्तोत्र पंचरत्न

श्री वेश्यास्तवराज
(महा संस्कृत)

ओं अस्य श्री वेश्यास्तवराज महामाला मंत्रस्य भंडाचार्य्य; श्री हरिश्चन्द्रो ऋषिः द्रव्योवीजं मुख कीलकं वारवधू महादेवता सर्वस्वाहार्थं जपे विनियोगः। अथ अंगन्यासः। द्रव्य हारिण्यै हृदयाय नमः जेरपायी धारिण्यै शिरसे स्वाहा चोटी काटिन्यै शिखायै वषट् प्रत्यङ्गलिङ्गिन्यै कवचाय हुंकामान्य कारिण्यै नेत्राभ्यां वौषट् विषयार्थिन्यै अस्त्र त्रयाय फट्।

अथ करन्यासः

सर्व शून्य कर्य्यै अंगुष्टाभ्यान्नमः लोकवेदनिषेधिन्यै तर्जनीभ्यान्नमः मध्यम विधायिन्यै मध्यमाभ्यान्नामः दुर्नैमदायिन्यै अनामिकाभ्यान्नमः कनिष्ठकारिण्यै कनिष्ठकाभ्ययान्नमः आसमुद्रान्त कर ग्राहिण्यै करतल कर पृष्टाभ्यान्नमः॥

अथ ध्यानम

पद्माकारामुखां कपोल ललितां माधुर्य पूर्णाधरां। अत्युच्चस्तनमण्डलां विषजलैः पूर्णा घटकांचनी। मिथ्याप्रेममयीं तनुं विदधतीं सर्वस्व संहारणीं। ध्यायेद्वार वधूं सदैव हृदये धर्मार्थ विच्छित्तये॥

अथ स्तोत्र प्रारम्भ

नौमि नौमि नौमि देवि रण्डिके।
लोक वेद सिद्ध पंथ खण्डिके॥
कोटि यक्षराक्ष को नासिनी।
स्वार्थ सिद्धि हेतही विलासिनी॥
दृष्टि मात्र मन्द मन्द हासिनी।
कामि बृन्द काम दुःख नासिनी॥

जातरूप जात रूप शालिनी।
द्रव्यमान वीर्य कोष कालिनी॥
नव्य न्यून वृन्द मुण्ड मालिनी।
क्षेत्रपाल बाहनादि पालिनी॥
काशिका प्रवास मोक्ष दायिनी।
पोर्ट ब्रांडिकादि मद्य पायिनी॥
केश पाश स्वच्छ गुच्छ शोभिनी।
द्रव्य दर्श भव्य भाव लोभिनी॥
काम अग्नि ज्वाल माल कुण्डिनी।
कामि चित्त पक्षिका भुसुण्डिनी॥
पुन्य तीर्थ यात्रि वृन्द पावनी।
दैन युक्त काम सैन्य छावनी॥
मद्यप प्रमोद पुष्ट पीढ़िका।
एनलाइटेंड पंथ सीढ़िका॥
पेशवाज अङ्ग शोभितानना।
गिलटभूषण प्रमोद कानना॥
मातृ पितृ बन्धु शील भक्षिका।
लोक लाज नाश हेतु तक्षिका॥
गुप्त द्रव्य पुंज गेह रक्षिका।
यौवनासवार्थ पुष्प भक्षिका॥
धर्म कर्म शर्म चर्म हारिणी।
गर्म धर्म नर्म मर्म कारिणी॥
प्रेजुडीस लेश मात्र भंजिका।
मद्यपान घोर रंग रंजिका॥
दायिनी क्षणैक मात्र सङ्ग की।
आतशक सुजाक और फिरङ्ग की॥
पितृ नाम हीन मातृ नासिका।
सर्व जाति पांति मध्य गामिका॥
मिष्ट जिह्वा कपाल मूड़नी।
मित्र वर्ग युक्त नर्क बूड़नी॥
लोक वेद लाज पत्र फाड़नी।
जीवितैव कत्र मध्य गाड़नी॥
द्रव्य लाभ घावमान सांड़नी।
सद्गृहस्थ गेह की उजाड़नी॥

सम्प्रदायि वृन्द जीविका प्रदा।
टाल हेतु माल पूरनी सदा॥
नायकावलम्बिनी सुखास्पदा।
त्वांनमामि रण्डि देवते सदा॥
इदं वार वधू स्तोत्रं दिव्यादिवयतरंमहत्।
गुप्तं गुप्तवती तंत्रे देवैरपि सुदुर्लभम्॥
यः पठेव्यातरुत्या सायंवासुसमाहितः।
मुक्तो भवतिसदैव देवगेहादि बन्धनात्॥
जप्त्वा जप्त्वा पुनर्जप्त्वा पतित्वा चमहीतले।
उत्थाप्यचपुनर्जप्त्वा नरोमुक्तिमवाप्नुयात॥

इति

स्त्री सेवा पद्धति

इस पूजा में अश्रु जल ही पाद्य है, दीर्घश्वास ही अर्घ्य है, आश्वासन ही आचमन है, मधुर भाषण ही मधुपर्क है, सुवर्णालंकार ही पुष्प है, धैर्य ही धूप है, दीपक है, चुप रहना ही चन्दन है और बनारसी साड़ी ही विल्वपत्र है, आयु रूपी आंगन में सौन्दर्य तृष्णा रूपी खूंटा है, उपासक का प्राण पुंज छाग उस में बंध रहा है। देवी के सुहाग का खप्पर और प्रीति की तरवार है। प्रत्येक शनिवार की रात्रि इस में महाष्टमी है और पुरोहित यौवन है।

पदादि उपचार कर के होम के समय यौवन पुरोहित उपासक के प्राण समिधों में मोहाग्नि लगा कर सर्वनाश तन्त्र से मन्त्रों से आहुति दे ''मानखंड के लिए निद्रा स्वाहा'' ''बात माने के लिए मां बाप का बन्धन स्वाहा'' ''वस्त्रालंकारादि के लिए यथा सर्वस्व स्वाहा'' ''मन प्रसन्न करने के लिए यह लोक परलोक स्वाहा'' इत्यादि, होम के अनन्तर हाथ जोड़ कर स्तुति करें।

हे स्त्री देवी! संसार रूपी आकाश में गुब्बारा (बेलून) हो क्योंकि बात बात में आकाश में चढ़ा देती हो, पर जब धक्का देती हो तब समुद्र में डूबना पड़ता है अथवा पर्वत के शिखरों पर हाड़ चूर्ण हो जाते हैं, जीवन के मार्ग में तुम रेलगाड़ी हो, जिस समय रसना रूपी एञ्जिन तेज करती हो एक घड़ी भर में चौदहों भुवन दिखला देती हो, कार्यक्षेत्र में तुम इलेक्ट्रिक टेलीग्राफ हो, बात पड़ने पर एक निमेष में उसे देशदेशान्तर में पहुंचा देती हो तुम भवसागर में जहाज हो, बस अधम को पार करो।

तुम इन्द्र हो, श्वसुर कुल के दोष देखने के लिए तुम्हारे सहस नेत्र हैं, स्वामी नेत्र हैं, स्वामी के शासन करने में तुम बज्रपाणि हो। रहने का स्थान अमरावती है क्योंकि जहां तुम हो वहीं स्वर्ग है।

तुम चन्द्रमा हो, तुम्हारा हास्य कौमुदी है उस से मन का अन्धकार दूर होता है तुम्हारा प्रेम अमृत है जिस की प्रारब्ध में होता है वह इसी शरीर से स्वर्ग सुख अनुभव करता है और लोक में जो तुम व्यर्थ पराधीन कहलाती हो यही तुम्हारा कलंक हैं।

तुम बरुण हो क्योंकि इच्छा करते ही अश्रु जल से पृथ्वी आर्द्र कर सकती हो तुम्हारे नेत्र जल की देखा देखी हम भी गल जाते हैं।

तुम सूर्य्य हो तुम्हारे ऊपर आलोक का आवरण है पर भीतर अन्धकार का बास है, हमें तुम्हारे एक घड़ी भर भी आंखों के आगे न रहने से दसों दिशा अन्धकारमय मालूम होता है पर जब माथे पर चढ़ जाती हो तब तो हम लोग उत्ताप के मारे मर जाते हैं किंबहुना देश छोड़ कर भाग जाने की इच्छा होती है।

तुम वायु हो क्योंकि जगत की प्राण हो तुम्हें छोड़ कर कितनी देर जी सकते हैं? एक घड़ी भर तुम्हें बिना देखे प्राण तड़फड़ाने लगते हैं, जलन में डूब जाने की इच्छा होती है पर जब तुम प्रखर बहती हो किस के बाप की सामर्थ्य है कि तुम्हारे सामने खड़ा रहे।

तुम यम हो यदि रात्रि को बाहर से आने में बिलम्ब हो, तो तुम्हारी वक्तृता नरक है। वह यातना जिसे न सहनी पड़े वही पुण्यवान है, उसी की अनन्त तपस्या है।

तुम अग्नि हो क्योंकि दिन रात्रि हमारी हड्डी जलाया करती हो।

तुम विष्णु हो तुम्हारी नथ तुम्हारा सुदर्शन चक्र है उस के भय से पुरुष असुर माथा मुड़ा कर तटस्थ हो जाते हैं एक मन से तुम्हारी सेवा करे तो शरीर बैकुंठ को प्राप्त कर सकता है।

तुम ब्रह्मा हो तुम्हारे मुख से जो कुछ बाहर निकलता है वही हम लोगों का वेद है और किसी वेद को हम नहीं मानते, तुम को चार मुख है क्योंकि तुम बहुत बोलती हो सृष्टिकर्त्ता प्रत्यक्ष ही हो पुरुष के मनहंस पर चढ़ती हो चारों वेद तुम्हारे हाथ में है इस से तुम को प्रणाम है।

तुम शिव हो सारे घर का कल्याण तुम्हारे आधीन है। भुजंग बेनी धारिणी है (3) त्रिशूल तुम्हारे हाथ में है क्रोध में और कंठ में विष है तो भी आशुतोष हो।

इस दिव्य स्तोत्र पाठ से तुम हम पर प्रसन्न हो। समय पर भोजनादि दो। बालकों की रक्षा करो। भृकुटी धनु के संधान से हमारा बध मत करो। और हमारे जीवन को अपने कोप से कंटकमय मत बनाओ।

अथ मदिरास्तवराज

मदिरामादकंमद्यं सुराहाला हलिप्रिया।
गन्धोत्तमाप्रसन्नेरा परिश्चुत्वरुणात्मजा॥
कश्यं कादम्बरी गन्धमादिनी च परिश्रुता।
मानिकाकपिशीमत्ता माधवीकापिशायनम्॥
कत्तोयंकामिनीसीता मद्गन्धा मद प्रिया।
माध्वीकंमधुसन्धानमासवोमदनाऽमृता॥
वीरामनोज्ञा मेधावी विधातामदनीहली।
श्रीमेदिनी सुप्रतिभा महानन्दामधूलिका॥
मदोस्कंठागुणारिष्टं मैरेयंमदवल्लभा।
कारणं सरकः सीधुर्मदिष्टाच परिप्लुता॥
तत्वं कल्पंस्वादुरसा शुण्डाकपिशमब्धिजा।
हराहरंदेवसंद्राक्षं मार्द्वीकंदुष्टमेव च॥
खर्जूरंपानसंद्राक्षं माक्षिकतालमैक्षरणम्।
टाकमन्नो विकारोत्थं मधूकंनारिकेलजं॥
गौड़ीमाध्वीतथा पैष्टी माद्याचाद्यास्वरूपिणी।
कुलीन कुल सर्वस्वा तन्त्र सारा मनोहरा॥
मकार पंच मध्यस्था देवीप्रीतिकरी शिवा।
वीरपेयानित्यसिद्धा भैरवी भैरवप्रिया॥
कायस्थकुल संपूज्याऽऽभीराभिल्लजनप्रिया।
शूद्रसेव्याराजपेया घुर्णाघूर्णित कारिणी॥
चन्द्रानुजादेवपीता दैत्यालक्ष्मी सहोदरा।
म्लेच्छप्रियादानवेज्या यादवान्वयनाशिनी॥
गौरण्डागौरसंसेव्या फ्रान्सदेशसमुद्भवा।
शराबमयदुख्तरिरजवत्गुलगूं आफताबशर॥

ब्राण्डी शाम्पिन्पोर्टवाइन् क्लारेट एकश्वातुहाकूगिन् ।
मुजेलह्विस्कीमार्टल औल्डटाम हेनिसी शेरी॥
बिलाइव वैडेलिस्मेनी रमबीयर वरमौथुज ।
क्यूरेसिया कागनल्ककेण्डर अण्टिलोपिका॥
वाइनूमगैलिसाइवान मरू वरमूऐक्वावाइटा ।
दुधिया दुधुवा दुद्धी दारू मद दुलारिया॥
कलवारप्रिया काली कलवरियानिवासिनी ।
होलटीलोटलीलोट नाशिनी चोटलीचलः॥
धनमानादि संहर्त्री ग्रैण्डटोटल कारिणी ।
पंचापंच परित्यक्ता पंच पंचप्रपंचिता॥
इमानिश्रीमहामद्य नामानिवदनेसदा ।
तिष्ठन्तु सेविनांसंख्या क्रमात्सार्द्ध शतानिच॥
यः पठेत्प्रातरुत्थाय नामसार्द्ध शतम्मुदा ।
धनमान परित्यज्य ज्ञातिपंक्त्याच्युतोभवेत्॥
निन्दितो बहुर्भिलो कैर्मुखश्वासपराङ्मुखैः ।
बलहीनोक्रियाहीनो मूत्रकृतलुण्ठतेक्षितौ॥
पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावल्लुठतिभूतले ।
उत्थाय च पुनः पीत्वा नरोमुक्ति मवाप्नुयात्॥

इति श्री पंच महातन्त्रे प्रपंचपटले पंचमकार वर्णने मदिरास्तवराजे सार्द्धशतनाम् सम्पूर्णम ।

अथ स्तवराज

हे मदिरे तुम साक्षात भगवती का स्वरूप हो, जगत तुम से व्याप्त है, तुम्हारी स्तुति करने को कौन समर्थ है अतएव तुम्हें प्रणाम ही करना योग्य है। हे मद्य तुम्हें सौत्रामणि यज्ञ में तो वेद ने प्रत्यक्ष आदर दिया है परन्तु तुम अपने सोमरूप प्रच्छन्न अमृत प्रवाह से सम्पूर्ण वैदिक यज्ञ वितान को प्लावित करती हो अतएव हे श्रुतिश्रुते! तुम्हें प्रणाम है।

हे वारुणि! स्मृतिकारों ने भी तुम्हारी प्रवृत्ति नित्य मानी है, निवृतत्ति केवल अपने पद्धतिपने के रक्षण के हेतु लिखी है अतएव हे स्मृतिस्मृते! तुम्हें प्रणाम है।

हे गौड़ि! पुराणों में तो तुम्हारी सुधासारिण कथा चारों ओर अति वाहित है, निषेध के बहाने भी तुम्हारी विधि ही विधि है, इस से हे पुराण प्रतिपादिते! तुम्हैं प्रणाम है।

हे सोम सन्तते! चन्द्रमा में तुम्हारा निवास, समुद्र तुम्हारी उत्पत्ति का स्थान

और सकल देव, मनुष्य, असुर तुम्हारे पति हैं, अतएव हे त्रिलोकगामिनी! तुम्हें प्रणाम है।

हे बोतल बासिनि! देवी ने तुम्हारे बल से शुंभादि को मारा। यादव लोग तुम्हें पी के कट मरे। बलदेव जी ने तुम्हारे प्रताप से सूत का सिर काटा, अतएव हे शक्ति! तुम्हें प्रणाम है।

हे सकल मादक सामग्री शिरो रत्ने! तन्त्र केवल तुम्हारे प्रचार ही को बनाए हैं, और इन का कोई प्रयोजन नहीं था केवल तुम मय जगत करने को इन का अवतार है, अतएव हे स्वतन्त्रे! तुम्हें प्रणाम है।

हे ब्रांडि बौद्ध और जैन धर्म्म की तुम सारभूत हौ! मुसल्मानी में मुफ्त के मिस हलाल हौ! क्रिस्तानों में भी साक्षात् प्रभु की रुधिर रूप हौ और ब्राह्मोधर्म्म की तुम एक मात्र आड़ हौ, अतएव हे सर्व्व धर्म्म गर्म स्वरूपे! तुम्हें प्रणाम है।

हे शाम्पिन! आगे के लोग सब तुम्हारे सेवक थे, यह श्लोकों के प्रमाण सहित बाबू राजेन्द्रलाल के लेकचर से सिद्ध है तो अब तुम्हारा कैसे त्याग हो सकता है, अतएव हे सिद्धे! तुम्हें प्रणाम है।

दे ओलूडटाम! तुम्हें भारतवर्षियों ने उत्पन्न किया, रूम, चीन इत्यादि देश के लोगों ने कुछ परिष्कृत किया, अब अंग्रेजों और फरासीसियों ने तुम्हें फिर से नए भूषण पहिराए, अतएव हे सर्वविलायत भूषिते! तुम्हैं प्रणाम है।

हे कुलमर्यादासंहारकारिणि! तुम से बढ़ कर न किसी का बल है, न आग्रह, न मान, तुम्हारे हेतु तुम्हारे प्रेमी कुल, धन, नाम, मान, बल, मेल, रूप वरंच प्राण का भी परित्याग करते हैं, अतएव हे प्रणयैक पात्रे! तुम्हैं प्रणाम है।

हे प्रेजुडिस-विध्वंसिनी। तुम्हारे प्रताप से लोग अनेक प्रकार की शंका परित्याग कर के स्वच्छन्द विहार करते हैं, जिन के बाप-दादे हुक्का-भांग-सुरती से भी परहेज करते थे वे अब सभ्यों की मजलिस में तुम्हारा सेवन कर के जाना ऐब नहीं समझते, अतएव बोलड्लेस जननि! तुम्हैं प्रणाम है।

हे सर्व्वानन्द सार भूते! तुम्हारे बिना किसी बात में मजा ही नहीं मिलता, रामलीला तुम्हारे बिना निरी सूपनखा की नाक मालूम पड़ती है, नाच निरे फूट कांच और नाटक निरे उच्चाटक बेवकूफी के फाटक दिखाई पड़ते हैं, अतएव हे मजे की मोटरी, तुम्हैं प्रणाम है।

हे मुख-कज्जलावलेपके! होटल नाच जाति पांति घाट बाट मेला तमाशा दरबार घोड़ दौड़ इत्यादि स्थान में तुम्हैं लेकर जाने से लोग देखो कैसी स्तुति करते हैं। अतएव हे पूर्व्व पुरुष संचित विद्या धन राज संपर्कादि जन्य कठिन प्राप्य प्रतिष्ठा समूह सत्यानाशनि! तुम्हैं बारम्बार प्रणाम करना योग्य है।

कङ्कर स्तोत्र

कंकड़ देव को प्रणाम है। देव नहीं महादेव क्योंकि काशी के कंकड़ शिव शंकर समान हैं।

हे कंकड़ समूह! आजकल आप नई सड़क से दुर्गा जी तक बराबर छाये हो इस से काशी खण्ड 'तिलेतिले' सच हो गया अतएव तुम्हें प्रणाम है।

हे लीला कारिन्! आप केशी शकट वृषभ खरादि के नाशक हौ इस से मानो पूर्व्वार्द्ध की कथा हौ अतएव व्यासों की जीविका हौ।

आप सिर समूह भंजन हो क्योंकि कीचड़ में लोग आप पर मुंह के बल गिरते हैं।

आप पिष्ट पशु की व्यवस्था हौ क्योंकि लोग आप की कढ़ी बना कर आप को चूसते हैं।

आप पृथ्वी के अन्तरगर्भ से उत्पन्न हौ। संसार के गृह निर्माण मात्र के कारण भूत हौ। जल कर भी सफेद होते हौ। दुष्टों के तिलक हौ। ऐसे अनेक कारण हैं जिन से आप नमस्कारणीय हौ।

हे प्रबल बेग अवरोधक! गरुड़ की गति भी आप रोक सकते हौ और की कौन कहै इस से आप को प्रणाम है।

हे सुन्दरी सिंगार! आप बड़ी के बड़े हौ क्योंकि चूना पान की लाली का कारण है और पान रमणो गण मुख शोभा का हेतु है इस से आप को प्रणाम है।

हे चुगी नन्दन! ऐन सावन में आप को हरियाली सूझी है क्योंकि दुर्गा जी पर इसी महीने में भीड़ विशेष होती है तो हे हठ मूर्त्ते! तुम को दंडवत है।

हे प्रबुद्ध! आप शुद्ध हिन्दू हौ क्योंकि शरह विरुद्ध हौ आव आया और आप न बर्खास्त हुए इस से आप को सलाम है।

हे स्वेच्छाचारिन! इधर उधर जहां आप ने चाहा अपने को फैलाया है। कहीं पटरी के पास हौ कही बीच में अड़े हौ अतएव हे स्वतन्त्र आप को नमस्कार है।

हे ऊभड़ खाभड़ शब्द सार्थ कर्त्ता! आप कोणमिति के नाशकारी हौ क्योंकि आप अनेक विचित्र कोण सम्बलित हौ अतएव हे ज्योतिषारि आप को नमस्कार है।

हे शस्त्र समष्टि! आप गोली गोला के चचा, छर्रों के परदादा, तीन के फल

तलवार की धार और गदा के गोला हौ इस से आप को प्रणाम है।

आहा! जब पानी बरसता है तब सड़क रूपी नदी में आप द्वीप से दर्शन देती हौ इस से आप के नमस्कार में सब भूमि को नमस्कार हो जाता है।

आप अनेकों के बृद्धतर प्रपितामह हो क्योंकि ब्रह्मा का नाम पितामह है उन का पिता पंकज है उस का पिता पंक है और आप उस के भी जनक हौ इस से आप पूजनीयों में एल एल डी हौ।

हे जोगा जिवलाल रामलालादि मिश्री समूह जीविका दायक! आप कामिनी-भंजक धुरीश विनाशक बारनिस चूर्णक हौ। केवल गाड़ी ही नहीं घोड़े की नाल सुम बैल के खुर और कटक चूर्ण को भी आप चूर्ण करनेवाले हौ इस से आप को नमस्कार है।

आप में सब जातियों और आश्रमों का निवास है। आप बाणाप्रस्थ हौ क्योंकि जंगलों में लुढ़कते हौ। ब्रह्मचारी हौ क्योंकि बटु हौ। गृहस्थ हौ चूना रूप से, संन्यासी हौ क्योंकि घुट्टमघुट्ट हौ। ब्राह्मण हौ क्योंकि प्रथम वर्ण हो कर भी गली गली मारे मारे फिरते हौ। क्षत्री हौ क्योंकि खत्रियों की एक जाति हौ। वैश्य हौ क्योंकि कांटा बांट दोनों तुम में है। शूद्र हौ क्योंकि चरणसेवा करते हौ। कायस्थ हौ क्योंकि एक तो ककार का मेल दूसरे कचहरी पथावरोधक तीसरे क्षत्रियत्व हम आप का सिद्ध कर ही चुके हैं। इस से हे सब वर्ण स्वरूप तुम को नमस्कार है।

आप ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य्य, अग्नि, जम, काल, दक्ष और वायु आदि के कर्त्ता हौ, मन्मथ की ध्वजा हौ, राजा पद दायक हौ, तन मन धन के कारण हौ, प्रकाश के मूल शब्द की जड़ और जल के जनक हौ वरञ्ज भोजन के भी स्वादु कारण हौ, क्योंकि आदि व्यंजन के भी बाबा जान हो इसी से हे कंकड़ तुम को प्रणाम है।

आप अंगरेजी राज्य में श्रीमती महराणी विक्टोरिया और पार्लमिंट महासभा के आछत, प्रबल प्रताप श्रीयुत गवर्नर जनरल और लेफ्लेंट गवर्नर के वर्त्तमान होते, साहिब कमिश्नर साहिब मजिस्ट्रेट और साहिब सुपरिनटेंडेंट के इसी नगर में रहते और साढ़े तीन तीन हाथ के पुलिस इंसपेक्टरों और कांसिटेबुलों के जीते भी गणेश चतुर्थी की रात को स्वच्छन्द रूप से नगर में भड़ाभड़ लोगों के सिर पांव पड़ कर रुधिर धारा से नियम और शांति का अस्तित्व बहा देते हौ अतएव हे अंगरेजी राज्य में नबाबी स्थापक, तुम को नमस्कार है।

यह लम्बा चौड़ा स्तोत्र पढ़ कर हम विनती करते हैं कि अब आप सद्दे सिकन्दरी बाना छोड़ो या हटो या पिटो।

अंगरेज स्तोत्र

अस्य श्री अंगरेजस्तोत्र माला मंत्रस्य श्री भगवान मिथ्या प्रशंसक ऋषिः जगतीतल छन्दः कलियुग देवता सर्व वर्ण शक्तयः शुश्रुषा वीजं वाकस्तम्भ कीलकम् अंगरेज प्रसन्नार्थे पठे विनियोगः।

अथ ऋष्यादि न्यासः मिथ्या प्रशंसक ऋषयेनमः शिरसि जगतीतल छद्मे नमः मुखे। कलियुगो देवतायै नमः हृदि। सर्व वर्ण शक्तयः भ्योनमः पादयोः। शुश्रुषा वीजायनमः गुह्ये। वाक्स्तंभ कीलकाय नमः सर्वांके। अर्थ मंत्र। ओं नमः श्री अंगरेजेभ्यः मिथ्याप्रशंसक नाथेभ्यः सर्वशक्तिमद्भ्यः स्वाहा। अथ करन्यासः। ओं अंगुष्टाभ्यांनमः नमस्तर्जनीभ्यनमः। श्री अंगरेजेभ्यः मध्यमाभयां नमः। मिथ्याप्रशंसक नाथेभ्यः। सर्वशक्तिद्भ्यः कनिष्टकाभ्यां नमः। स्वाहा करतल का पृष्टाभ्यां नमः। अथ ध्यानम्। यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतस्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैर्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः। ध्यानवस्थित तद्गतेन-मनसापश्यन्ति य योगिनी यस्यांतं न विदुः सुरा सुरगणा देवायतस्मै नमः। इति ध्यानम्।

हे अंगप्रज! हम तुम को प्रणाम करते हैं।

तुम नानागुण विभूषित, सुन्दरकान्ति विशिष्ट, बहुत संपद युक्त हो, अतएव हे अंगरेज! हम तुम को प्रणाम करते हैं।

तुमहर्ता–शत्रुदल के, तुम कर्त्ता–आईनादि के, तुम विधाता–नौकरियों के अतएव हे अंगरेज! हम तुम को प्रणाम करते हैं।

तुम समर में दिव्यास्त्रधारी–शिकार में बल्लमधारी, विचारागार में अर्थ इंचि परिमित व्यासविशिष्ट वेत्रधारी, आहार के समय कांटा चिमचाधारी, अतएव हे अंगरेज हम तुम को प्रणाम करते हैं।

तुम एक रूप से पुरी के ईश होकर राज्य करते हो, एक रूप से पण्यवीथिका में व्यापार करते हो, और एक रूप से खेत में हल चलाते हौ, अतएव हे त्रिमूर्ते! हम तुम को प्रणाम करते हैं।

आप के सत्वगुण आप के ग्रन्थों से प्रगट, आप के रजोगुण आप के युद्धों से प्रकाशित एवं आप के तमोगुण भवत्प्रणीत भारतवर्षीय संवाद पत्रादिकों से विकसित,

अतएव हे त्रिगुणात्मक! हम तुम को प्रणाम करते हैं।

तुम हौ अतएव सत् हो तुम्हारे शत्रु युद्ध में चित्त्, और उम्मेदवारों के आनन्द, अतएव हे सच्चिदानन्द! हम तुमको प्रणाम करते हैं।

तुम ब्रह्मा हौ क्योंकि प्रजापति हौ, तुम विष्णु हौ, क्योंकि लक्ष्मी के कृपापात्र हौ, तुम महेश्वर हौ क्योंकि तुम्हारी स्त्री गौरी, अतएव हे त्रिमूर्ते! हम तुम को प्रणाम करते हैं।

तुम इन्द्र हौ—तुम्हारी सेना वज्र है, तुम चन्द्र हौ—इनकमटैक्स तुम्हारा कलंक है, तुम वायु हौ—रेल तुम्हारी गति है, तुम वरुण हौ—जल में तुम्हारा राज्य है, अतएव हे अंगरेज! हम तुम को प्रणाम करते हैं।

तुम दिवाकर हौ—तुम्हारे प्रकाश से हमारा अज्ञानान्धकार दूर होता है, तुम अग्नि हौ—क्योंकि सब खाते हौ, तुम यम हौ—विशेष कर के अमला वर्ग के, अतएव हे अंगरेज! हम तुम को प्रणाम करते है।

तुम वेद हौ—और ऋग्यजुस्साम को नहीं मानते, तुम स्मृति हौ—मन्वादि भूल गए, तुम दर्शप हौ—क्योंकि न्याय मीमांसा तुम्हारे हाथ है, अतएव हे अंगरेज! हम तुम को प्रणाम करते हैं।

हे श्वेतकान्त—तुम्हारा अमल धवल द्विरद दर शुंभ्र महाश्मश्रु शोभित मुख मंडल देख कर के हमें वासना हुई कि हम तुम्हारी स्तुति करें अतएव हे अंगरेज हम तुम को प्रणाम करते हैं।

तुम्हारी हरित कपिश पिङ्गल लोहित कृष्ण शुभ्रादि नानावर्ण शोभित अतिशयरंजित भल्लुकमेदमार्जितकुन्तलावलि देख कर के हम को वासना हुई कि हम तुम्हारा स्तव करैं, अतएव हे अंगरेज! हम तुम को प्रणाम करते हैं।

हे वरद! हम को वद दो, हम सिर पर शमला बांध के तुम्हारे पीछे पीछे दौड़ेंगे, तुम हम को चाकरी दो हम तुम को प्रणाम करते हैं।

हे शुभंकर! हमारा शुभ करो, हम तुम्हारी खुशामद करैंगे, और तुम्हारे जी की बात कहैंगे, हम को बड़ा बनाओ हम तुम को प्रणाम करते हैं।

हे मानद! हम को टाइटल दो, खिताब दो, खिलअत दो, हम को अपना प्रसाद दो हम तुम को प्रणाम करते हैं।

हे भक्तवत्सल! हम तुम्हारा पात्रावशेष भोजन करने की इच्छा करते हैं तुम्हारे कर स्पर्श से लोक मंडल में महामानास्पद होने की इच्छा करते हैं, तुम्हारे स्वहस्तलिखित दो एक पत्र बक्स में रखने की स्पर्द्धा करते हैं, हे अंगरेज! तुम हम पर प्रसन्न हो हम तुम को नमस्कार करते हैं।

हे अन्तरयामिन्। हम जो कुछ करते हैं केवल तुम को धोखा देने को, तुम दाता कहो इस हेतु हम दान करते हैं, तुम परोपकारी कहो इस हेतु हम परोपकार करते हैं तुम विद्यमान कहो इस हेतु हम विद्या पढ़ते हैं, अतएव हे अंगेरज! तुम हम पर प्रसन्न हो हम तुम को नमस्कार करते हैं।

हम तुम्हारी इच्छानुसार डिस्पेंसरी करैंगे, तुम्हारे प्रीत्यर्थ स्कूल करैंगे तुम्हारी आज्ञा प्रमाण चन्दा देंगे, तुम हम पर प्रसन्न हो, हम तुम को नमस्कार करते हैं।

हे मिष्टाभाषिण! हम मातृभाषा त्याग कर के तुम्हारी भाषा बोलैंगे, पैतृक धर्म्म छोड़ के ब्राह्म धर्मावलम्ब करैंगे, बाबू नाम छोड़ कर मिस्टर नाम लिखवावैंगे, तुम हम पर प्रसन्न हो तुम को प्रणाम करते हैं।

हे सुभोजक! हम चावल छोड़ के पावरोटी, निषिद्धमांस बिना हमारा, भोजन ही नहीं बनता, कुक्कुट हमारा जलपान है, अतएव हे अंग्रेज! तुम हम को चरण में रक्खो हम तुम को प्रणाम करते हैं।

हम विधवा विवाह करैंगे, कुलीनों की ज्ञाति मारैंगे, जाति भेद उठा देंगे—क्योंकि ऐसा करने से तुम हमारी सुख्याति करोगे, अतएव हे अंगरेज! तुम हम पर प्रसन्न हो हम तुम को नमस्कार करते हैं।

हे सर्व्वद! हम को धन दो, मान दो, यश दो, हमारी सब वासना सिद्ध करो, हम को चाकरी दो, राजा करो, रायबहादुर करो, कौंसिल का मिम्बर करो हम तुम को प्रणाम करते हैं।

यदि यह न हो तो हम को डिनर होम में निमन्त्रण करो, बड़ी-बड़ी कमेटियों का मिम्बर करो, सीनट का मिम्बर करो, जसटिस करो, आनरेरी मजिस्ट्रेट करो, हम तुम को प्रणाम करते हैं।

हमारी स्पीच सुनो, हमारा एसे पढ़ों हम को वाह वाही दो, इतना ही होने से हम हिन्दू समाज का अनेक निन्दा पर भी ध्यान न करैंगे, अतएव हम तुम्हीं को नमस्कार करते हैं।

हे भगवान—हम अकिञ्चन हैं और तुम्हारे द्वार पर खड़े रहेंगे, तुम हम को अपने चित्त में रक्खो हम तुम को डाली भेजेंगे, तुम अपने मन में थोड़ा सा स्थान मेरी ओर से भी दो, हे अंगरेज! हम तुम को कोटि कोटि साष्टांग प्रणाम करते है।

तुम दशावतार धारी हो, तुम मत्स हो क्योंकि समुद्रचारी हो और पुस्तक छाप छाप के वेद का उद्धार करते हो, तुम कच्छ हो—क्योंकि मदिरा हलाहल, वारांगन, धन्वन्तर और लक्ष्मी इत्यादि रत्न तुम ने निकाले हैं पर वहां भी विष्णुत्व नहीं त्याग किया है अर्थात लक्ष्मी उन रत्नों में से तुम ने आप लिया है, तुम श्वेत वाराह हो क्योंकि गौर हो और पृथ्वी के पति हो, अतएव हे अवतारिन्! हम तुम को नमस्कार करते हैं।

तुम नृसिंह हो क्योंकि मनुष्य और सिंह दोनों पन तुम में है टैक्स तुम्हारा क्रोध है और परम विचित्र हो, तुम बामन हो क्योंकि तुम बामन कर्म्म में चतुर हो, तुम परशुराम हो क्योंकि पृथ्वी निक्षत्री करदी है, अतएव हे लीलाकारिन्! हम तुम को नमस्कार करते हैं।

तुम राम हो क्योंकि अनेक सेतु बांधे हैं, तुम बलराम हो क्योंकि मद्यप्रिय और

हलधारी हो, तुम बुद्ध हो क्यौंकि वेद के विरुद्ध हो, और तुम कल्कि हो क्यौंकि शत्रु संहारकारी हो, अतएव हे देश विधि रूप धारिन्! हम तुम को नमस्कार करते हैं।

तुम मूर्तिमान् हो! राज्यप्रबन्ध तुम्हारा अंग है, न्याय तुम्हारा शिर है, दूरदर्शिता तुम्हारा नेत्र है और कानून तुम्हारे केश हैं अतएव हे अंगरेज! हम तुम को नमस्कार करते हैं।

कौंसिल तुम्हारा मुख है, मान तुम्हारी नाक है, देश पक्षपात तुम्हारी मोछ है और टैक्स तुम्हारे कराल दंष्ट्रा हैं अतएव हे अंगरेज! हम तुम को प्रणाम करते हैं हमारी रक्षा करो।

चुंगी और पुलिस तुम्हारी दोनों भुजा हैं, अमले तुम्हारे नख हैं, अन्धेर तुम्हारा पृष्ट है और आमदनी तुम्हारा हृदय है अतएव हे अंगरेज! हम तुम को प्रणाम करते हैं।

खजाना तुम्हारा पेट है, लालच तुम्हारी क्षुधा है, सेना तुम्हारा चरण है, खिताब तुम्हारा प्रसाद है, अतएव हे विराटरूप अंगरेज! हम तुम को प्रणाम करते हैं।

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानयोगादिकाः क्रिया।
अंगरेज स्तवपाठस्य कलां नार्हति षोडशीम्॥1॥
विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम्।
स्टारर्थी लभते सृारम् मोक्षार्थी लभते गतिं॥2॥
एक कालं द्विकालं च त्रिकालं नित्यमुम्पठेत्।
भव पाश विनिर्मुक्तः अँग्रेज लोकं संगच्छति॥3॥

ईश्वर बड़ा विलक्षण है

भला इस संसार बनाने का क्या काम था? व्यर्थ इतने उल्लू एक संग पिंजड़े में बन्द कर दिए किसी को दुःखी बनाया किसी को सुखी, किसी को राजा बनाया किसी को फकीर, इसी से मैं कहता हूं कि ईश्वर बड़ा विलक्षण है।

सब उस में लय रहता, किसी को कुछ दुःख सुख का अनुभव न होता, वह केवल परम आनन्दमय अपने में रहता इसी से—

कोई इस को हां कहता है कोई नहीं, कोई मिला कोई अलग, कोई एक कोई अनेक तो उस को अपने माहात्म्य की दुर्दशा क्यों करानी थी इसी से—

सर्व्व सामर्थ्य मान उस को सुन कर भी लोग सर्व्वदा उस को नहीं मानते पर हां जब कुछ दुःख पड़ता है तब स्मरण करते हैं। जब लोगों का कुछ बनता है तो उस को धन्यवाद तो थोड़े लोग देते हैं पर जो कुछ काम बिगड़ता है तो गाली सभी देते हैं, पानी न बरसै तो, घर का कोई मर जाय तो, रोग फैले तो, हार जांय तो सब प्रकार से वह गाली सुनता है इसी से—

अनेक प्रकार के जीव, विचित्र स्वभाव, अलग अलग धर्म्म और रुचि, विचित्र विचित्र रंग काम, क्रोध, मद, ईर्षा, अभिमान, दम्भ, पैशुन्य, आनृत्य इत्यादि अनेक प्रकार के स्वभाव बना कर लम्बा चौड़ा गौरख धंधा का जाल फैला कर इस घनचक्कर में सब को घुमा दिया है इसी से—

एक बिचारा सुख से अपना काल क्षेप करता है कुछ उस के काम में विघ्न डाल कर व्यर्थ बिना बात बैठे बिठाये उस को रुला दिया, कोई दुःख में है उस को एक संग सुख दे दिया इसी से—

एक को घटाया एक को बढ़ाया, एक को बनाया एक को बिगाड़ा, राई को पर्वत किया पर्वत को राई, राजा को रंक किया रंक को राजा, भरी ढलकाया खाली भरा इसी से—

उदार और पंडित दरिद्र मूर्ख धनवान और सुन्दर रसिक को कुरूपा कूढ़ स्त्री, कुरसिक को सुन्दर वा रसिक स्त्री, सुस्वामी को कुसेवक, कुसेवक को सुस्वामी इत्यादि संसार में कई बातें बेजोड़ हैं इसी से—

प्रत्यक्ष लोग देखते हैं कि हमारे बाप दादा इत्यादि मर गए और नित्य लोग मरते जाते हैं तब भी जो लोग जीते हैं जानते हैं कि संसार का पट्टा मैंने लिखवा लिया है पहिले तो मैं मरूहींगा नहीं और मरा भी तो सब मेरे साथ जायगा इसी से–

सच है मनुष्य यह कैसे सोचै, जो हम बैठे हैं, खाते पीते हैं, चैन करते हैं कभी सोचते नहीं कि हमारी दशान्तर भी होगी वही हम कैसे मरैंगे कदापित नहीं आता इसी से–

मजा है तमाशा है खेल है धूम है, दिल्लगी है मसखरापन है, लुच्चापन है, हंसी है, मूर्खता है, खिलौने हैं, बालक हैं, पट्ठे हैं, नासमझ है, जड़ हैं मोहित हैं, उल्लू के पट्ठे हैं, सब परन्तु उस के समझ में और उस के लोगों के समझ में भेद है इसी से–

उस के नाते परस्पर सब केवल सगे भाई बहन हैं पर लोग जाति कुजाति वर्ण आश्रम नीचे ऊंच राजा प्रजा स्त्री पुत्र इत्यादि अनेक भेद समझते हैं इसी से–

यह उसी कि विलक्षणपन है कि हिन्दुओं को सब के पहिले उस ने लक्ष्मी और सरस्वती दी और चिर काल तक उन को इस देश में स्थित किया परन्तु अब वह हिन्दू दास धर्म्म शिक्षित हो रहे हैं इसी से–

यह उसी का विलक्षणपन है जिस भूमि में उदयन, शूद्रक, विक्रम, भोज ऐसे राजा कालीदास, वाण से पंडित दे उसी भूमि में हमारे तुम्हारे से लोग हैं, यह उसी का विलक्षणपन है कि मुसलमानों ने हिन्दुस्थान को बहुत दिन तक भोगा अब अंगरेज भोगते हैं, मुसलमानों को अपने पक्षपात हैं अंगरेजों को अपनी का, हिन्दू दोनों की समझ में मूर्ख हैं इसी से–

यह उसी का विलक्षणपन है कि हिन्दू निर्लज्ज हो गए हैं, ऐसे समय में जब कि सब आगे बढ़ा चाहते हैं ये चूकते हैं और पीछे ही रहे जाते हैं, विशेष कर के सब संसार का आलस्य पश्चिमोत्तर देश वासियों में घुसा है और अपने को भूल रहे हैं क्षुद्रपना नहीं छूटता इसी से–

यह उसी का विलक्षणपना है कि हम लोग समाचार पत्र लिखते हैं और यह अभिमान करते हैं कि हमारे इन लेखों से हमारे भाइयों का कुछ उपकार हो, भला नक्कारखाने में तूती की आवाज कौन सुनता है, सब अपने रंग में उस की माया से मस्त हैं उन को क्यौं नहीं छोड़ते हैं क्यौं नहीं विराग करते, संसार मिटै हम को क्या हम कौन जो कहैं, पर यह नहीं समझते, हम अपने ही अभिमान में चूर हैं यह भी सब उसी की माया है इसी से हम कहते हैं ईश्वर बड़ा विलक्षण है।

[अनुमानित रचनाकाल 1874 से 1878 ई. के बीच। स्तोत्र पंचरत्न खड्गविलास प्रेस बांकीपुर से पुस्तिकाकार छपा था। इसकी भूमिका भारतेन्दु ने 1882 में लिखी थी। इसकी द्वितीय आवृत्ति 1886 ई. में हुई। इसमें 'ईश्वर बड़ा विलक्षण है' लेख शामिल कर लिया गया था। संपा.]

स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन

स्वामी दयानन्द सरस्वती और बाबू केशवचन्द्रसेन के स्वर्ग में जाने से वहां एक बेर बड़ा आन्दोलन हो गया। स्वर्गवासी लोगों में बहुतेरे तो इन से घृणा कर के धिक्कार करने लगे और बहुतेरे इन को अच्छा कहने लगे। स्वर्ग में भी 'कंसरवेटिव' और 'लिबरल' दो दल है। जो पुराने जमाने के ऋषिमुनि यज्ञ कर कर के या तपस्या कर के अपने अपने शरीर को सुख सुखा कर और पच पच कर मर के स्वर्ग हुए हैं उन के आत्मा का दल 'कंसरवेटिव' है, और जो अपनी आत्मा ही की उन्नति से वा और किसी अन्य सार्वजनिक उच्च भाव संपादन करने से या परमेश्वर की भक्ति से स्वर्ग में गए हैं वे 'लिवरल' दलभक्त हैं। वैष्णव दोनों दल के क्या दोनों से खाजिर थे, क्योंकि इन के स्थापकगण तो लिबरल दल के थे किन्तु अब ये लोग 'रेडिकल्स' क्या महा महा रेडिकल्स हो गए हैं। विचारे बूढ़े व्यासदेव को दोनों दल के लोग पकड़ पकड़ कर ले जाते और अपनी-अपनी सभा का 'चेयरमैन' बनाते थे, और बेचारे व्यासजी अपने प्राचीन अव्यवस्थित स्वभाव और शील के कारण जिस की सभा में जाते थे वैसी ही वक्तृता कर देते थे। कंसरवेटिवों का दल प्रबल था; इस का मुख्य कारण यह था कि स्वर्ग के जमींदार इन्द्र, गणेश प्रभृति भी उन के साथ योग देते थे, क्यौंकि बंगाल के ज़मींदारों की भांति उदार लोगों की बढ़ती से उन बेचारों को विविध सर्वोपरि बलि या मान न मिलने का डर था।

कई स्थानों पर प्रकाश सभा हुई। दोनों दल के लोगों ने बड़े आतंक से वक्तृता दी। 'कंसरवेटिव' लोगों का पक्ष समर्थन करने को देवता भी आ बैठे और अपने अपने लोकों में भी उस सभा की शाखा स्थापन करने लगे। इधर 'लिबरल' लोगों की सूचना प्रचलित होने पर मुसलमानी स्वर्ग और जैन स्वर्ग तथा क्रिस्तानी स्वर्ग से पैगम्बर सिद्ध, मसीह प्रभृति हिन्दू स्वर्ग में उपस्थित हुए और 'लिबरल' सभा में योग देने लगे। बैकुंठ में चारों ओर इसी की धूम फैल गई। 'कंसरवेटिव' लोग कहते, "छिः दयानन्द कभी स्वर्ग में आने के योग्य नहीं; इन से 1. पुराणों का खंडन किया, 2. मूर्ति पूजा की निन्दा किया, 3. वेदों का अर्थ उलटा पुलटा कर डाला, 4. दश

नियोग करने की विधि निकाली, 5. देवताओं का अस्तित्व मिटाना चाहा, 6. और अन्त में संन्यासी हो कर अपने को जलवा दिया। नारायण! नारायण! ऐसे मनुष्य की आत्मा को कभी स्वर्ग में स्थान मिल सकता है, जिस ने ऐसा धर्म्म विप्लव कर दिया और आर्य्यावर्त्त को धर्म्म बहिर्मुख किया।''

एक सभा में काशी के विश्वनाथ जी ने उदयपुर के एकलिंग जी से पूछा ''भाई! तुम्हारी क्या मत मारी गई जो तुम ने ऐसे पतित को अपने मुंह लगाया और अब उस के दल के सभापति बने हो, ऐसा ही करना है तो जाओ लिबरल लोगों से योग दो।'' एकलिंग जी ने कहा ''भाई, हमारा मतलब तुम लोग नहीं समझे। हम उस की बुरी बातों को न मानते न उस का प्रचार करते, केवल अपने यहां के जंगल की सफाई का कुछ दिन उसको ठेका दिया, बीच में वह मर गया तब उस का माल मता ठिकाने रखवा दिया तो क्या बुरा किया।''

कोई कहता 'केशवचन्द्रसेन! छिः छिः! इस ने सारे भारतवर्ष का सत्यानाश कर डाला। 1. वेद पुराण सब को मिटाया, 2. क्रिस्तान मुसलमान सब को हिन्दू बनाया, 3. खाने पीने का विचार कुछ न बाकी रक्खा। 4. मद्य की तो नदी बहा दी। हाय, हाय! ऐसी आत्मा क्या कभी बैकुण्ठ में आ सकती है।''

ऐसे ही दोनों के जीवन की समालोचना चारों ओर होने लगी।

लिबरल लोगों की सभा भी बड़ी धूमधाम से जमती थी। किन्तु इस सभा में दो दल हो गए थे, एक जो केशव की विशेष स्तुति करते, दूसरे वे जो दयानन्द को विशेष आदर देते थे। कोई कहता, अहा धन्य दयानन्द जिस ने आर्य्यावर्त्त के निंदित आलसी मूर्खों की मोह निद्रा भंग कर दी। हजारों मूर्खों को ब्राह्मणों के (जो कंसरवेटिवों के पादरी और व्यर्थ प्रजा का द्रव्य खाने वाले हैं) फंदे से छुड़ाया। बहुतों को उद्योगी और उत्साही कर दिया। वेद में रेल, तार, कमेटी, कचहरी दिखा कर आर्य्यों की कटती हुई नाक बचा ली। कोई कहता धन्य केशव! तुम साक्षात् दूसरे केशव हो। तुमने बंग देश की मनुष्यनदी के उस वेग को, जो कृश्चन समृद्ध में मिल जाने को उच्छलित हो रहा था, रोक दिया। ज्ञानकर्म का निरादर कर के परमेश्वर का निर्मल भक्ति मार्ग तुम ने प्रचलित किया।

कंसरवेटिव पार्टी में देवताओं के अतिरिक्त बहुत लोग थे जिन में, याज्ञवल्क्य प्रभृति कुछ तो पुराने ऋषि थे और कुछ नारायणभट्ट, रघुनन्दनभट्टाचार्य, मंडनमिश्र, प्रभृति, स्मृति ग्रन्थकार थे। सुना है कि विदेशी स्वर्ग के कुछ 'शीआ' लोगों ने भी इन के साथ योग किया है।

लिबरल दल में चैतन्य प्रभृति आचार्य्य, दादू, नानक, कबीर प्रभृति भक्त और ज्ञानी लोग थे। अद्वैतवादी भाष्यकार आचार्य्य पंचदशीकार प्रभृति पहले दलमुक्त नहीं होने पाये। मिस्टर ब्रैडला की भांति इन लोगों पर कंसरवेटिवों ने बड़ा आक्षेप किया

किन्तु अन्त में लिबरलों की उदारता से उन के समाज में इन को स्थान मिला था।

दोनों दलों के मेमोरियल तैयार कर स्वाक्षरित हो कर परमेश्वर के पास भेजे गए—एक में इस बात पर युक्ति और आग्रह प्रगट किया था कि केशव और दयानन्द कभी स्वर्ग में स्थान पावैं और दूसरे में इस का वर्णन था कि स्वर्ग में इन को सर्वोत्तम स्थान दिया जाय।

ईश्वर ने दोनों दलों के डेप्यूटेशन को बुला कर कहा ''बाबा अब तो तुम लोगों की 'सैल्फगवर्नमेंट' है। अब कौन हम को पूछता है, जो जिस के जी में आता है कहता है। अब चाहे वेद क्या संस्कृत का अक्षर भी स्वप्न में भी न देखा हो पर धर्म्म विषय पर वाद करने लगते हैं। हम तो केवल अदालत या व्यवहार या स्त्रियों के शपथ खाने को ही मिलाए जाते हैं। किसी को हमारी डर है? कोई भी हारा सच्चा 'लायक' है? भूतप्रेत ताजिया के इतना भी तो हमारा दरजा नहीं बचा। हम को क्या काम चाहे बैकुंठ में कोई आवे। हम जानते हैं चारों लड़कों (सनक आदि) ने पहले ही से चाल बिगाड़ दी है। क्या हम अपने बिचारे जयविजय को फिर राक्षस बनवावैं कि किसी का रोकटोक करें। चाहें सगुन मानो चाहे निर्गुन, चाहे द्वैत मानो चाहे अद्वैत, हम अब न बोलैंगे। तुम जानो स्वर्ग जाने।''

डेप्यूटेशन वाले परमेश्वर की ऐसी कुछ खिजलाई हुई बात सुन कर कुछ डर गए। बड़ा निवेदन सिवेदन किया। कोई प्रकार से परमेश्वर का रोश शान्त हुआ। अन्त में परमेश्वर ने इस विषय के विचार के हेतु एक 'सिलेक्टकमेटी' स्थापन की। इस में राजा राममोहन राय, व्यासदेव, टोडरमल, कबीर प्रभृति भिन्न भिन्न मत के लोग चुने गए। मुसलमानी स्वर्ग से एक 'इमाम', क्रिस्तानी से 'लूथर', जैनी से पारसनाथ, बौद्धों से नागार्जुन और अफरीका से सिटोवायो के बाप को इस कमेटी का 'एकूस अफीशियो मेंबर' किया। रोम के पुराने 'हरकुलिस' प्रभृति देवता तो अब गृह संन्यास लेकर स्वर्ग ही में रहते हैं और पृथ्वी से अपना सम्बन्ध मात्र छोड़ बैठे हैं तथा पारसियों के 'जरदुश्तजी' को 'कारेस्पांडिग आनरेरी मेंबर' नियत किया और आज्ञा दिया कि तुम लोग इस सब कागज पत्र देख कर हम को रिपोर्ट करो। उन की ऐसी भी गुप्त आज्ञा थी कि एडिटरों की आत्मागण को तुम्हारी किसी 'काररवाई' का समाचार तब तक न मिलै जब तक कि रिपोर्ट हम न पढ़ लें नहीं ये व्यर्थ चाहे कोई सुनै चाहे न सुनै अपनी टांय टांय मचा ही देंगे।

सिलेक्ट कमेटी का कोई अधिवेशन हुआ। सब कागज पत्र देखे गए। दयानन्दी और केशवी ग्रन्थ तथा उन के अनेक प्रत्युत्तर और बहुत से समाचार पत्रों का मुलाहिजा हुआ। बालशास्त्री प्रभृति कई कंसरवेटिव और द्वारकानाथ प्रभृति लिबरल नव्य आत्मागणों की इस में साक्षी ली गई। अन्त में कमेटी या कमीशन ने जो रिपोर्ट किया उस की मर्म बात यह थी कि—

''हम लोगों की इच्छा न रहने पर भी प्रभु की आज्ञानुसार हम लोगों ने इस

मुकद्दमे के सब कागज पत्र देखे। हम लोगों ने इन दोनों मनुष्यों के विषय में जहां तक समझा और सोचा है निवेदन करते हैं। हम लोगों की सम्मति में इन दोनों पुरुषों ने प्रभु की मंगलमयी सृष्टि का कुछ विघ्न नहीं किया वरंच उस में सुख और संतति अधिक हो इसी में परिश्रम किया। जिस चण्डाल रूपी आग्रह और कुरीति के कारण मनमाना पुरुष धर्म्मपूर्व्वक न पाकर लाखों स्त्री कुमार्ग गामिनी हो जाती हैं, लाखों विवाह होने पर भी जन्म भर सुख नहीं भोगने पातीं, लाखों गर्भ नाश होते और लाखों ही बाल हत्या होती हैं, उस पापमयी परम नृशंस रीति को इन लोगों ने उठा देने में अपने शक्यभर परिश्रम किया। जन्मपत्री की विधि के अनुग्रह से जब तक स्त्री पुरुष जीयें एक तीर घाट एक मीर घाट रहैं, बीच में इस वैमनस्य और असन्तोष के कारण स्त्री व्यभिचारिणी पुरुष विषयी हो जायं, परस्पर नित्य कलह हो, शान्ति स्वप्न में भी न मिलैं, वंश न चलै, यह उपद्रव इन लोगों से नहीं सहे गये। विधवा गर्भ गिरावै, पंडित जी या बाबू साहब यह सह लेंगे, वरंच चुपचाप उपाय भी करा देंगे, पाप को नित्य छिपावैंगे, अन्ततोगत्वा निकल ही जायं तो सन्तोष करैंगे, इस दोष को इन दोनों ने निःसन्देह दूर करना चाहा। सवर्ण पात्र न मिलने से कन्या को वर मूर्ख अन्ध वरंच नपुंसक मिले तथा वर को काली कर्कशा कन्या मिले जिस के आगे बहुत बुरे परिणाम हों, इस दुराग्रह को इन लोगों ने दूर किया। चाहे पढ़े हों चाहे मूर्ख, सुपात्र हों कि कुपात्र, चाहे प्रत्यक्ष व्यभिचार करें या कोई भी बुरा कर्म करें, पर गुरु जी हैं, पंडित जी हैं, इन का दोष मत कहो, कहो गे तो पतित होंगे, इन को दो, इन को राजी रक्खो, इन सत्यानाश संस्कार को इन्होंने दूर किया। आर्य्य जाति दिन दिन ह्रास हो, लोग स्त्री के कारण, धन के वा नौकरी व्यापार आदि के लोभ से मद्यपान के चसके से, बाद में हार कर राजकीय विद्या का अभ्यास कर के मुसलमान या क्रिस्तान हो जायं, आमदनी एक मनुष्य की भी बाहर से न हो केवल नित्य व्यय हो, अन्त में आर्य्यो का धर्म्म और जाति कथाशेष रह जाय, किन्तु जो बिगड़ा सो बिगड़ा फिर जाति में कैसे आवेग, कोई भी दुष्कर्म किया तो छिप के क्यौं नहीं किया, इसी अपराध पर हजारों मनुष्य अर्य्य पंक्ति से हर साल छूटते थे, उस को इन्होंने रोका। सब से बढ़ कर इन्होंने यह कार्य किया, सारा आर्य्यावर्त्त जो प्रभु से विमुख हो रहा था, देवता विचारे तो दूर रहे, भूत प्रेत पिशाच मुरदे, सांप के काटे, बाघ के मारे, आत्म हत्या कर के मरे, जल, दब या डूब कर मरे लोग, यही नहीं मुसलमानी परी पैगम्बर औलिया शहीद वीर ताजिया गाजी मियां, जिन्होंने बड़ी मूर्ति तोड़ कर और तीर्थ पाट कर आर्य्य धर्म्म विध्वंस किया, उन को मानने और पूजने लग गए थे विश्वास तो मानो छिनाल का अंग हो रहा था, देखते सुनते लज्जा आती थी कि हाय ये कैसे अर्य्य हैं, किस से उत्पन्न हैं, इस दुराचार की ओर से लोगों का अपनी वक्तृताओं के थपेड़े के बल से मुँह फेर कर सारे अर्य्यावर्त को शुद्ध 'लायल' कर दिया।

भीतरी चरित्र में इन दोनों के जो अन्तर हैं वह भी निवेदन कर देना उचित है। दयानन्द की दृष्टि हम लोगों की बुद्धि में अपनी प्रसिद्धि पर विशेष रही। रंग रूप भी इन्होंने कई बदले। पहले केवल भागवत का खण्डन किया। फिर सब पुराणों का। फिर कई ग्रन्थ माने कई छोड़े। अपने काम के प्रकरण माने अपने विरुद्ध को क्षेपक कहा। पहले दिगम्बर मिट्टी पोते महात्यागी थे। फिर संग्रह करते करते सभी वस्त्र धारण किये। भाष्य में भी रेल तार कई अर्थ जबरदस्ती किए। इसी से संस्कृत विद्या को भली भांति न जानने वाले ही प्रायः इन के अनुयायी हुए। जाल को छुरी से न काट कर दूसरे जाल ही से जिस को काटना चाहा इसी से दोनों आपस में उलझ गए और इस का परिणाम गृह विच्छेद उत्पन्न हुआ।

'केशव ने इन के विरुद्ध जाल काट कर परिष्कृत पथ प्रकट किया। परमेश्वर से मिलने मिलाने की आड़ या बहाना नहीं रखा। अपनी भक्ति उच्छलित लहरों में लोगों में लोगों का चित्त आर्द्र कर दिया। यद्यपि ब्राह्म लोगों में सुरा मांसादि का प्रचार विशेष है किन्तु इस में केशव का दोष नहीं। केशव अपने अटल विश्वास पर खड़ा रहा। यद्यपि कूचबिहार के सम्बन्ध करने से और यह कहने से कि ईशामसीह आदि उस से मिलते हैं अन्तावस्था के कुछ पूर्व उन के चित्त की दुर्बलता प्रकट हुई थी, किन्तु वह एक प्रकार का उन्माद होगा वा जैसे बहुतेरे धर्म प्रचारकों ने बहुत बड़ी बातें ईश्वर की आज्ञा बतला दी वैसे ही यदि इन बेचारे ने एक दो बात की तो क्या पाप किया। पूर्वोक्त कारणों ही से केशव का मरने पर जैसा सारे संसार में आदर हुआ वैसा दयानन्द का नहीं हुआ। इस के अतिरिक्त इन लोगों के हृदय के भीतर छिपा कोई पुन्य पाप रहा हो तो उस को हम लोग नहीं जानते इस को जानने वाला केवल तू ही है।''

इस रिपोर्ट पर विदेशी मेंबरों ने कुछ क्रुद्ध होकर हस्ताक्षर नहीं किया।

रिपोर्ट परमेश्वर के पास भेजी गयी। इस को देख कर इस पर क्या आज्ञा हुई और वे लोग कहां भेजे गए यह जब हम भी वहां जायंगे और फिर लौट कर आ सकैंगे तो पाठक लोगों को बतलावैंगे। या आप लोग कुछ दिन पीछे आप ही जानोगे।[1]

[मित्रविलास, खंड 8, सं. 40, 19 जून, सन 1885 ई.]

क़ानून ताज़ीरात शौहर[1]

पहिला बाब[2]

तमहीद[3]

चूंकि मुनासिब मालूम हुआ कि एक कानून ऐसा इजरा किया जावे जिस से बाद शादी के जौजः[4] अपने शौहरों पर बखूबी हकूमत कर सकें और इस सबब से उन दोनों में निफ़ाक[5] न पैदा हो लेहाजा कानून हस्बजैल[6] मुरौविज[7] किया गया।

दफ़ा[8] (1) इस क़ानून का नाम ताज़ीरात शौहर होगा, हिन्दुस्थान में कोई औरत वा मर्द जो शादी कर लेगा वह क़ानूनन इस का पाबन्द[9] समझा जायगा।

मुस्तसना[10]

जो अहूल[11] यूरोप हिन्दुस्थान में आकर शादी करेंगे वह इस क़ानून से मुस्तसना समझे जायंगे।

दूसरा बाब

बायन असर[12] अल्फ़ाज़[13]

दफः (2) किसी औरत के तहत हुकूमत[14] में कोई शै[15] जो कि ज़ाहिरा[16] मनकूलः[17] मगर बरौर हुक्म औरत के गैरमनकूलः[18] है उस से मुराद[19] शौहर है।

तमसीलात[20]

अलिफ़–सन्दूक वग़ैरह को शौहर नहीं कह सक्ते क्यौंकि वह जायदाद[21] मनकूलः से हैं मगर अपने को खुद बखुद नहीं चला सक्ते हैं।

बे–गाय, बैल, कुत्ता, गदहा वग़ैरह अगरचे खुद बखुद चल सक्ते हैं मगर वह अपने औरतों की हुकूमत से जायदाद ग़ैरमनकूलः नहीं हो जाते, इस वास्ते लफ्ज़ शौहर उन पर असर पज़ीर[22] न होगा।

---

1. पति दंड विधान, 2. प्रकरण, 3. भूमिका, 4. पत्नी, 5. झगड़ा, 6. निम्न के अनुसार, 7. प्रचलित, 8. धारा, 9. आबद्ध, 10. मुक्त, 11. निवासी, 12. परिभाषा, 13. शब्दों, 14. शासन के अधीन, 15. वस्तु, 16. प्रकट में, 17. चल, 18. अचल 19. तात्पर्य, 20. उदाहरण, 21. सम्पत्ति, 22. प्रभावान्वित।

जीम—चूंकि ऐसी जायदाद जो कि ज़ाहिरा मनकूलः हो मगर औरत के हुक्म से फ़ौरन ग़ैर मनकूलः हो जावे सिर्फ शादीकरदः[1] मर्द हैं, लेहाज़ा लफ़्ज शौहर से मुराद नहीं उन्हीं लोगों से होगी।

दफः (3) शौहर जोरू की जायदाद है, इस वास्ते उस पर उस को हर किस्म[2] का अखतियार हासिल[3] है।

तमसील

अपनी जायदाद को लोग जिस तरह बना बिगाड़ सकते हैं, उसी तरह जोरुओं को अपने शौहर पर जद व कोब[4] करना वा खाना न देना वग़ैरह वग़ैरह का अखतियार हासिल है।

तीसरा बाब
सजा

दफः (4) इस क़ानून में मुजरिमों[5] को हस्बजैल सज़ा दी जायगी।

अलिफ़—क़ैद यानी शौहर को मकान की चारदीवारी से बाहर न जाने देना, यह क़ैद दोनों तरह की होगी, वा[6] मेहनत व बिला[7] मेहनत—अफ़ज़ मेहनत से यह मुराद है कि शौहर क़ैद भी रहे और गालियों की बौछार भी बरदाश्त करता रहे—लफ़्ज़ बिना मेहनत से मुराद है कि सिर्फ बाहर से जाने पाये।

बे—अलग बिस्तर या दूसरे मकान में सोलाना।

जीम—हमेशा के वास्ते गुलामी[8] करानी।

दाल—जुर्मानः यानी किसी क़िस्म का नक्द या जेवर लेकर क़सूर मुआफ़ करना।

दफः (5) इस क़ानून में भी सज़ाय मौत सब से बड़ी सज़ा है मगर आदमी के जान को उन की बदन से अलग कर देना यहां सजाय मौत नहीं, यहां लफ़्ज़ सज़ाय मौत से यह मुराद है कि औरत रूठ कर अपने बाप या भाई के घर चली जाय और फिर न आये।

दफः (6) सज़ाय हब्सदबाम[9] बअबूर[10] दरियाशोर[11] से इस क़ानून में यह मुराद है कि औरत चन्द अरसः के वास्ते शौहर को अपने घर में न आने दे या चन्द अरसः के वास्ते खफ़ा होकर अपने बाप के घर में चली जावै॥

दफः (7) मुक़द्दमात सर्सरी[12] के वास्ते हस्बजैल छोटी छोटी सज़ायें मुक़र्रर हैं—

अलिफ़—न बोलना। बे—भौं चढ़ाना। जीम—रोना। दाल—बकना।

---

1. विवाहित, 2. प्रकार, 3. प्राप्त, 4. मार-पीट, 5. दोषियों 6. सहित, 7. बिना, 8. दासता, 9. सदा का कारावास, 10. पार कर, 11. समुद्र, 12. साधारण।

चौथा बाब
मुस्तसनियात[1]

दफ़ः (8) हर बशर[2] जो खुदा के यहां से जामय[3] औरत पहिना के उतारा गया है वह इस क़ानून से मुस्तसना है।

दफ़ः (9) कोई जुर्म मुन्दर्जे क़ानून हाजा अगर बहुक्म औरत किया जाय तो इस क़ानून से मुस्तसना है।

दफ़ः (10) कोई शख्स जो कि दरहक़ीक़त फ़क़ीरी अखतियार करे और दुनिया छोड़ दे वह बाद उस लमहः[4] के जिस में कि दुनिया छोड़ी है इस क़ानून से मुस्तसना है।

दफ़ः (11) कोई शख्स जो अपने जोरू को तिलाक दे, वह बाद उस लमहः के जब कि उस ने अपनी औरत को तिलाक दिया है उस लहजः[5] के पेश्तर तक जब कि वह दूसरी औरत से सरोकार क़ायम करे इस कानून से मुस्तसना है।

पांचवां
इमदाद[6]...जुर्म

दफ़ः (12) कोई शौहर जो कि दूसरे शौहर को किसी औरत के बरखिलाफ बरगलाएगा[7] तो यह समझा जायगा कि उस ने जुर्म करने में इमदाद की।

दफ़ः (13) जिस वक्त कोई शौहर किसी दूसरे शौहर के जुर्म करने के वक्त मौजूद रहे और उस को उस जुर्म से न बाज रक्खे[8] तो वह भी जुर्म की इमदाद करने वाला समझा जायगा।

मुस्तसनियात

अलिफ़—कोई औरत वे मर्द जिन की शादी नहीं हुई है इमदाद करने के जुर्म से मुस्तसना हैं।

बे—कोई शख्स जो बजोर बदमाशी या दौलत या और किसी सबब से जुर्म करदः शौहर की औरत के अखतियार के बाहर है वह इस क़ानून से मुस्तसना है।

जीम—मगर बगैर शादी किए हुए भी वह लोग जो किसी औरत के तहत हकूमत में हैं मुस्तसना न समझे जायंगे।

तमसीलात

अलिफ़—ज़ैद का बकर नाम का एक भतीजा है जिस की शादी नहीं हुई है,

---

1. मुक्तगण, 2. मनुष्य, 3. वस्त्र, 4. क्षण, 5. समय, 6. सहायता, 7. बहकावेगा, 8. रोके।

जैद बकर के बहकाने से किसी मेलः में गया और वहां रात को देर तक रहा पस जैद मुजरिम हुआ, मगर बकर जो कि दूसरे घर में रहता है और औरत की हकूमत से बाहर है इमदाद जुर्म की तुहमत उस पर नहीं हो सकती।

बे–खालिद एक नब्बाब है जिस के सबब से अमरू की गुजर औक़ात[1] होती है, खालिद ने किसी शब महफिल में अमरू को अपने साथ रहने पर मजबूर किया मगर चूंकि वह दौलतमन्द है इस वास्ते इमदाद जुर्म के इत्तिहाम[2] से मुस्तसना है।

जीम–ज़ैद बकर का छोटा भाई है और अपने भावज की पकाई हुई रोटी खाता है। अगर ज़ैद व बकर दोनों किसी शब को देर तक बाहर रहे तो ज़ैद इमदाद जुर्म करने से सजायाब[3] हो सक्ता है।

दफः (14) इमदाद जुर्म करने वाले मुजरिमों की सज़ा उन की अदालत में होगी अगर वे असल मुजरिम की अदालत के हद अखतियार[4] के बहार हैं।

तमसील

अलिफ़–ज़ैद असल मुजरिम है और बकर उस का मददगार है मगर दोनों की शादी हो चुकी है तो ज़ैद की सजा उस की जोरू करैगी और बकर की सज़ा ज़ैद की जोरू के बहकाने से बकर की जोरू करैगी।

दफः (15) जुर्म के इमदाद करनेवालों की सज़ा व नजर तम्बीह[5] सिर्फ़ सर्सरी तौर से काफ़ी होगी।

छठा बाब
जुर्म खिलाफ अदब अदालत

दफः (16) लफ्ज़ अदालत से मुराद यहां सिर्फ़ शादी की हुई जोरू समझना चाहिए।

दफः (17) जो शौहर अपनी जोरू से लड़ना चाहे या लड़े या ग़ैर शख्स जो उस से लड़ता हो उस की इमदाद करे तो उस को किसी किस्म की क़ैद की सज़ा दी जायगी लेकिन अगर अदालत की राय में यह जुर्म संगीन[6] मालूम हो तो हब्सदबाम बअबूर दरयायशोर की सज़ा देने का भी अदालत को अखतियार है।

दफः (18) जो शख्स अपने किसी बुजुर्ग या रिश्तेदार या दोस्त या लड़कों को अपने तरफ कर के जोरू पर हावी[7] होने का इरादः करे उस की क़ैद की सज़ा या अलग सोने की सज़ा या सिर्फ गाली वग़ैरह दी जायगी।

दफः (19) जो शख्स सिवा अपनी औरत के और किसी औरत पर इश्क़[8] ज़ाहिर करैगा, तो वह अदालत का दुश्मन समझा जायगा।

---

1. कालयापन, 2. दोष, 3. दंडित, 4. अधिकार की सीमा, 5. शासन की दृष्टि से, 6. भारी, 7. प्रभाव डालने, 8. आसक्ति।

खुलासः

अपनी जोरू के सिवा किसी औरत पर मेहरबानी की नजर करना ही जुर्म है, चाहे वह किसी सबब से क्यौं न हो।

तमसीलात

सुग़रा ज़ैद की जोरू है और कुबरा ज़ैद की परोसिन है मगर कुबरा ग़रीब है इस वास्ते ज़ैद कभी कभी कुबरा की कुछ मदद करता है पस ज़ैद मुजरिम जुर्म मुन्दरज दफः हाजा[1] का हुआ।

अलिफ़—अदालत को अखतियार हासिल है कि बग़ैर क़सूर किए हुए भी शौहर को इस जुर्म का मुजरिम क़रार दे, मुजरिम का यह सबूत देना कि वह मुर्तकिब[2] इस जुर्म का नहीं हुआ क़ाबिल समाअत[3] न होगा।

बे—अदालत के खौफ़ से झूठ मूठ भी एक मर्तबः जुर्म का इक़रार कर लेना किसी शौहर को मुजरिम बनाने के वास्ते काफ़ी होगा।

जीम—बग़ैर जुर्म के इस क़सूर में मुजरिम बनानेवाली अदालत थानी औरत सिनूरसीदः[4] या बदसूरत होनी चाहिए या जिस का शौहर सिनरसीदः या मकरूहसूरत[5] हो उस औरत को भी इस किस्म का जुर्म कायम[6] करने का अखतियार हासिल है।

दाल—अगर नौजवान या खूबसूरत औरत अखतियारात मुन्दर्जे बाला हासिल करना चाहे तो उस को अपनी बदमिज़ाजी[7] क़बूल करनी पड़ैगी।

दफः (20) इस क़ानून में जितनी क़िस्म की सज़ायें लिखी हैं वह सब या उन में से चन्द दफः 19 के मुजरिम को दी जा सकती है।

सातवां बाब
जुर्म खिलाफ फौज सरकारी

दफः (21) घर के लड़के बर्री[8] फौज और मजदूरनियां बहरी[9] फौज समझी जायंगी।

दफः (22) जो शख्स अपने किसी लड़की या अपने किसी लड़के को उन के मां के बरखिलाफ[10] बोलने या मजदूरनियों को बग़ैर हुक्म बीवी के कारम करने को कहैगा तो वह फौज के बरखिलाफ बलवः करने का मुजरिम क़रार दिया जायगा।

दफः (23) जो मुजरिम जुर्म मुन्दर्जे दफः 22 का होगा उस को गाली बकने या झिड़की देने या रोने की सजा दी जायगी।

---

1. पूर्वोक्त, 2. करनेवाला, 3. सुनने के योग्य, 4. प्रौढ़ा या वृद्धा, 5. घृणित रूप वाली, 6. स्थापित, 7. कर्कशापन, 8. स्थल की, 9. समुद्री, 10. विरुद्ध।

आठवां बाब
जुर्म बरखिलाफ अमन[1] शहर

दफः (24) जो शख्स अपने दोस्तों या रिश्तःदारों को जो जोरू की राय के बरखिलाफ हैं अकसर अपने मकान में जमा करैगा या ज्यादातर जन की दावत करैगा वह इस बात का मुजरिम समझा जायगा कि उस ने शहर के अमन में फरक[2] डाला।

दफः (25) जो शख्स किसी रिश्तःदार या बुजुर्ग को घर में अपने जोरू के समझाने के वास्ते बुलावेगा वह भी शहर के अमन में फरक डालने का मुजरिम करार दिया जायगा।

दफः (26) दफः 24 व 25 के मुजरिमों की सज़ा गाली वग़ैरः या जुर्म संगीन हो तो हब्सदवाम बअबूर दरियायशोर हो सकती है।

नवां बाब
अदूलहुक्मी[3]

दफः (27) जो अपनी जोरू का हुक्म न मानेगा वह अदूलहुक्मी का मुजरिम क़रार दिया जाएगा।

तमसीलात

अलिफ़—जोरू ने हुक्म दिया कि कल शाम तक फलाना जेवर या कपड़ा बन कर आवै मगर शौहर तंगदस्ती[4] के सबब से नहीं ला सकता इस वास्ते मुजरिम हुआ।

बे—जोरू से एक दूसरी औरत से लड़ाई है और वह लड़ाई भी महज़[5] बे बुनियाद[6] है। दोनों के शौहर आपस में करीबी[7] रिश्तःदार हैं, एक शौहर के यहां कोई शादी या गमी[8] का जरूरी काम पेश आया और दूसरे शौहर को लड़ाई के सबब से उस की जोरू ने पहिले के यहां जाने से बाज़ रखना चाहा मगर शौहर शर्त आदमियत से बाज़ न रहा इस वास्ते वह मुजरिम जुर्म दफः हाज़ा का हुआ।

जीम—जोरू को शैतानपरस्ती[9] पर एतक़ाद[10] है मगर शौहर एक पढ़ा लिखा आदमी है। लड़कों की ख़ैरियत के वास्ते जोरू ने शौहर को किसी पीर की नेयाज़[11] करने को कहा मगर शौहर ने ईमान के पाबन्दी से उस को नहीं माना लेहाज़ा वह मुजरिम दफः हाज़ा का हुआ।

दफः (28) मुजरिम जुर्म अदूलहुक्मी को जुर्मानः या क़ैद या दोनों किस्म की सजायें दी जायंगी।

---

1. शान्ति, 2. भंग करना, 3. आज्ञा की अवहेलना, 4. धनाभाव, 5. केवल, 6. बेजड़, 7. पास की, 8. शौक से, 9. भूतपूजना, 10. विश्वास, 11. मिन्नत या चढ़ावा।

दसवां बाब
जुर्म दिलशिकनी[1]

दफः (29) जो शौहर अपनी जोरू की दिलशिकनी करेगा वह दिलशिकनी के जुर्म का मुजरिम समझा जायगा।

तमसीलात

अलिफ़—शौहर ने हीलतन[2] या सरीहतन[3] कोई हरकत[4] ऐसा नहीं की कि उस की जोरू की दिलशिकनी हो मगर जोरू ने किसी हरकत से अपनी दिलशिकनी मान ली तो वह भी दिलशिकनी होगी और उस में शौहर को कोई उज़्र[5] न होगी।

बे—शौहर किसी महफ़िल में गया और वहां ब मजबूरी उस को रंडियों का तमाशा देखना पड़ा तो यह भी दिलशिकनी हुई।

जीम—शौहर किसी ऐसी मजहबी जमायत[6] में शरीक[7] हुआ जिस में बहुत सी औरतें मौजूद थीं अगरचे[8] मजहब के पाबन्द होकर उस का उस जमायत में शरीक होना फर्ज़[9] था मगर उस से दिलशिकनी हुई।

दाल—अगर शौहर किसी ऐसी राह से गुज़रा कि जिस में किसी सबब से कुछ औरतें जमा थीं तो वह मुर्तकिब जुर्म दिलशिकनी हुआ।

हे—किसी रिश्तःदार के सबब से या किसी मुआमिलः के सबब से किसी शौहर ने दूसरे औरत से जरूरी गुफ्तगू[10] की तो मुजरिम दिलशिकनी हुआ।

बाब—लड़कों को पढ़ने की ज्यादः ताकीद करना भी जुर्म दिलशिकनी है।

जे—रंगरेज पर कपड़ा जल्द न रंग लाने की, दरज़ी पर कुरती जल्द न सीने की ताकीद नहीं करना या उन कामों को जल्द अंजाम पाना[11] उस के अखतियार के बाहर है, तो वह शख्स मुजरिम दिलशिकनी का हुआ।

हे—मेले या तमाशे वग़ैरह के ऐसे मौकों से जिस में इज्जत जाने का खौफ है, जोरू को बमिन्नत बाज़ रखना भी जुर्म दिलशिकनी है।

दफः (30) मुजरिम दिलशिकनी की सर्सरी की कुल सजायें दी जा सकती हैं।

ग्यारहवां बाब
हंगामः[12]

दफः (31) जोरू की किसी बात का जवाब देना जुर्म हंगामः है।

दफः (32) हंगामः करने वाले मुजरिम को रोने या बकने की सज़ा दी जायगी।

---

1. हृदय पर चोट, 2. कपट से, 3. प्रकट में, 4. कार्य, 5. आपत्ति, 6. सभा, 7. सम्मिलित, 8. यद्यपि, 9. आवश्यक, 10. वार्त्तालाप, 11. पूरा होना, 12. विद्रोह।

क़ितः[1] तारीख़ तसनीक़[2] दर सन 1883 ई.।

चोगरदीद ई जेराफ़तनामः तसनीफ़।
के बाशद हर्फ़ हरफ़श दुर ओ गौहर॥
जेरूये आबरू शुद ईसवी साल।
निको क़ानून ताज़ीरात शौहर॥

[रचनाकाल—1883 ई.]

1. एक छन्द, 2. रचना, जब यह बुद्धिमानी की रचना प्रणीत हुई, जिसके हर एक अक्षर मोती से हैं। तब प्रतिष्ठा के रूप में ईसवी साल हुआ 'निको कानून तजीरात शौहर'। (1883)

भ्रमराष्टकम्

गन्धाढ्‌यासौ भुवनविदिता केतकी स्वर्णपर्णा।
पद्मभ्रान्त्या क्षुधितमधुपः पुष्पमध्ये पपात्॥
अन्धीभूतः कुसुमरजसा कण्टकैर्विद्धपक्षः स्थातुं।
गन्तुं द्वयमपि सखे नैव शक्तो द्विरेफः॥1॥

(1) A hungry bee fell into the well-known sweet scented Ketaki flower of golden live, mistaking it for a lotus blinded by the pollen therein, her wilgs torn by its thorns, O friend she could neither fly away nor remain there.

गन्धाढ्यां नवमल्लिकां मधुकरस्त्याक्त्वा गतो यूथिकां।
दैवात्तां विहाय चम्पकवनं पश्चात्सरोजं गतः॥
बद्धस्तत्रंनिशाकरेण विधिना क्रन्दत्यसौ मूढधीः।
संतोषेण विना पराभवपदं प्राप्नोति मूढो जनः॥2॥

(2) A bee leaving the fragrant flower of the fresh Mallika, flew to that of Yuthika again thence she was led by destiny to the forest of Champaka and at last she sat in the lotus, the heedless bee was thereby the approach of night enclosed in the flower and began to the lament. The foolish bewildered in mind, without contentment falls into danger.

येऽमीते मुकुलोद्गमादनुदिनं त्वामाश्रिताः षट्पदा।
स्तेभ्राम्यन्ति फलाद्वहिर्वहिरतो दृष्ट्वा न संभाषते॥
ये कीटास्तवदृक्पथं च नगतास्ते त्वत्फलाभ्यन्तरे।
धिक्त्वांचूतयतः परापरपरिज्ञानानभिज्ञोभवान्॥3॥

(3) Those bees that restored to thee ever since thy first growth of

buds, are now hovering thy fruits; even seeing them speakest not; whilst the insects that never come wihtin thy view are now within thy fruits, shame to thee, O mango tree, thou canst not distinguish between friend and foe.

नीतं जन्म नवीननीरजवने पीतं मधु स्वेच्छया ।
मालत्याः कुसुमेषु येन सततं केलीकृता हेलया॥
तेनेयं मधुगन्धलुब्धमनसा गुंजालता सेव्यते ।
हाधिग्दैवकृतं सण्वमधुपः कांकांदशांनागतः॥4॥

(4) Now the bee with her heart eager for the prefume of nectar, who passed her life in the beds of the fresh lotuses, drank its honey and carried on her youthful sports amongst the flowers of Malati at her will, she being eager for fragrant lives on the flowers of Gunja creeper. A las for the destiny. what tastes has not the bee experienced.

पलाशकुसुमभ्रान्त्या शुकतुण्डे मधुव्रतः ।
पतत्येष शुकोप्येनं जंबुभ्रान्त्या जिघ्रांसति॥5॥

A bee fell on the back of a parrot mistaking it for the flower of the tree Palasa; the parrot also, imagining her to be the fruit of a roseapple, wished to pack her.

दृष्ट्वा स्फीतोऽभवदलिरसौ लेख्यपद्मं विशालं ।
चित्रं चित्रं किमिति किमिति व्याहरन्निष्पपात॥
नास्मिन् गन्धो न च मधुकणा नास्ति तत्सौकुमार्यं ।
घूर्णन्मूर्धा बत नतशिरा व्रीडया निर्जगाम॥6॥

A bee observing a fine lotus in a picture with great delight settled upon it, and cried, How beautiful, how beautiful it is, but there she found neither fragrance of nectar nor the delicacy of the real lotus, she shook her head, and went away with her head bowed down with shame.

अलिरसौ नलिनीवनवल्लभः ।
कुमुदिनी कुलकेलिकलारसः॥
विधिवशेन विदेशमुपागतः ।
कुटजपुष्परसं बहु मन्यते॥7॥

Yonder bee has a great affection for the cluster of lotuses and has gaily deposited herself amongst them; now in course of time she came roaming to another place, and here she highly prized the flavour of the Kutoja-flower.

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं।
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः॥
इत्थं विचिन्तयति कोपगते द्विरेफे।
हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार॥8॥

A bee inclosed in a lotus, thought within herself, The night will pass, the morn will reappear, the sun will arise, the beauteous lotus will smile again—While she was thus thinking, alas! an elephant came and bore off the lotus.

[हरिश्चन्द्र मैगजीन, 15 नवम्बर, सन 1873 ई.]

मुशायरा[1]

चिड़ीमार का टोला। भांत भांत का जानवर बोला॥

लखनऊ, दिल्ली बनारस पूरब और दखिन के कई मुफ्तखोरे शायर एक जगह जमा हुए और लगे रंग बिरंगी बोलियां बोलने। मैंने भी वहीं मैक़ाफून[2] की कल लगा दी। जो कुछ उस में आवाज़ बन्द हो गई आप लोग भी सुन लीजिए।

सबके पहिले लाला साहब उठे और बन्दगी कर के यों चोंच खोली—

''ग़ल्ला कटै लगा है कि भैया जो है सो है।
बनियन कां ग़म भवा है कि भैया जो है सो है॥
लाला की भैंसी शीर निचोवत मां शाशी जब।
दूध ओहमां मिल गया है कि भैया जो है सो है॥
इक तो कहत[3] मां मर मिटी खिलकत[4] जो हैगा सब।
तेह पर टिकस बंधा है कि भैया जो है सो है॥
अंगरेज से अफ़गान से वह जंग होत है।
अख़बार मां लिखा है कि भैया जो है सो है॥
कुप्पा भए हैं फूल के बनियां ब फ़र्ते माल[5]।
पेट उनका दमकला है कि भैया जो है सो है॥
अख़बार नाहीं पंच से वह कर भवा कोऊ।
सिक्का य जम गवा है कि भैया जो है सो है॥''

इसके बाद लाला साहब ने रें रें करके एक होली भी गा ही दी—

कैसी होरी खिलाई। आग तन मन में लगाई॥

---

1. कवि सम्मेलन, 2. एक यन्त्र, 3. अकाल 4. प्रजा 5. धन कमाकर।

पानी की बूंदी से पिंड प्रगट कियो सुन्दर रूप बनाई।
पेट अधम के कारन मोहन घर घर नाच नचाई॥
तबौ नहीं हवस बुझाई।
भूंजी भांग नहीं घर भीतर का पहिनी का खाई।
टिकस पिया मोरी लाल का रखल्यो ऐसे बनो न कसाई॥
तुम्हैं कैसर की दोहाई।
कर जोरत हौं बिनती करत हौं छांडौ टिकस कन्हाई।
आग लगौ ऐसो फाग के ऊपर भूखन जान गंवाई॥
तुम्हैं कुछ लाज' न आई।

लाल साहब के गाने के बाद ही ललाइन साहब से भी न रहा गया। कुछ जो मेम साहब की तालीम ने तुन्दी किया सो चट से कूद परदे के बाहर बेतकल्लुफ़[1] तशरीफ लाईं और मटक मटक कर कहने लगीं—

लिखाय नाहीं देत्यो पढ़ाय नाहीं देत्यो।
सैयां फिरंगिन बनाय नाहीं देत्यो॥
लहंगा दुपट्टा नीक न लागे।
मेमन का गौन मंगाय नाहीं देत्यो॥
वै गोरिन हम रंग संवलिया।
रंग में रंग मिलाय नाहीं देत्यो॥
हम ना सोइबे कोठा अटरिया।
नदिया प बंगला छवाय नाहीं देत्यो॥
सरसों का उबटन हम ना लगैबै।
साबुन से देहियां मलाय नाहीं देत्यो॥
डोली मियाना प कब लग डोलों।
घोड़वा प काठी कसाय नाहीं देत्यो॥
कब लग बैठों काढ़े घुंघटवा।
मेला तमासा जाये नाहीं देत्यो॥
लीक पुरानी कब लग पीटों।
नई रीत रसम चलाय नाहीं देत्यो॥
गोबर से ना लीपब पोतब।
चूना से भितिया पोताय नाहीं देत्यो॥
खुसलिया छदम्मी ननकू हन की।
विलायत का काहें पठाय नाहीं देत्यो॥
धन दौलत के कारन बलमा।
समुन्दर में बजरा छोड़ाय नाहीं देत्यो॥

1. निसंकोच।

बहुत दिनों लग खटिया तोड़िन।
हिन्दुन का काहें जगाय नाहीं देत्यो॥
दरस विना जिय तरसत हमरा।
कैसर का काहें देखाय नाहीं देत्यो॥
हिज्रपिया तोरे पय्यां पड़त हैं।
पंचा मां एहकां छपाय नाहीं देत्यो॥

ललाइन साहब की आजादी देखते ही साहो जी साहब मुतहैय्यर[1] हो घबड़ा कर यों रेंके—

का भवा आवा है ए राम जमाना कैसा।
कैसी मेहरारू है ई हाय जनाना कैसा॥
लोग क्रिस्तांन भए जाथैं बनथैं साहेब।
कैसा अब पुत्र धरम गंगा नहाना कैसा॥
हाल रोजगार गवा धूल में बेवहार मिला।
का सराफी रही हुंडी का चलाना कैसा॥
धोय के लाज सरम पी गए सब लरकन लोग।
काहे के बाप मतारी रहे नाना कैसा॥
आंखी के आगे लगे पीये सभै मिल के शराब।
हाय अब जात कहां पंच में जाना कैसा॥
पगड़ी जामा गवा अब कोट औ पतलून रही।
जब चुरुट है तो इलइची का है खाना कैसा॥
सबके उप्पर लगा टिक्कस कि उड़ा होस मोरा।
रोवै के चाहिए हंसी ठीठी ठठाना कैसा॥

साहो जी की बनारसी सुनते ही लखनऊ के एक शोहदे साहब जो चार अंगुल की टोपी दिए एक कोने में अंकड़े हुए डंटे थे बहुत ही परीशान हुए क्यौंकि उन के समझ में यह कुछ भी न आया तो चिटख कर बोले ''बनिए क्या जो है सो नाहक की बक बक लगाई है एक कनगुज्झा[2] ईंधे[3] और एक नागड्भिन्नी[4] ऊंधे[5] और चपतगाह[6] प एक गुदकी जमाऊंगा जो है सो कि बताना निकल पड़ैगा'' और कहने लगे—

क्यौ बे सुनता नहीं सोहदे की बी तकरीर को आं।
कहीं नकभिन्नी की आऊं न तेरे पीर को आं॥

लोगों ने बढ़ावा दिया कि हां साहब यह भी तो बड़े शायर हैं कुछ फर्माएं। इतना इशारा पाना कि लगे शोहदे जी गाने।

---

1. चकित, 2. चपेटा, थप्पड़, 3. इस ओर, 4. नाक भन्ना देनेवाला थप्पड़, 5. उस ओर, 6. चपत मारने का स्थान।

सान सौकत तेरे आसिक की मेरी जान जे है।
होंगे सुलफा[1] इसी दरवाजे पर अरमान जे है॥
कहीं सुहदे भी पिचकते हैं भला झांपो के[2]।
आ तो डंट जो अभी खम टोंक के मैदान जे है॥
गैर के कहने पै हजरत को न मुतलक हो खेयाल।
बञ्चो एक एक को बहकाता है सैतान जे है॥
आके हम लोगों से मांगें न टिकस मोटे मल।
रख दूं धुन के उन्हें बनियों प फकत सान जे है॥
आज मामूर है आलम के नमूदारों[3] में।
लुत्फ अल्लाह का सर पर तेरे खाकान[4] है॥

शुहदे की बातचीत सुन कर हमारे बनारस के भैवा लोगों से कब रहा जाता है यह अपनी चर्री बूकने ही लगे—

चांई चकार चोर और नटखट तोरे बदे।
होय गैल सारे रामधै चौपट तोरे बदे॥
घर से नगर से जात कुटुम संगी भाई से।
केसे भथल बिगार ने खटपट तोरे बदे॥
रोअल करीला पाटी प माथा पटक पटक।
लेईला जब कि रात के करवट तोरे बदे॥
राजा नवाब बाबू के ताड़ीला ए रजा।
होय जाई राज रामधै कोरट तोरे बदे॥
देके सारन के बहाली तू घरे चल आवः।
आज न आय सकः कौनो बखत कल आवः॥
आज खरचा भी दुकनदार से पौले बाड़ी।
चल के बैठक में बचा चाभ में मदगल आवः॥
नरकू चिरकिट और पनारू से कहः घुरपतरी।
नल के बगले में तो हौऐं सभे बैठल आवः॥
उहै चल जाला सरवा देखः बतौले झांई।
देख के कैसनै हमन के हौ खड़कल आवः॥
चाभ के पान महाबीरी क टीका देके।
मल के देही में अतर सांझी बेरा चल आवः॥
सारे चल आवै लै सब खोज में हमरे तोरहे।
मोड़ वा गल्ली के आगे तानी झड़कल आवः॥

1. जला देना, 2. एक गाली, 3. प्रकट लोगों, 4. राजा।

कौनो सरवा नहीं समझाय के कहतैं राजा।
तेग[1] से कौने वदे बाड़ः तुं खड़कल आवः॥
भौं चूम लेइला केहू सुन्दर जे पाईला।
हम ऊ हई की होंठे पर तरूवार खाईला॥
डन कै के अपने रोज तो रहिला चबाइला।
राजा के अपने खुरमा औ बुंदिया चभाइला॥
सौ सौ तरे के मूड़े पर जोखिम उठाईला।
पै राजा तोहें एक बेरी देख जाईला॥
पुतरी मतिन रखब तोहें पलकन के आड़ में।
तोहरे बदे हम आंखी में बैठक बनाईल॥
कहली कि काहे आंखी में सुरमा लगावलः।
हंस के कहै लै छूरी के पत्थर चटाईला॥
हम झारै वाला वाड़ी हजारन में रामधै।
पै राजा तोंसे बेंत मतिन थरथराईला॥
राजा बाबू तोरे चेहरा प लुभायल बाड़े।
सैकड़न सरवा तोरे आंखी क घायल बाड़ैं॥
रात भर कंहरीला खटिया परल हम संगी।
केहू राजा से कहै काहे कोंहायल बाड़े॥
बाघ की नाईं महल्ला में ते डौंडत होइहैं।
सब केहू कहला टहलू त परायल बाड़ैं॥
आंख की पुतरी मतिन सामने नाचत होइहैं।
नींद जब आवैलै तब देखीला आयल बाड़ैं॥
पांचो पकवान नहीं नीक लागत वा रमघे।
तिल के चेहर के तोरे 'तेग' भुखायल बाड़ैं॥

बनारस से गुंडों की बोली सुनते ही वैसवारे के तिलंगा भाई को भी फुरफुरी आई और ढोलक बजा कर गाने ही लगे कि—

फुरैं कहत हौं महिते जो जइहौं रिसाय के।
भरुका म बिख भरा है मैं मर जैहौं खाय के॥
सारन क आज सार म भंवरी बताय के।
लैहौं करेजा दूध बकेना पियाय के॥
खरिहान मां जे रात के रइहौ तुम आय के।
देहौं उकांव गोहुं क तुम कं उठाय के॥

---

1. तेरा अली, जिसकी यह रचना है।

सूरज के कुछ न लीन न तुम हन गुनहगार।
काहे क हम कै मारथौ घामे डहाय के॥
बौरान रोज फिर्त हौं बारी बगैचा में।
टोला म हमरें आएव न एक दिन भुलाय के॥
घरहू प आय तेग क दरसन नहीं हौ द्यात।
औरन तें तो मिलत हौ रजा धाय धाय के॥

इन सब की रें रें के पीछे एक नए ढंग के शायर कबरिस्तान के फ़कीर मरघट के बाम्हन एक नई अनोखी चाल की शायरी ले उठे। यह ढंग ही सब से निराला। रेख़ती फ़ेख़ती सब से अलग मरसिये का भी चचा। माशूक़ ही को कोसना।

फिर उन्हें हैजा हुआ फिर सब बदन नीला हुआ।
फिर न आने का मेरे घर में नया हीला हुआ॥
क़हरे हक़[1] नाज़िल[2] हुआ पत्थर पड़े वह मर गए।
अब का टुकड़ा उन्हें तबरम् अबाबीला हुआ॥
फिर उन्हें आया पसीना सब बदन ठंढा हुआ।
मुफ़लिसी में फिलमसल आंटा अजी गीला हुआ॥
नाम सुनते ही टिकस का आह करके मर गए।
जान ली कानून ने बस मौत का हीला हुआ॥
आप शेख़ी पर चढ़े थे मिसले अफ़गानाने बद।
खूब शुद गदकों के मारे सब बदन ढीला हुआ॥
कैसरे हिन्दोस्तां अब जान इनकी बख़्श दो।
देख लो रंजिश से सब इनका बदन पीला हुआ॥

अफ़सोस कि अ. फालेन[3] इस मौके पर नहीं थे नहीं तो कई नए मोहावरे उन के हाथ लगते।

[रचनाकाल अज्ञात है]

1. खुदा का कोप, 2. उतरा, 3. एस. डब्ल्यू. फैलो

परिहासिनी

अर्थात

हंसी, दिल्लगी, पंच, चोज

की बातैं और चुटकिले

परिहासिनी

चोज की बातैं

भेद

कृष्ण प्रसाद ने दामोदर से कहा ''तुम ने हमारा भेद क्यौं खोल दिया।'' ''ह हा!! इस को तुम भेद खोलना कहते है? जब हम ने जाना कि हम उस को नहीं छिपा सकते तो हमने क्या बुरा किया कि उस भेद को एक आदमी से कह दिया जो उसे छिपा सकता था।''

जादूगरनी

दो कुमारियों को एक जादूगरनी ने खूब ठगा, उस ने कहा कि हम एक रुपये में तुम दोनों को तुम्हारे पति का मुख दिखा देंगे रुपया जट कर उन दोनों को एक आईना दिखा दिया, बिचारियों ने पूछा ''यह क्या'' तो वह डोकरी बोली ''बलैया ल्यों जब ब्याह होगा तब यहीं मुंह दूल्हे का हो जायगा।''

खुशामद

एक ना मुराद आशिक से किसी ने पूछा ''कहो जी तुम्हारी माशूकः तुम्हें क्यों नहीं मिली'' बिचारा उदास होकर बोला ''यार कुछ न पूछो मैंने इतनी खुशामद की कि उसने अपने को सचमुच परी समझ लिया और हम आदमियों से बोलने में भी परहेज किया।''

मुंहतोड़ जवाब

एक ने कहा ''न जाने इस लड़के में इतनी बुरी आदतें कहां से आईं? हमें यकीन है कि हम से इस ने कोई बुरी बात नहीं सीखी'' लड़का चट से बोल उठा ''बहुत ठीक है क्यौंकि हम ने आप से बुरी आदतें पाई होतीं तो आप में बहुत सी कम हो जातीं।''

लाला साहब का राम चेरा

लाला रामसरन लाल ने देर होने पर रामचेरवा से खफ़ा होकर कहा "क्यौं बे नामाकूल आज तू इतनी देर कर आया कि और नौकरों को काम शुरू किए एक घंटे से जियादः गुज़र गया" यह नटखट झट पट बोला "तंब लाला साहब ओमें बात का हौ सांझ के आज हम और लोगन से एक घंटा अगौंऐं चल जाब बराबर होय जाइब।"

अंगहीन धनी

एक धनिक के घर उस के बहुत से प्रतिष्ठित मित्र बैठे थे, नौकर बुलाने को घंटी बजी...मोहना भीतर दौड़ा, पर हंसता हुआ लौटा, और नौकरों ने पूछा "क्यौं बे हंसता क्यौं है?" तो उस ने जवाब दिया, "भाई, सोलह हट्टे कट्टे जवान थे उन सभों से एक बत्ती न बुझी, जब हम गए तब बुझी।"

अद्‌भुत संवाद

"ए ज़रा हमारा घोड़ा तो पकड़े रहो" "यह कूदेगा तो नहीं" "कूदेगा! भला कूदेगा क्यौं? लो संभालो" "यह काटता है?" "नहीं काटेगा, लगाम पकड़े रहो" "क्या इसे दो आदमी पकड़ते हैं तब संभलता है" "नहीं" "फिर हमें क्यौं तकलीफ देते हैं? आप तो हई हैं।"

पंच का प्रपंच

अरी कलारिन दौर तू चोखो प्यालो लाव। भयो जात बेहोस मैं दै एक और चिताव। देखु न इतने दिवस लों हम मुरछित हे जान। मानहुं तन मैं नहिं रह्यो मो गरीब के प्रान॥ तेरे पायल की झनक सुनत उठे अकुलाय। गए प्रान बहुरे बहुरि अमृत दियो छिरकाय॥ अमृत सों का काम नहिं अधर सुध की आस। मेरी तो प्यारी बुझै मदिराही तें प्यास॥ दै प्यालो इक और तू करि मति कछू विचार। दाम न मारी जायगो तेरो री सुकुमार॥ जोखिम कछु यामें नहीं दिये जाइये आप। दाम दाम चुक जायगो मरिहै जब मम बाप॥ देखति नहिं मोहि गांव है कोठी बंगला बीस। बग्गी घोड़ा झाड़ मैं फानूसन को ईस॥ दाम दाम सब देइहौं तेरी रकम चुकाय। नहिं वसूल करि लीजियो सब नीलाम कराय॥ पै इन बातन सों कहा तू तो परम उदार। दै प्यालो बिन दाम को करिहैं जै जै कार॥ जब लौ सूरज चन्द हैं जब लौं सागर भूमि। जब लौं कमलन को भ्रमर रहत मत्त मुख चूमि॥ तब लौं तुव जीवन बढ़ै मैखानो थिर सोय। अघट होहिं घट मद्य के पूरन प्यालो होय॥ होली बीती देखि तूं आयो प्रगट बसन्त। दै प्यालो हमको नतरु होत हमारो अन्त॥ हमें जगत को गम नहीं जो तू मद नहिं देत। मंगल

मैं जानी हमहिं क्यौं नहिं जम करि लेत॥ देखत नहिं इहि ओर तू कैसो बढ़्यौ अनन्द। मंगल मंगल कहत सब मतवारे नर वृन्द॥ गंगा में चहुं ओर सों दीपहि दीप दिखात। नावन सों सुरसरि छिपी जल नहिं नेक लखात॥ आनि परत धुनि कान मैं मधुर सुरन के संग। तैसे ही कहुं बजि उठत सारंगी मिरदंग॥ तैसी घूमत नाव सब जल मैं झोंका खाइ। मनु हम सो मतवार कोउ झूमत रंग जमाइ॥ कबहु बीच मैं बजि उठत नरसिंहा धुनि घोर। कबहुं नाव द्वै परसपर लड़त मचावत सोर॥ कबहुं जुगौड़ा नाचि कै लेत बेसुरी तान। आपु हिलत बाजी हिलत और हिलत जल जान॥ कबहुं पार जल के छुटत दारू जन्त्र अपार। कबहुं गुबारे उड़त हैं नभ मैं बांधि कतार॥ कबहुं श्रवन पुट मैं परत मैना की वह तान। जाहि सुनत मुनि जनन के छूटत तुरतहि ध्यान॥ कहुं तौंकी के सुरन की सुभग सुनात अलाप। मधुर सरंगी कहुं बजत कहुं तबलन की थाप॥ कोऊ मारे भौंह के कोउ नैनन के तीर। कोऊ बेधे तान के ब्याकुल कामी भीर॥ कोऊ के जिय धसि रही नाचन मैं मुरिजान। कोऊ के उर मैं बसी सो उरवसी समान॥ हंसत कोऊ धावत कोऊ मगन कोऊ कोउ धीर। कोऊ नाव बंधावहीं जहं नावन की भीर॥ मनु बिमान सब देव के सुरसरि मैं दरसात। कै तारन की मंडली घूमत हैं या रात। देखि न तू ऐसी समय क्यौं नहिं जस करि लेत। हमसे मद मतवार को क्यौं न सुरा भरि देत॥ दै इक प्यालो औरहू छकि कै रंग जमाव। जात अबै हम देखिवे दक्षिनपति की नाव॥ हाय हाय तहं कछु नहीं सूनी नाव लखात। गम छायो चहुं ओर सों तासों कछु न दिखात॥ करत गवैया बैठि के चें चें तहं हैं तीन। नहिं प्यालो नहिं रंग कछु हाय कहा विधि कीन॥ ह्वै निरास तहं सो फिर्‌यौ उतरि गयो सब रंग। दै प्याले द्वै तीन फिर जमैं हमारों ढंग॥ ढाल ढाल मदिरा अरी खरी कहा पछितात। काशिराज के दरस हित राम नगर हम जात॥ काशिराजहू ह्वां नहीं यह भाखत सब कोय। मुख सो मुख लै भागि कै फिरि आए हम रोय। गिरत परत भागे हमहुं आए तेरे पास। दै इक प्यालौ और हू मिटै सकल जग त्रास॥ देखु देखु बीती निसा दिसाा वारुनी लाल। दै हमको हूं वारुनी मधिवारुनी रसाल। सीतल पौन चलै लगी उडुगन जोति मलीन। चकई सों चकवा मिले दीपक दुति भई छीन। श्रवन परत धुनि भैरवी मन्द मन्द नव तान। देखु न उठि उठि द्विज गनन लायो निज निज ध्यान॥ देर होत है और भरु इक प्यालो मतवारि। उतरत है निसि को नसा यह जिय मांझ विचारि॥ बंधी खुमारी रैन को टूटै सो न खिलार। दै इक प्यालो औरहू मदिरा चोंखी द्वार॥ मन्दिर में सब कोउ कहत लाग्यौ छप्पन भोग। महा महा उच्छव भयो जुरे बहुत से लोग॥ प्यालो छप्पन तू हमैं मेरी जान पियाव। तौ हम सांचो मानहीं छप्पन भोग उछाव॥ मुनशी प्यारेलाल ने व्याह खरच किय बन्द। कछु मदिरा रोकी नहीं जो तू सकुचत मन्द॥ इंसिदादे दुखतरकुशी करत अदें प्रभु लाट। पै कोउ नहिं ढरकावहीं तेरो मदिरा माट। ब्राह्मी मैरिज बिल भयो पास गजट के मांहि। अब तो प्यालो दै अरी क्यौं भाषत है नाहिं॥ इन्तिजाम सब कोउ करत सब बातन को जान। तेरी पूछ

कहूं नहीं यह तू निश्चय मान॥ सरकारहि मंजूर जो तेरो होत उपाय। तो क्यौं नहिं मदिरान पैं देती टिकस बढ़ाय॥ तू तो है या राज की परम निशानी आप। सब जैहै पै तू सदा रहिहै विनहीं पाप॥ राज चिह्न जब एकहू नहिं मिलि हैं सुन प्रान। बहु बोतल के टूक को मिलिहैं तबहु निसान॥ यह तो परम अभीष्ट है तेरी बढ़ती होय। नांहीं तो क्यौं मौन धरि बैठे हैं सब कोय॥ डगर डगर मैं ह्वै गई तेरी प्रगट दुकान। कोउ बरजन हारो नहीं जो कछु करै बखान॥ इत मन्दिर है देव को इत मदिरा की हाट। इत मसजिद गिरिजा उतै इत शराब के ठाट॥ बोरडिंग इक ओर है नारसुमल इक ओर। एक ओर इंट्यूट है मधि मदिरा घर जोर॥ इत भैरव गनपति उतै इत देवी उत देव। तिनके मधि मदिरा भरी यह विचित्र अति भेव॥ मन्दिर सो मसजिदन सों गिरजनहूं सो जान। स्कूलन सों हूं लखौ बढ़ती मद्य दुकान॥

लाज संक सब छोड़ि कै धरम भीति विसराइ। पान करत हैं मद्य सब मंगल महा मनाइ॥ एक्ट पांच पुनि आठ अरु पैंतालिस पच्चीस। कोऊ कछु मानत नहीं तनिक न नावत सीस॥ पहिरि पहिरि पतलून अरु टोपी चक्कर दार। कोट बूठ जेबौ घड़ी छड़ी सुहाथ संवार॥ कोऊ कहत मद नहिं पियैं तैं कछु लिख्यौ न जाय। कोऊ कहत हम मद्य बल करत वकीली आय॥ मद्यहि के परभाव सों रचत अनेकन ग्रन्थ। मद्यहि के परकास सों लखत धरम को पन्थ॥ मदिराहिं ही को पान करि करत ईस को ध्यान। सबै काज मद सों सरत यह निश्चय जिय आन॥ मदिरा ही के पान हित हिंदू धरमहि छोड़ि। बहुत लोग कृश्चन बनत निज कुल सों मुख मोड़ि॥

दै दै प्यालो प्रान इक भरिकै मद छलकाय। क्यौं इतनो संकोच तू करत सुमोहि बताय॥ मृगनैनी गजगामिनी चन्द्राननि सुकुवारि। दै प्यालो भरि भरि पियहिं री मिठ बोलिन नारि॥ कहा मौन धरि कै रही अरी बोल तू बोल। क्यौं तरसावति हाय मोहि प्यारी महा ठठोल॥ ज्यौं बालक के खेल में मरन चिरी को होय। त्यौंही या तेरी हंसी प्रान जात हैं रोय॥ देखत तू क्यौं नहिं इतै आई सुखद बसन्त। पथिक वधू विरही जनहिं जो नित परम दुरन्त॥ कोकिल कल कुहकत तरुन भंवर करत गुञ्जार। फूले फूल अनेक विधि अमवा बौरे डार॥ बौरे जब जड़ आम तरु या मधु रितु के मांहिं। तब तू मद दै कै हमैं क्यौं बौरावत नांहिं॥ मधु रितु याको नाम है माधव को है मास। हम को क्यौं मधु देत नहिं करि कै दया प्रकास॥ देखि देखि हरि करि कृपा प्रिंसहि कियो अराम। धन्यवाद सब करत हैं मंगल धामहिं धाम॥ हम कोहूं आनन्द मैं प्यालो भरि दै एक। भले बुरे मैं नहिं रहै जासों कछू विवेक॥ मद्यपान करि मत्त ह्वै हमहूं देहिं असीस। हे मेरे युवराज तुम जीओ कोटि बरीस॥ चित सब में चिन्ता रहित जुरे अनन्द समाज। रंक लही निधि तिमि प्रजहि बढ़यो सकल सुख साज॥ जीओ जुग जुग निरुज ह्वै राजकुंवर सुखकन्द। बढ़ो राज करि नासि अरि जननी सह सानन्द॥

दिल्लगी की बातें

किसी अमीर ने ज़रा सी शिकायत के लिए हकीम को बुलाया। हकीम ने आकर नब्ज देखी और पूछा—"आप को भूख अच्छी तरह लगी है"—अमीर ने कहा "हा"। हकीम ने फिर सवाल किया—"आप को नींद भरपूर आती है"—अमीर ने जवाब दिया "हा"। हकीम बोला "तो मैं कोई दवा ऐसी तजबीज़ करता हूं जिस से सब बातें जाती रहें।" **का. प.**

अमेरिका के एक जज ने किसी गवाह की हाज़िरी और हलफ लेने के लिए हुक्म दिया। वकीलों ने इत्तिला दी कि वह शख्स बहरा और गूंगा है। जज ने कहा "मुझे इस से कुछ ग़रज़ नहीं कि वह बोल सकता है या नहीं। यूनाइटेड स्टेट्स का कानून यह मेरे सामने मौजूद है। इस के मोताबिक हर आदमी को अदालत में बोल सकने का हक हासिल है और जब तक कि मैं इस अदालत में हूँ हर्गिज कानून के बर्खिलाफ तामील होने की इजाज़त न दूंगा जिस से किसी की हकतलफी हो। जो कानून का मनशा है उस पर उस को जरूर अमल करना पड़ेगा।" **का. प.**

कहते हैं कि मिल्टन की बीवी निहायत बद्मिजाज थी मगर खूबसूरत भी हद से जियादा थी। लार्ड, बकिंगहैम ने एक रोज़ मिलूटन के सामने उस की नजाकत की तारीफ कर के गुलाब के फूल के साथ उस की तश्बीह (उपमा) दी। मिलूटन ने कहा कि गोकि मैं अन्धा हूं और नज़ाकत को नहीं देख सक्ता तौ भी आप के बात की सचाई पर गवाही देता हूं। हकीकत में वह गुलाब का फूल है क्यौंकि कांटे अक्सर मेरे भी लगते रहते हैं। **नै. म.**

एक डॉक्टर साहिब कहीं बयान कर रहे थे कि दिल और जिगर की बीमारियां औरतों से मर्दों को जियादा होती हैं। एक जवान खूबसूरत औरत बोल उठी, "तभी मर्दुए औरों को दिल देते फिरते हैं॥ **नै. म.**

एक शख्स ने किसी से कहा कि अगर मैं झूठ बोलता हूं तो मेरा झूठ कोई पकड़ क्यौं नहीं लेता। उस ने जवाब दिया कि आप के मुंह से झूठ इस कदर जल्द निकलता है कि कोई उसे पकड़ नहीं सक्ता। **नै. म.**

एक बेवकूफ इस खयाल से अपने सामने आईना रख कर सो रहा कि देखूं सोते वक्त मेरी सूरत कैसी मालूम होती है।

एक शख्स वकालत के इम्तिहान के लिए तैयारी कर रहे थे इसलिए उन्होंने एक उस्ताद से मन्तिक पढ़ना शुरू किया और पांच सौ रुपया उस्ताद को देने का करार किया जिस में से आधे रुपये पेशगी दे दिए और बाकी की निस्बत यह शर्त की कि वकालत की सनद पा कर जिस वक्त औवल मुकद्दमा जीतूंगा उस वक्त अदा करूंगा। इस शर्त पर मन्तिका पढ़ कर हजरत वकालत के इम्तिहान में कामयाब हो गए मगर मुद्दत तक न तो अदालत को गए और न उस्ताद के सामने आए।

जब उस्ताद ने देखा कि इन हज़रत की नीयत बाकी रुपया देने की नहीं है तो नालिश कर दी। जब अदालत में इज़हार देने के वक्त मुकाबला हुआ तो उस्ताद बोले कि बच्चा रुपया तो तुम से मैं हर सूरत में ले लूंगा—अगर मैं जीता तो अदालत दिलवा देगी—और अगर तुम जीते तो तुम्हें शर्त के मुवाफिक देना पड़ेगा, क्योंकि औवल मुकद्दमा जीतने पर रुपया अदा करने का तुम ने वादा किया है। शागिर्द ने (जिस पर यह मिसरा सादिक आता है "उस्ताद जो आफत है तो शागिर्द गजब है") जवाब दिया उस्ताद मैं आप को एक कौड़ी दिवाल नहीं हर सूरत में मेरी ही जीत है—अगर मैं जीता तो आप को अदालत न दिलवाएगी—और अगर हारा तो शर्त के मुताबिक न दूंगा, क्योंकि शर्त तो यह है कि जीतूं तो दूं न कि हारूं तो दूं॥

एक दिल्लगीबाज आदमी से कोई बेवकूफ जरा सी हंसी की बात पर खफा होकर कहने लगा "तुम अशराफ नहीं हो।" इस हंसोड़ ने पूछा कि "आप अशराफ हैं?" वह बेवकूफ बड़ी तेजी से बोला "बेशक।" इस शख्स ने जवाब दिया "तो हम खुदा का शुक्र करते हैं कि हम अशराफ नहीं हैं।"

एक जज किसी गवाह का इज़हार ले रहे थे। गवाह शरारत से अक्सर हिकलाता था। जज ने खफ़ा होकर कहा "मैं समझता हूं कि तुम बड़े पाजी हो।" गवाह ने ज़वाब दिया 'उतना पाजी हर्गिज नहीं हूं जितना कि हुजूर—मु-मु-मुझे खयाल करते हैं॥

एक वकील ने बीमारी की हालत में अपना सब माल और असबाव पागल दीवाने और सिड़ियों के नाम लिख दिया। लोगों ने पूछा यह क्या तो उस ने जवाब दिया कि यह माल ऐसे ही आदमियों से मुझे मिला था और अब ऐसे ही लोगों को दिये जाता हूं।

आर्य्यमित्र

एक काने ने किसी आदमी से यह शर्त बादी कि जो मैं तुम से जियादा देखता हूं तो पचास रुपये जीतूं और जब शर्त पक्की हो चुकी तो काना बोला कि लो मैं जीता, दूसरे ने पूछा क्यों? इस ने जवाब दिया कि मैं तुम्हारी दोनों आंखें देखता हूं और तुम मेरी एक ही॥

आ. मि.

एक अन्धा वैरागी काशी के बीच मनिकर्निका घाट पर बैठा गहन में दही पेड़े खा रहा था, कि देख कर किसी पंडित ने पूछा, सूरदास जी! यह क्या करते हो? बोला, महाराज दही पेड़े खाता हूं। कहा गहन में? उत्तर दिया, बाबा! मेरे गुरु की दया से सदा ही गहन है। यह सुन पंडित हंस कर चुप हो रहा।

कोई राजपूत बहुत अफीम खाता था, दैवी उसे विदेश जाना पड़ा, और किसी अड्डे में जाकर उतरा, वहां के लोगों ने आकर इस से कहा, कि ठाकुर साहिब! यहां चोरी बहुत होती है आप चौकसी से रहियेगा। यह बात सुन कर रात तो उसने जाग कर काटी, पर यह बात जी में रक्खी, कि चोरी बहुत होती है। भोर होते ही घोड़े की पीठ लगा एक नगर के बीच चला जाता था, कि एका एकी पीनक से चौंक

कर पुकारा, अरे रमचेरा! अरे रमचेरा! घोड़ा कहां? वह बोला महाराज! घोड़े पै तो बैठे ही जाते हो, और घोड़ा कैसा? कहा बेटा! इस बात की कुछ चिन्ता नहीं पर सावधान रहना अच्छा है॥

दो कलावत दक्षिण से कमाई किए दिल्ली को चले आते थे, कि वाट में दौड़ों ने आय लिया, और लगे बरछियां भाले उठाय उठाय मार मार डाल डाल पुकारने। उस काल ये दोनों भी झट गाड़ी से उतर, चट परतल के टट्टू पर जा बैठे, और लगे उन से पूछने, कि वलैया लों, मार मार डार डार ही कर जान्यो है, के कभू चौपड़हू खेले हौ। उन में से एक बोला, कि क्यौं? इन्होंने कहा कि कहूं जुगहू मार्‌यो जातु है? इस रहस से वे बहुत मगन हुए और इन्हें न लूट हंस कर चले गए॥

मथुरा के चौबे बड़े ठठोल होते हैं एक दिन कोई चौबे हाट से मारू बैंगन मोल लाया, देख कर उसकी जोरू ने पूछा, कहा भरता करूं? यह बोला मोतें कहा चूक परी? उस ने उत्तर दिया, लोग तुम्हें जोयसी कहत हैं, यह सुन चौबे निरुत्तर हुआ।

एक कायथ अनपढ़ घोड़े पर बैठा हाट में चला जाता था, किसी घुड़चढ़े ने उसे मेंड़की से भी पीछे हटा बैठा देख के कहा भैया जी! कुछ आगे हट बैठो, क्यौं? कहा, आसन खाली है। उसने उत्तर दिया, क्या तुम्हारे कहे से हट बैठेंगे? जैसे साइंस ने बैठा दिया है, तैसे बैठे चले जाते हैं॥

किसी बड़े आदमी के पास एक ठठोल आ बैठा था, और इन के यहां कहीं से गुड़ आया, उस ने ठट्ठे से कहा, कि महाराज! मैंने जनम भर में तीन बिरिया गुड़ खाया है! बोला, बखान कर, कहा। एक तो छठी के दिन जनमघूंटी में खाया था; और एक कान छिदाए थे तब; और एक आज खाऊंगा। उन्ने कहा, जो मैं न दूं? बोला, दो ही बार खाया सही॥

दिल्लगी की बातें

एक सौदागर किसी रईस के पास एक घोड़ा बेचने को लाया और बार बार उस की तारीफ में कहता "हजूर या जानवर गज़ब का सच्चा है" रईस साहिब ने घोड़े को खरीद कर सौदागर से पूछा कि घोड़े के सच्चे होने से तुम्हारा क्या मतलब है। सौदागर ने जवाब दिया "हजूर जब कभी मैं इस घोड़े पर सवार हुआ इस ने हमेशा गिराने का खौफ दिलाया और सचमुच इस ने आज तक कभी झूठी धमकी न दी।"

एक दिल्लगीबाज़ शख्स एक वकील से जिस ने किसी मजमून पर एक वाहियात सा रिसाला लिखा था राह में मिला और बेतकल्लुफी से कहा "वाह जी तुम भी अजब आदमी हो कि मुझ से अब तक अपने रिसाले का जिक्र भी न किया—अभी कुछ वरक जो मेरी नज़र से गुजरे उन में मैंने ऐसी उमदा चीजें पाईं जो आज तक किसी

रिसाले में देखने में न आई थी।'' यह शख्स एक लाइक आदमी की ऐसी राय सुन कर खुशी के मारे फूल उठा और बोला ''मैं आप की कदरदानी का निहायत ही शुकरगुज़ार हुआ—मिहरबानी कर के बतलाइए कि वह कौन कौन सी चीज़ें हैं जो आपने उस रिसाले में इस कदर पसन्द की।'' उस ने जवाब दिया आज सुबह को मैं एक हलवाई की दुकान की तरफ से गुज़रा तो क्या देखा कि एक लड़की आप के रिसाले के वरकों में गर्मागर्म समोसे लपेटे लिये जाती थी॥''

बात की धुन

हाईकोर्ट के एक वकील साहब अपने स्पीच के जोर में ऐसे बढ़ चढ़ चले कि जमीन को छोड़ कर आसमान की बातें करने लगे। जज ने घबड़ा कर अपना रूल टेबल पर पटका और बोले बस साहब बस अब आप हमारी हुकूमत के बाहर हो गए। भला सरकार का राज छोड़ कर किसी दूसरे राज में चले जाते तब तो हम को सुनने का अखतियार ही न था कहां अब तो आप इस दुनिया के ही बाहर पहुंचे॥

न्याय शास्त्र

मोहिनी ने कहा ''न जानैं हमारे पति से जब हम दोनों की एकही राय है तब फिर क्यौं लड़ाई होती है। क्यौंकि वह चाहते हैं कि मैं उन से दबूं और यही मैं भी॥

मिहमान

रामेश्वरदत्त के घर एक दिन जगदेव सिंह गए, बैठने के वास्ते चटाई वटाई कुछ नहीं थी बिचारे खड़े रहे। पंडित जी बड़े चाव से बोले ''ठाकुर साहब आप कैसे भाग्यवान हैं कि जहां जाते हैं वहां बैठने को जगह नहीं मिलती॥''

मुफ्तखोरे

एक मुसलमान अमीर के दीवानखाने में एक मुफ्तखोरे खाने की ताक में टहल रहे थे। जब देर हुई तो आप खिदमतगार से पूछने लगे 'बेगू दस्तरखान कब बिछैगा? नौकर ने जवाब दिया 'ज्यौंही तुम जाओगे'।

गुरु के गुरु

बाबू प्रह्लाददास से बाबू राधाकृष्ण ने स्कूल जाने के वक्त कहा ''क्यौ जनाब मेरा दुशाला अपनी गाड़ी पर लिये जाइयेगा'' उन्होंने जवाब दिया ''बड़ी खुशी से'' मगर फिर आप दुशाला मुझ से किस तरह पाइयेगा। राधाकृष्ण जी बोले ''बड़ी आसानी से क्यौंकि मैं भी तो उसे अगोरने साथ ही चलता हूं।''

अचूक जवाब

एक अमीर से किसी फकीर ने पैसा मांगा उस अमीर ने फकीर से कहा "तुम पैसों के बदले लोगों से लियाकत चाहते तो अब तक कैसे लायक आदमी हो गए होते" फकीर चट पट बोला "मैं जिस के पास जो देखता हूं वही उस से मांगता हूं॥

सम्प्राप्तेषोड़शेवर्षे गर्दभीचाप्सरायते

एक औरत ने जिसकी जवानी ढल चली थी खूबसूरती के गरूर में अपनी एक नौ जवान लौंडी से पूछा "तू मेरे हुस्न की कितनी कदर करती है" लौंड़ी बोली "करीब करीब अपनी जवानी के।"

ज्ञान चरचा

किसी दिन तुलसीदास गुसांई कितने एक आदमियों के बीच कहीं बैठे ज्ञान चरचा करते थे इस में उस राह से किसी की बरात आ निकली उस के बाजे की आवाज सुन सब के मन दुचिते हुए तब तुलसीदास हंसे उन को हंस्ता देख उन में से किसी ने पूछा महाराज आप क्या देख कर हंसे जवाब दिया दुनिया की भूल देख के बोला सो क्या उत्तर दिया—

फूले फूले फिरत हैं होत हमारो ब्याव।
तुलसी गाय बजाय के देत काठा में पाव॥

एक बड़ा सौदागर किसी साहिब कमाल फकीर के यहां जाकर मुरीद हुआ और पीर की खिद्मत में आठो पहर हाजिर रहने लगा। खुदा का चाहा छः महीने के अरसे में उस का ऐसा काम बिगड़ा कि खाने पीने को भी कुछ पास न रहा। एक रोज पीर ने इसे उदास देख कहा कि बाबा क्या तूने यह मसल कभी नहीं सुनी जो इतनी फिक्र करता है।

अहलाद करता की बातें क्या करता क्या न करे हाथी मार गर्द में डाले अदना के सिर छत्र धरे। रीती भरे भरी ढुलकावे मिहर करें तो फेर भरे—

होनहार बिरवान के होत चीकने पात।

शैटीनाफ़ सातवें लूइस का मुसाहिब बड़ा ही बुद्धिमान था। जब वह आठ नौ बरस का था एक पादरी ने उस से पूछा "लड़के जो तुम बतला दो कि खुदा कहां रहता है तो मैं तुम को एक नारंगी दूं" लड़का चट से बोला "साहिब अगर आप बतला दें कि खुदा कहां है तो मैं आप को दो नारंगी दूं।"

दुआ मांगना

एक मौलबी साहब अपने एक चेले के यहां खाने गए। जब मेज पर खाना चुना जा चुका चेले ने मौलाना साहब से दुआ मांगने को कहा। एक लड़के ने जो वहां हाजिर था घबड़ा कर अपने बाप से पूछा "बाबा जब यह कहीं खाने आते हैं तब हमेशा हाथ उठा कर यह बड़ी मिन्नत करते हैं। क्या जो इतनी आरजू न करैं तो लोग बुला कर भी इन्हें भूखा फेर दें।"

लार्ड केम्स अक्सर अपने दोस्तों से एक शख्स का किस्सा बयान किया करते थे जिस ने उन के मुलाकाती होने का बड़ा पक्का पता बतलाया था। लार्ड साहिब जिन दिनों जज थे एक बार कहीं सफर में राह भूल गए और एक आदमी से जो सामने नज़र पड़ा दर्खास्त की कि भाई जरा हमें रास्ता बता देना। उस ने बड़ी मुहब्बत से जवाब दिया "हुजूर मैं निहायत खुशी से आप की खिदमत के लिए हाजिर हूं, क्या हुजूर ने मुझे नहीं पहचाना? मेरा नाम जान...है और मैं एक बार बकरी चुराने की इल्लत में हुजूर के सामने पेश होने की इज्जत हासिल कर चुका हूं। "अहा जान मुझे खूब याद है, और तुम्हारी जोरू किस तरह है। उस ने भी तो मेरे सामने पेश होने की इज्जत हासिल की थी क्योंकि उस ने चोरी की बकरियों को जान बूझ कर घर में रख छोड़ा था।"—"हुजूर के इकबाल से बहुत खुश है, हम लोग उस बार काफ़ी सबूत न पहुंचने से छूट गए थे अब तक हुजूर की बदौलत वही पेशा किए जाते हैं।"—लार्ड केम्स बोले, "तब तो हम लोगों को एक दूसरे की मुलाकात की फिर भी कभी इज्जत हासिल होगी।"

किसी लाइक मौलवी ने एक बार निहायत उम्दा और दिलचस्प तौर पर तकरीर की खैरात के बराबर दुनिया में कोई अच्छा काम नहीं है। एक मशहूर कंजूस जो वहां मौजूद था बोला "इस तकरीर से यह अच्छी तरह साबित हो जाता है कि खैरात करना फर्ज है इस लिए मेरा भी जी चाहता है कि फकीर हो जाऊं।

एक निर्लज्ज की पगड़ी पर धील बैठी तो बोला कि बरताने तक पहुंची।

चुटकिले

एक ने एक से कहा कि एकादाशी का ब्रत करके द्वादशी को पारण करना, उसने ब्रत तो नहीं किया पर पारण किया, जब उस ने पूछा कि कहो ब्रत किया था, तब वह बोला कि भाई ब्रत तो नहीं हो सका पर तुम्हारे डर के मारे पारण कर लिया कि जो बनै सोई सही।

[रचनाकाल सन 1875 ई. से सन 1880 ई. तक]

भूमिकाएं

निवेदन

मेरी प्यारी बहिनो! मैं एक तुम्हारी नई बहिन बालाबोधिनी आज तुम लोगों से मिलने आई हूं और मेरी यही इच्छा है कि तुम लोगों...महीनों में एक बेर मिलूं, देखो मैं तुम लोगों से अवस्था में कितनी छोटी हूं क्यौंकि तुम सब बड़ी हो चुकी हो और मैं अभी जनमी हूं और इस नाते से मैं तुम सब की छोटी बहिन हूं पर मैं तुम लोगों से हिलमिल कर सहेलियों और संगिनों की भांति रहना चाहती हूं, इस से मैं तुम लोगों से हाथ जोड़ कर और आंचल खोल कर यही मांगती हूं कि मैं जो कभी कोई भली बुरी, कड़ी नरम, कहनी अनकहनी कहूं उसे मुझे अपनी समझ कर क्षमा करना क्यौंकि मैं जो कुछ कहूंगी सो तुम्हारे हित की कहूंगी और सखियां सखियों को माता बहिन और बेटी तीनों की भांति मानती हैं इसे इनकी बातों को इन्हें कभी बड़ी और कभी बराबर वाली और कभी छोटी समझ कर सदा कान लगा कर सुनती है वैसे ही तुम भी इस अपनी छोटी सखी की तोतली बातों पर जी दोगी तो मैं उस सब से बड़े परमेश्वर से नित्य यही मनाऊंगी कि मेरे हिन्दुस्थान की सारी स्त्रियां लिख पढ़ कर पुरुषों की समभागिनी हो जांय।

[बालाबोधिनी के प्रवेशांक 1 जनवरी,
सन 1874 ई. का सम्पादकीय]

गुरसारणी की भूमिका

विदित हो कि अपनी छोटी बुद्धि के अनुसार छोटा सा ग्रन्थ प्रथम गुरसारणी लोगों के उपकार को बनाया, जो इस्से बहुत मनुष्यों का उपकार होगा और रुचि होगी तो इस्से अच्छे अच्छे ग्रन्थ और भी तैयार हुआ करैंगे। प्रथम इस ग्रन्थ के बनाने से अभिप्राय हमारा यह है कि बहुधा लोग अपने पुत्रों को लड़के सबब से पढ़ाने लिखाने में सुसती कर जाते हैं और कहते हैं कि "लड़का जब सयाना होगा और जीता रहेगा पढ़ लेगा"—तो हुशियार होने पर मनुष्य को अपने कमाने खाने की फिकर हो जाती है और विद्या पढ़ने में मन नहीं लगता। कारण इस का यह है कि एक मन दो जगह कैसे लग सके तो वही मनुष्य उस अवस्था में व्यावहारिक कर्म में बहुत कठिनता से हिसाब जान सकते हैं। ऐसे मनुष्यों के हेतु यह ग्रन्थ जनाब मुअल्लाअलकाब मिस्तर 'सांदरस' साहेब बहादुर के आज्ञानुसार बनारस के रहने वाले पंडित हनुमान किशोर ने बनाया। और जो हिसाब हर वक्त के लेन देन में काम पड़ता है। छन्द प्रबन्ध कर के लिखा इस कारण से कि बार्तिक विशेष कर के लोगों को स्मरण नहीं रहता और दूसरे यह कि युवा अवस्था में छन्द प्रबन्ध से लोगों की रुचि भी विशेष होती है इसे मन लगा के याद कर लेंगे और निश्चय ही कि ऐसे उपकारी ग्रन्थ का बहुत लोग चाह करैंगे।

[बालाबोधिनी, अगस्त 1875]

गोमहिमा के अन्त में भारतेन्दु की अपील

आर्य्य भ्राता गण!

जब से यवन गण के कण्टक मय चरण इस आर्य्य भूमि में आए तब से गउओं पर जो दुःख है वह हम लोगों का जी ही जानता है। यद्यपि अंगरेज लोग भी गो भक्षक हैं किन्तु प्रथम तो मुसलमानों की अपेक्षा इन की संख्या ही अति अल्प है, दूसरे इनका बहुत-सा मांस विदेश से आता है, तीसरे इनके अर्थ जो हत्या होती है वह प्रकाश रूप से नहीं होती। केवल मुसलमानों की हत्या ऐसी है जिस से सतत हम लोगों को दुःख होता है। विशेष दुःख इस बात से होता है कि अंगरेज लोग भी इन्हीं का पक्ष करते हैं। इसका कारण अति स्पष्ट है। हम को एक अंगुल भूमि बैठने को नहीं, उन को रूम ईरान मिस्र अरब काबुल अनेक राज्य वर्त्तमान हैं। हम अत्यन्त मृदु वह अति कठोर। हमारी दास वृत्ति अभ्यसित, उनकी नवीन होने के कारण अनभ्यासित। हमारे धर्म्म का मूल शान्ति उनका खड्ग। इधर आलस्य उधर उद्योग। और सब से मुख्य यह कि इधर फूट उधर एक। कचहरी के अमला वकील मुखतार वैश्या और कारीगर इन विविध रूपों में हम लोगों में वे मिल ऐसे रहे हैं कि छूटना कठिन। ऐसा तो कोई ही माई का लाल होगा जो इन कष्टों को सह कर इनका सहवास, इनका व्यवहार और इसका सम्बन्ध छोड़ दे। किन्तु हम लोगों को यथा साध्य यत्न तो करना ही चाहिए। अब प्रश्न यह है कि इसका उपाय क्या है? प्रथम उपाय हम लोगों को असाध्य। सरकार सुनती नहीं। साम दाम भेद केवल इन्हीं तीन नीतियों से काम लेना है। बड़ी बड़ी गोशाला कीजिए। चन्दा कीजिए। बहुत सी गऊ खरीदिए। मुसलमानों को हाथ जोड़िए, समझाइए, लालच दीजिए, हिन्दुओं ही के कारण तुम्हारी जीविका है यह निश्चय करा दीजिए, इसका उदाहरण उन को प्रत्यक्ष कर के दिखला दीजिए। सरकार से भी, चाहे सुने चाहे न सुने, हल्ला करते जाइए, अखबारों में भी धूम मचाए रहिए। महीने में एक लेख इसी पर सही, आपस में सदा इसका चरचा रखिए, चाहे काम हो चाहे न हो, बके जाइए, बस यही सब उपाय हैं। सरकारी कान कोलाहल से बड़ी अरुचि रखते हैं। हौरा रहैगा तो अवश्य

कुछ होगा। कालनीति के प्रभाव भारतवर्ष के और विषयमात्र में आप लोगों का धमनी गत रक्त स्रोत शीतल और स्थगित है। केवल एक इसी के नाम से कुछ उत्तप्त और प्रधावित होता है। इस में भी शिथिल हुआ तो इतिश्री और जीवन संस्कार आशा मात्र की समाप्ति है, इसकी दूर तक सोच लीजिए। उसी आर्य्य तेजोमय रक्त को सतेज करने ही को यह संग्रह प्रकाशित होता है। लीजिए और देखिए कि आप के यावत् पूर्व्व पुरुष मात्र को इस विषय का कितना आग्रह था। और कुछ नहीं हो सकता तो प्रकाश वध निवारण हो जाय, तो भी हम कृतार्थ होंगे। इति!!

—हरिश्चन्द्र

रणधीर प्रेममोहिनी

प्रस्तावना

नान्दी।

(गाइए गनपति जगबन्दन। चाल में)

गीत

जय जय हरि निज जन सुखदाई।
विश्व ब्रह्मा विभु त्रिभुवन राई।
भक्त चकोर चन्द्र सुख रासी।
घट घट व्यापक अज अबिनासी॥

आरज धर्म्म प्रचारक स्वामी।
प्रेम गम्य प्रभु पन्नग गामी।
करि करुणा प्रभु प्रीति प्रकासौ।
भारत सोक मोह तम नासौ॥

(जय जय इत्यादि)

(सूत्रधार आता है)

सूत्रधार : हा प्रभु! 'भारत सोक मोह तम नासौ' देखो अंगरेजों की दया से पश्चिम से विद्या का स्रोत प्रवाहित होकर सारे भारतवर्ष को प्लावित कर रहा है परन्तु हिन्दू लोग कमल के पत्ते की भांति उस के स्पर्श से अब भी अलग है। (कुछ सोच कर) सचमुच नाटक के प्रचार से इस भूमि का बहुत कुछ भला हो सकता है। क्यौंकि यहां के लोग कौतुकी बड़े हैं। दिल्लगी से इन लोगों को जैसी शिक्षा दी जा सकती है वैसी और तरह से नहीं। तो मैं भी क्यौं न कोई ऐसा नाटक खेलूं जो आर्य्य लोगों के चरित्र का शोधक हो (नेपथ्य की ओर देख कर) प्यारी! आज क्या यहां न आओगी।

(नटी आती है)

नटी : प्राणनाथ! मैं तो आप ही आती थी। कहिए क्या आज्ञा है?

सूत्रधार : प्यारी! आज इस आर्य्य समाज के सामने कोई ऐसा नाटक खेलो जिस का फल केवल चित्त विनोद ही न हो।

नटी : जो आज्ञा परन्तु वह नाटक सुखान्त हो कि दुःखान्त?

सूत्रधार : प्यारी! मेरी जान तो इस संसार रूपी कपट नाटक के सूत्रधार ने जगत ही दुःखान्त बनाया। कैसा भी राजपाट उत्साह विद्या खेल तमाशा क्यौं न हो अन्त में कुछ नहीं। सब का अन्त दुःख है इस से दुःखान्त ही नाटक खेलो।

नटी : मेरी भी यही इच्छा थी। क्यौंकि दुःखान्त नाटक का दर्शकों के चित्त पर बहुत देर असर बना रहता है।

सूत्रधार : और नाटक भी कोई नवीन हो और स्वभाव विरुद्ध न हो। कहो तुम कौन सोचती हो।

नटी : नाथ! दिल्ली के रईस लाला श्रीनिवासदासजी का बनाया रणधीर प्रेममोहिनी नाटक क्यौं न खेला जाय। मेरे जान तो उस का आजकल हिन्दी समाज में चरचा भी है। इस से वही अच्छा होगा।

सूत्रधार : हां हां बहुत अच्छी बात है। उस नाटक में वे सब गुण हैं जो मैं चाहता हूं। तो चलो हम लोग शीघ्र ही वेश सजें। और खेल का आरम्भ हो।

नटी : चलिए।

(दोनों जाते हैं)

नट का गान

आवहु मिलि भारत भाई। नाटक देखहु सुख पाई
आवहु मिलि...
जबसों बढ़्यौ विषय इत मूरखता सब नैननि छाई।
तबसों बाढ़े भांड़ भगतिया गनिका के समुदाई॥
आवहु मिलि...
ऐसो कोउ न विनोद रयौ इन जामैं जीअ लुभाई।
सज्जन कहन सुमन देसान के लायक दृग सुखदाई॥
आवहु मिलि...
ताही सों यह सब गुन पूरन नाटक रच्यौ बनाई।
याहि देखि श्रम करहु सफल मम यह विनवत सिर नाई॥
आवहु मिलि...

श्री हरिश्चन्द्र, बनारस

[लाला श्रीनिवासदास के नाटक रणधीर प्रेममोहिनी की प्रस्तावना]

पत्र साहित्य

भारतेन्दु के पत्र राधाकृष्णदास के नाम

(1)

प्रिय बच्चा,

10 अगरवालों की उत्पत्ति भेज दीजिए।

—हरिश्चन्द्र

(2)

अज़ीज़ अज़ जानमन बच्चा बहादुर।
मेरे दिल के सदफ के वे बहादुर॥
बहुत ही जल्द भेजो नीलदेवी।
इसी दम चाहिए इक उसकी कापी॥

—हरिश्चन्द्र

(3)

बच्चा

1. आज शाम को गोपाल बाबू को कुछ जरूर मिलेगा।
2. डाक में कोई खत आया हो तो भेज देना।
3. जो रुखसतनामा बाबू बालेश्वर को मिला है वही बाबू दामोदरदास को भी मिलेगा।
4. अलबम सब गाड़ी पर रखवा कर भिजवा दो।

—हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु का पत्र अनुज गोकुलचन्द्र के नाम

विदेश से हम लौटकर न आवें तो इस बात का जो हम यहां लिखते हैं ध्यान रखना। ध्यान क्या अपने पर फ़र्ज समझना। किन्तु हम जल्दी जीते जागते फिरैंगे। कोई चिन्ता नहीं है। सिर्फ संयोग के वश होकर लिखा है। यदि ऐसा हो तो दो चार बातों का अवश्य ध्यान रखना। यह तुम जानते हौ कि तुम्हारी भाभी की हम को कुछ चिन्ता नहीं क्यौंकि तुम्हारे ऐसा देवर जिन का वर्त्तमान है उस को और क्या चाहिए। दो बात की हम को चिन्ता है। प्रथम क़र्ज़, दूसरी मल्लिका की रक्षा। थोड़ी सी डिगरी जो बच गई है उस को चुका देना। और जीवन भर दीन हीन मल्लिका की जिस को हमने धर्म्म पूर्वक अपनाया है रक्षा करनी। कृष्ण को ऊंची शिक्षा संस्कृत अंगरेजी और बंगला की हो। जो ग्रन्थ हमारे या बाबूजी के बे छपे रह जाँय वे छपैं। इस पत्र को हम ने कलेजा फाड़ फाड़ कर चार दिन में अर्थात अछनेरा से शुरू करके भिलाडे में ख़तम किया है। इस पर हंसना मत दुःखी होना क्यौंकि अभी तो अणु मात्र भी मरने की संभावना नहीं है। शारीरिक कुशल है तनिक भी चिन्ता न करना।

भवदीय

हरिश्चन्द्र

[भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सन 1882 ई. के मार्गशीर्ष महीने में मेवाड़ गए थे। यह पत्र मेवाड़ यात्रा के दौरान उन्होंने अपने अनुज को लिखा था। पत्र पर तारीख नहीं दी गई है। इस पत्र का कुछ अंश पेंसिल से लिखा गया था जो पढ़ा न जा सका। यह पत्र बाबू शिवनन्दन सहाय की पुस्तक 'हरिश्चन्द्र' से लिया गया है।]

भारतेन्दु का पत्र भतीजे कृष्णचन्द्र के नाम

"चिरंजीव, श्रीकृष्ण, प्यारेकृष्ण, राजाकृष्ण, बाबूकृष्ण, आंखों की पुतली। तुम्हारा जी कैसा है? सर्दी मत खाना, रसोई रोज खाते रहना। तुम को छोड़ कर हमारा अखतियार होता तो क्षण भर भी बाहर नहीं आते! क्या करें लाचारी से झख मारते हैं। कृष्ण! तुम्हारा अभी कोमल स्वच्छ चित्त है। तुम हमारे चित्त को ध्यान से जान सकते किन्तु बुद्धि और वाणी अभी स्फुरित नहीं है। इससे तुम और किसी पर उसे प्रकट नहीं कर सकते हो। परमेश्वर के अनुग्रह से उस की उस स्वाभाविक कृपा से जो आज तक इस वंश पर है तुम चिरंजीव हो, तुम्हारे में उत्तम गुण हों। हम इस समय बुलन्दशहर में हैं। आज कुचेसर जाएंगे।"

भवदीय
हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु का पत्र पं. सन्तोष सिंह के नाम

प्रियवर,

निवेदन। जैसे भाषा में अब कुछ नाटक बन गए हैं अब तक उपन्यास नहीं बने हैं। आप या हमारे पत्र के योग्य सहकारी सम्पादक जैसे बाबू काशीनाथ वा गोस्वामी राधाचरणजी कोई उपन्यास लिखें तो उत्तम है। यदि ऐसी इच्छा हो तो 'दीपनिर्वाण' नामक उपन्यास का अनुवाद हो। यह उपन्यास केवल उपन्यास ही नहीं हैं, भारतवर्ष से इससे एक बड़ा सम्बन्ध...।[1]

भवदीय
हरिश्चन्द्र

1. यह पत्र बाबू शिवनन्दन सहाय द्वारा लिखित पुस्तक 'हरिश्चन्द्र' से लिया गया है। पत्र अधूरा है पर उद्देश्य की अभिव्यक्ति में कोई कसर नहीं है।

भारतेन्दु के पत्र बाबू रामदीन सिंह के नाम

(1)

23 सितम्बर, 1882

प्रिय,

आप का पत्र और सांझ तार मिला। आप ने जैसा अनुग्रह इस समय किया वह कहने के योग्य नहीं चित्त ही साक्षी है। आज शनिवार की दो पहर है अब तक बाबू साहबप्रसाद सिंह नहीं आए। सांझ तक या रात तक शायद आवैं। यद्यपि इस अवसर पर फिर कुछ आपको लिखना निरा झक मारना है किन्तु अत्यन्त कष्ट के कारण लिखता हूं। हो सकै तो एक सौ और भेज दीजिए। जो काम कमबख्त दरपेश है नहीं निकलता और मैं यहां किसी से उसका जिक्र तक नहीं किया चाहता इसी से फिर निर्लज्ज होकर लिखा। किन्तु जाने दीजिए बहुत कष्ट हो तो नहीं। क्षमा।

इसके पीछे जो नोटिस[1] है मेरे अनुरोध से क्षत्रिय पत्रिका में छाप दीजिएगा।

भवदीय

हरिश्चन्द्र

---

1. यह नोटिस बाक्स में नीचे दी गई है–

नोटिस

मेरी बनाई वा अनुवादित वा संग्रह की हुई पुस्तकों को श्री बाबू रामदीन सिंह खड्गविलास के स्वामी छाप सकते हैं जब तक जिन पुस्तकों को ये छापते रहें और किसी को अधिकार नहीं कि छापे।

हरिश्चन्द्र

दिनांक 23-9-1882

(2)

प्रिय!

बाबू साहबप्रसाद सिंह की शिष्टाचार मुझसे कुछ भी नहीं बन पड़ी। मेरा स्वभाव आपने देखा होगा कि बिलकुल वाह्याडम्बर शून्य है इसी से मुझको जाहिरा कुछ नहीं आता। वह सब पत्र यहीं छापूंगा।

यह फिर मैं किस मुख से कहूं कि हो सकै तो शीघ्र एक और भेज दीजिए।

भवदीय
हरिश्चन्द्र

(3)

प्रियबन्धु!

आप का दो पत्र और एक कार्ड मिला अन्धेर नगरी के विषय में पूर्व्व ही मैं लिख चुका हूं आप कुछ चिन्ता मत कीजिए एक अन्धेर नगरी आप का कितनी हानि करैगी आप ने जो छापा है उसका टायटिल छापकर स्वयं बेचिए किसी को भेज देने की आवश्यकता नहीं। मेरा भेजा हुआ पुस्तकों के विषय का स्वत्व पत्र शीघ्र प्रकाश करके प्रचारित कर दीजिए फिर किसी को कुछ छापने का मुंह न रहै। बाबू काशीनाथ के विचित्र पत्र पीछे भेजूंगा। उनको देखकर आप को इस जाति की स्वार्थपरता और तुच्छता प्रगट होगी मैं चार दिन से ज्वर से अत्यन्त अभिभूत हो रहा हूं यही कारण है कि अपने हाथ से पत्र भी नहीं लिख सका। रुपये के विषय में यह निवेदन है कि जितना तय्यार हो इस पत्र के पाते ही रवाने कीजिए। एक एक क्षण में हानि और दुःख है वरंच इन्हीं चिन्ताओं के कारण मैं इस रुग्ण अवस्था को प्राप्त हुआ हूं। थोड़ा लिखा बहुत समझिएगा इति–

इससे विशेष मैं क्या लिखूं–

''तेरे बीमार को चारा नहीं गोयाई का
ए मसीहा यही मौका है मसीहाई का''

आश्विन शुक्ल, 14, हरिश्चन्द्र
संवत, 1939

(4)

बनारस
26 नवम्बर, 1882

बाबू रामदीन सिंह
क्षत्रिय पत्रिका के स्वामी
बांकीपुर

प्रियवरेषु

हमारे हिन्दी व्याकरण का हमने सब स्वत्व आप को दे दिया। आप ही उसको छापैं बेचैं। और किसी का कौन कहै मैंने निज अधिकार भी उस पर से उठा लिया इससे अब हिन्दी-ग्रामर (व्याकरण) के स्वामी आप हैं और उसका कापीराइट आपको प्राप्त है।

हरिश्चन्द्र

(5)

श्रीकृष्ण

पोस्टकार्ड

प्रियवरेषु,

आप का कृपा पत्र आया आपने जो पुस्तक मांगी वह मेरे पास नहीं है। व्रजभूषण दास और कम्पनी, कविवचन सुधा ऑफिस गायघाट, बाबू बालेश्वर प्रसाद नार्मल स्कूल और हरिप्रकाश प्रेस नैपाली खपरा बनारस में मेरे यहां की पुस्तकैं और क.व.सुधा और चन्द्रिका अपने अपने ऑफिस में मिलती हैं किन्तु ये पुस्तकें यहां कहीं नहीं मिलेंगी।

अनुग्रहाकांक्षी
हरिश्चन्द्र

(6)

आज की डाक में एक बड़ी अपूर्व्व वस्तु भेजी है। उदयपुर और जयपुर के राजभवन की लिखी उसी भाषा में वंशावली। इसकी ज्यौं की त्यौं नकल करा लीजिए और जल्दी फेर दीजिए। बाकी कागजों को अपने पास रखिएगा। अन्धेर नगरी केवल 200

भेजिए। हमारे जिन ग्रन्थों को आप छापैंगे और कोई न छाप सकैगा। पत्रिका के वास्ते फिर कुछ लिखूंगा। लाल साहब यहीं हैं मैंने दर्शन किया था। कल लाल साहब डोमरांव जायंगे। राजिस्तान अंगरेजी बंगला आदि में भेज दूं? जयपुर, उदयपुर की जो वंशावली मैंने भेजी है वह वहां के चारण और बन्दी लोग हजारों रुपया दिए भी नहीं देते।

भक्तमाल फिर भेजूंगा।

हरिश्चन्द्र

(7)

बनारस
3-5-83

प्रणाम,

पत्र मिला। मैं पहले ही लिख चुका हूं कि उचित वक्ता को मैंने उस काल में आज्ञा दी थी जब आप के यहां छपने का जिक्र नहीं था। उनका रजिस्टरी कराना आप को बाधा नहीं कर सकता क्यौंकि आप को तो पुस्तक मात्र छपाने छापने का मैंने अधिकार दिया है। आज फिर शरीर नहीं अच्छा है।

कौशलेश कवितावली और कवि-हृदय-सुधाकर के छापने इत्यादि का सब सत्व आप को प्राप्त है।

हरिश्चन्द्र

(8)

1884 का प्रथम दिन

प्रियवरेषु,

आप का पत्र मिला। आपने इतना लम्बा चौड़ा वृत्तान्त क्यौं लिखा। केवल उस विषय का समाचार ही काफी था। मैंने उसी क्षण वकीलों से राय पूछी। उन लोगों ने कहा है कि इसके पीछे जो पत्र है उसकी नकल एक साथ रखकर आप उनको वकील के दस्तखत से नोटिस दीजिए जो इस पर वे नुकसानी न दें तो बेशक नालिश कीजिए अवश्य डिग्री होगी। यहीं से मैं नोटिस भेजता किन्तु मुझको उस छापेखाने का नाम आदि तो आप ने लिखा ही नहीं फिर किसको भेजूं।

अन्धेर नगरी मैं गली गली बांटूंगा या लुटा दूंगा मुझको कुछ ऐसी ही लाग है। पत्रों से संग्रह करके यहां कौन छापता है? मुझको मालूम हो तो मैं मना करूं।

भाषा ऋजुपाठ से रामकृष्ण से कोई सम्बन्ध नहीं वह अम्बिकादत्त जी का है। उनसे इनसे आजकल बिगाड़ है। अ.द. ने स्वयं 5000 यह छपाया है। आजकल हरिप्रकाश प्रेस में छप रहा है।

हरिश्चन्द्र

(9)

15-3-84

प्रियवरेषु,

आप के पत्र और पुस्तक भी मिले। आप एक मुसौदा कराकर भेज दीजिए तो उसी अनुसार स्टैम्प पर लिख पढ़ जाय।

एक भाषासार और एक कैथी ग्रामर हमारे वास्ते भी भेज दीजिएगा।

भाष्य अब हो जाय। मैं पटने से आकर फिर बीमार पड़ा था। इससे विलम्ब हो गया।

आपका
हरिश्चन्द्र

(10)

श्रीकृष्ण

प्रियवर,

आप का पत्र मिला। बाबू काशीनाथ के पत्र ही में जो उन्होंने बाबू रामकृष्ण के पत्र की पंक्तियां मेरे विषय में लिखी हैं उन्हीं से सब बात समझ लीजिए मेरे लिखने की कोई आवश्यकता नहीं। कलियुग के मित्र और शत्रु वा उदासीन का कुछ भेद मालूम ही नहीं पड़ता मैं तो अपना सर्वस्व कलियुग के मित्रों के चरित पर न्यौछावर कर चुका हूं। आप से इन लोगों से काम नहीं पड़ा है चुप से सब कुछ तमाशा देखते चलिए। विशेषकर जब पढ़े लिखे लोगों की यह दशा है तो औरों की कौन कहे। मेरी लिखी हुई आज्ञा सिवा आप के और किसी के भी पास नहीं है निश्चिन्त रहिए। इस विषय में मेरा अणु मात्र भी संसर्ग मत समझिएगा। इस समय अत्यन्त शीघ्रता से इतना ही लिखता हूं। सविस्तार पीछे लिखूंगा।

पूर्व कई पत्र भेज चुका हूं उत्तर नहीं मिला।

भवदीय
हरिश्चन्द्र

(11)

प्रियवरेषु,

दो पत्र मिले। नाम जानने पर नोटिस नालिश करूंगा। जो किताब छापैं पहले रजिस्टरी करा लिया करैं।

इतिहास आदि का विचार करूंगा। माघ में पटने आता हूं तब सब बातैं होंगी।

अभिन्न
हरिश्चन्द्र

(12)

यतो धर्म्मस्ततः कृष्णो
यतः कृष्णस्ततो जयः

प्रिय!

कलकत्ता इक्ज़्हिविशन में हिन्दी की किताबों के रखने की भी मंजूरी हुई। बिना एक क्षण के विलम्ब के आपके यहां की छपी पुस्तक मात्र की दो दो कापी ऐसी तरह बन्द करके कि तनिक भी खराब न हों। इस पत्र को टेलिग्राफ समझिएगा।

इस समय जल्दी में इतना ही।

अभिन्न
हरिश्चन्द्र

(13)

प्रियवरेषु,

अब की बक़रीद में भारतवर्ष के प्रायः अनेक नगरों में मुसलमानों ने प्रकाश रूप से जो गोवध किया है उस से हिन्दुओं की सब प्रकार से जो मानहानि हुई है वह अकथनीय है। पालिसी परतन्त्र गवर्नमेंट पर हिन्दुओं की अकिंचित्‌की करता और मुसलमानों की उग्रता भलीभांति विदित है यही कारण है कि जान बूझ कर भी वह कुछ नहीं बोलती, किन्तु हमलोगों को जो भारतवर्ष में हिन्दुओं के ही वीर्य्य से उत्पन्न हैं ऐसे अवसर पर गवर्नमेंट के कान खोलने का उपाय अवश्य करणीय है। इसी हेतु आप से इस पत्र द्वारा निवेदन है कि जहां तक हो सके इस विषय में प्रयत्न कीजिए। भागलपुर, मिरजापुर, काशी इत्यादि कई स्थानों में प्रकाश्य रूप से केवल हमारा जी दुखाने को हांकाठोकी यह अत्याचार हुआ है। जो किसी किसी समाचार पत्र में प्रकाश भी हुआ है। आप भी अपने पत्र में इस विषय का भलीभांति आन्दोलन कीजिए। सब पत्र एक साथ कोलाहल

करेंगे तब काम चलेगा। हिन्दी, उर्दू, बंगाली, मराठी, अंगरेजी सब भाषा के पत्रों में जिनके सम्पादक हिन्दू हों एक बेर बड़े धूम से इस का आन्दोलन होना अवश्य है, आशा है कि अपने शक्य भर आप इस विषय में कोई बात उठा न रक्खेंगे।

भवदीय

हरिश्चन्द्र

(14)

प्रियवरेषु,

कल पुस्तकें ठीक समय ही पर मिल गईं। उस में कई ऐसी हैं जो मेरे यहां हैं। सिद्धप्रश्नावली बहुत बिकने की वस्तु है अर्थात हज़ारों नहीं काल पाकर लाखों ही बिकैगी। एक तो इस को छाप लीजिए और एक मुहम्मद अली बीबी फ़ातिमा और हसन हुसैन का जीवन चरित्र को मुसलमान मात्र लगै। मुझ को बड़ी लज्जा है कि ऐसी कोई वस्तु आप ने नहीं छापी जो बहुत बिकै। पत्रों का संग्रह भी न छापने को थे? और जो इच्छा हो। मैं आप के अनुग्रहों का ऋणी हूं।

भवदीय

हरिश्चन्द्र

(15)

प्रियवर,

आप का पत्र आया। पुस्तकें भी पहुंचीं, दीपनारायण सिंह ने अपने ताश के खेल में मेरा नाम नहीं दिया है यह अनुचित किया है, जब कि उन्होंने स्वयं एक वस्तु को उलट पुलट कर छापा है तो फिर रजिस्टरी करा के दूसरों को क्यों निषेध करते हैं? आप जानते हैं कि मेरी पुस्तकें लाभ के लिए नहीं छपतीं, मुझे इस में कुछ ख़याल नहीं है परन्तु कृतज्ञता मनुष्य के शरीर का रक्त है। भला और कुछ नहीं तो कृतज्ञता तो स्वीकार करना था।

उदैपुर की वंशावली मेरे पास बिलकुल नहीं लिखी है। टाड का राजस्थान अंगरेजी में और उर्दू में छप गया है और थोड़ा सा बंगले में भी छपा है। वह बहुत अच्छा है उसमें और भी कई जगह से उसने मिलान कर के लिखा है। कुछ काग़ज़ात उदैपुर के मेरे पास है और एक उदैपुर की तवारीख़ ख़ास दरबार में की लिखी हुई है कुछ मेरी लिखी हुई है। यदि आप उन सबों को इकट्ठा कर के आप लिखना चाहैं तो मैं भेज दूं। आप को राजस्थान लेना होगा क्योंकि यह मेरे पास नहीं है। इस विषय में आप की क्या सम्मति है।

पुरानी पुस्तकों के विषय में जो आप ने लिखा है पहिले यह लिखिए कि किस शास्त्र की पुस्तकें आप के पास पहिले भेजी जायं?

आप को जो कुछ पूछना हो लिखिए उत्तर बराबर जाएगा।

'अन्धेर नगरी चौपट्ट राजा' जाता है इसे शीघ्र ही छाप दीजिए, इस की आवश्यकता है। 'भक्तमाल' आप अवश्य छाप दीजिए परन्तु आप के पास जो भक्तमाल है वह भी मुझे देखने को भेज दीजिए।

हिन्दी प्रदीप का लेक्चर आप अवश्य छाप सकते हैं।

'अन्धेर नगरी' यदि आप मेरे तरफ से छापना चाहें तो 500 कॉपी मैं लूंगा परन्तु मैं छपाई इत्यादि अवश्य दूंगा। यदि आप स्वयं छापना चाहें तो मैं 10 कॉपी लूंगा बाकी आप बेच लें।

कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि यह वही विक्रम हों। यह बंगला के जयदेव जी के जीवन चरित्र में लिखा है कि "हरिदास हीराचन्द बम्बई वाले ने लिखा है कि ये विक्रम के दरबार में थे" मेरी भी यही सम्मति है कि यह वही विक्रम हैं क्योंकि यह वह विक्रम नहीं हो सकते जिन का संवत चलता है। जयदेव जी उन के कई (सौ) साल बाद हुए हैं।

महाराज कुमार लाल खड्ग बहादुर मल्ल की विद्योत्साहिता, शील देखकर मैं बड़ा प्रसन्न हूं। उन का एक पत्र और एक नाटक मेरे पास भी आया है। हमारी उन से मिलने की बड़ी इच्छा है ईश्वर करे वे शीघ्र ही आवैं।

बूंदी की वंशावली जाती है। इस समय निम्नलिखित पुस्तकों के छपने की बहुत आवश्यकता है। लोग बहुत ढूंढ़ते हैं–

1. सत्य हरिश्चन्द्र–(एक बेर मुद्रित) इस की बहुत मांग आती है।
2. विद्यासुन्दर–(एक बेर मुद्रित) इस की 50 कॉपी गवर्नमेंट लेगी।
3. कर्पूरमंजरी–(एक बेर मुद्रित)
4. प्रेम फुलवारी (एक बेर मुद्रित) इस की बहुत ही मांग आती है।
5. भारत दुर्दशा (क. व. सु. में मुद्रित)

भवदीय
हरिश्चन्द्र

(16)

प्रियवरेषु!

आप का पत्र आया व्याकरण और 'बिहार दर्पण' आने पर मैं अपनी राय लिख भेजूंगा। काशीनाथ के मुकद्दिम में विलम्ब मेरे विन्ध्याचल चले जाने से हुआ था। वह सब कुछ तै हो गया आप खातिर जमा रखिए।

भक्तिसूत्र बिना ॐ के छापिए।

मेरे एक मित्र ने मुझसे बड़ा विश्वासघात किया। मेरा कुछ रुपया किसी कारण से उसके नाम रहता था। वह बेईमान होकर मिर्जापुर चला गया। वरंच मैं इसी वास्ते विन्ध्याचल गया था। अब वह साफ इनकार कर गया खैर दीवानी फौजदारी जो कुछ होगी देखी जायगी। अब एक गुप्त बात आप को लिखता हूं कि रु. सब एक साथ हाथ से निकल जाने से मैं बहुत ही तंग हो गया हूं, नालिश दीवानी फौजदारी सभी करनी है। महाराज से मांगा तो कहा कि दूसरे महीने में देंगे। यदि हो सके तो शीघ्र सहायता कीजिए। वा या कि मैं अपनी पुस्तकों में से जिसका आप चाहें स्वत्व हकतसनीक मैं आप के हाथ बेंच डालूं। वा और जैसे उचित समझिए। 400 रु. की मुझको जरूरत है इसमें आप का किया जितना हो सकै वा ना हो सकै जो कुछ हो तार द्वारा समाचार दीजिएगा। आदित्यवार तक रु. हमको यहां पहुंच जाना चाहिए। यहां अन्धेर नगरी विद्यासुन्दर इत्यादि का लोगों ने 25 रु. प्रति पुस्तक लगाया किन्तु लज्जा के कारण मैंने नहीं बेचा। वहां होगा तो जो वस्तु 1 की बिकेगी वह आप नोटिस में 4 की लिखिएगा। तब हमारी आप की और पुस्तक की प्रतिष्ठा रहैगी। वा यह जो आप न चाहैं तो जो कुछ हो लिखिएगा। सिद्धान्त यह समझिए कि इस विषय को मैं विशेष नहीं लिख सकता इस समय सहायता कीजिएगा तो मैं जन्म भर एहसान मानूंगा और किसी बात से आप से बाहर नहीं हूंगा। जो कुछ हां नहीं थोड़ा बहुत मंजूर हो शीघ्र तार दीजिए। मैं किसी विशेष कारण से यहां कुछ उपाय न करने के हेतु यों भुगतान किया चाहता हूं। बड़ी घबड़ाहट में हूं। उत्तर शीघ्र। यह पत्र आप को गुरुवार को मिलैगा उसी क्षण तार में जवाब दीजिए या ना हो सकै तो उसी दिन डाक द्वारा पत्र भेजिएगा। विशेष समाचार दूसरे पत्र में। यह सब कुछ अभी गुप्त रखिएगा। 400 रु. हो सके अत्युत्तम नहीं जितना भेज सकिए। फेर भेजने लिखिएगा तो दो एक सप्ताह में फेर भेजूंगा। इति।

भवदीय
हरिश्चन्द्र

(17)

बनारस
14 नवम्बर, 1884

प्रिय!

दो पत्र मिले। जो पुस्तकें आप छाप चुके हैं या छापते हैं उनका सब अधिकार आप ही को है इस विषय में जब जैसे कहिए लिख दूं। यदि यहां कोई लिखवाने आवे तो एक एक किताब सबमें की लिए आवे।

हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पत्र बाबू साहबप्रसाद सिंह के नाम

(1)

प्रियवरेषु निवेदनम्,

मैं रामनगर जाकर ऐसा फंस गया और प्रचंड वायु औ़र वर्षा के कारण ऐसा रुक गया कि न आ सका। नदी का वेग तो रामनगर के नीचे इतना था कि तीन दिन घाट बन्द रहा। मुझे इस असभ्यता के कारण क्षमा कीजिएगा। मेरी जीवनावंस्या कुछ ऐसी विचित्र है कि क्षणभर भी सावकाश नहीं मिलता। जो कोई मुझसे मिले वह मुझको महा असभ्य समझे किन्तु सुहृद लोगों से यह आशा नहीं। उन सब पत्रों की नकल भेज दीजिए यहीं क्रम लगाकर छापूंगा और अपने पत्र भी उसी के साथ दूंगा। मेरे अपराधों की क्षमा! क्षमा!! क्षमा!!!

भवदीय

हरिश्चन्द्र

(2)

प्रिय सम्पादक महाशय!

आपकी क्षत्रिय-पत्रिका के कई नम्बर मिले और अत्यन्त हर्ष हुआ ईश्वर करै आपकी पत्रिका द्वारा भारतवर्ष का पुनरुद्धार होय। मेरी बुद्धि में भी आपकी पत्रिका में वीर रस के काव्य विशेष रहने चाहिए। नेशनल संगीत नेशनल काव्य इन्हीं की भरती विशेष कीजिए वा पृथक पुस्तकाकार छापिए। चन्द्रिका में होली कजली जैसी नैशन छपी हैं और जो छोटे मोटे जातीय प्रसंग हैं वैसे ही सदा इसमें कुछ न कुछ रहा करै। प्राचीन राजों का वंश, उनकी कीर्ति, प्राचीन राजाओं के यश के कवित्त और उत्साह बढ़ाने वाले विषय अवश्य छपैं जिनमें आर्य्य लोगों की शिथिल और शीतल धमिनि में उष्ण रक्त फिर से प्रवाहित हो।

विजय वल्लरी नामक एक नवीन खंड काव्य भेजता हूं। पहले यहीं छापने का विचार था किन्तु जब यही ठहरा कि क्षत्रिय पत्रिका में छपै इसमें मैटर यहां डिस्ट्रिब्यूट कर दिया। इसको कृपा पूर्व्वक शुद्ध छापिएगा जिसमें मुझको फिर भी उत्साह हो।

चन्द्रिका की फाइल तो आपके पास होगी। उसमें भारत वीरत्व आदि विषय देखिएगा और यहां के योग्य जो कार्य्य हो लिखिएगा।

अनुग्रहेच्छुक

भाद्र शुक्ला 3, सं 1938 **हरिश्चन्द्र**

(3)

बनारस

25 मई, 1883

प्रियवरेषु,

ठाकुर जाहर सिंह, वजीरपुरा, आगरा, इनको सौ दो सौ अन्धेर नगरी लेनी है आप पूछकर आप के उनके सौदा पटै तो भेजिए।

कल बाबू रामकृष्ण आए थे नोटिस लेकर। बहुत झीखते थे। यदि आगे से वह लिख दें कि आप की छापी पुस्तकें वे न छापैंगे तो आप मानिएगा?

आगे से जो पुस्तक छापनी हो उसके पूर्व्व एक इश्तिहार भी दिया कीजिए कि मैं अमुक पुस्तक छापता हूं जिसमें मेरा इतना व्यय होगा। यदि कोई भूल से इसको छाप लेगा तो या तो उससे हम उसकी छापी हुई पुस्तक मात्र ले लेंगे या अपने एडिसन का व्यय ले लेंगे। वकीलों से मालूम हुआ कि ऐसा नोटिस काम देगा।

शास्त्री कहां हैं? मैं अभी वैसा ही हूं। आप कहां हैं?

स्नेहाभिलाषी

हरिश्चन्द्र

(4)

सम्भवतः

5-6-1883

प्रियवरेषु,

बहुत दिनों से आप का कोई पत्र नहीं आया। कारण ऐसा बोध होता है कि इधर वर्ष समाप्ति में कोर्स इत्यादि छापने की भीड़ थी।

मुहम्मद अली हसन हुसैन की जीवनी जिन क.व. सुधा पत्रों में हो वह भेज दीजिए। देखकर लौटा दूंगा।

मैं किसी कारण से अन्धेर नगरी की कुछ कॉपी चाहता हूं सो थोड़ी ही सी अपनी काम के लायक छाप लेता हूं किन्तु प्रकाशक इत्यादि के स्थान में नाम आप ही का छपैगा क्यौंकि ऐसा होने ही से उसका महत्त्व रहैगा। छपने पीछे दो तीन सौ कॉपी रेल द्वारा आपके पास पहुंचेगी। मुझको किसी लाग से दो तीन सौ कॉपी इसकी मुफ्त में बांटनी है। सिद्ध प्रश्नावली और भक्तिसूत्र का क्या होता है? बड़े व्याकरण का पक्का यत्न कीजिए तो बना दूं। शरीर अभी वैसा ही चला जाता है।

हरिश्चन्द्र

(5)

काशी

29-12-83

प्रियवरेषु,

मैंने सुना है कि बाबू राधालाल को आप पुस्तक नहीं देते और उसमें कारण यह है कि हिन्दी व्याकरण कोई दूसरा मनुष्य छापता है। यदि वह वही हिन्दी व्याकरण है जो मेरा बनाया है तो दूसरे को क्या मजकूर है कि छापै। यदि छापैगा वह मुलजिम होगा आप उसको अभी से नोटिस दे सकते हैं। बाद मुद्दत के एक वस्तु कोर्स में हुई है उसको किसी की मजाल है कि छापै। कोई छापै तो आप उससे अपनी नुकसानी नालिश करके ले सकते हैं। फिर किस बात की चिन्ता है। यही सब कहने को आज ही कल में बाबू राधालाल यहां आने को हैं, उनको मना कीजिए। हिन्दी व्याकरण सर्वतोभाव से आप का आप उसके स्वामी हैं और कोई कैसे छापैगा। चटपट प्रबन्ध कीजिए।

एक पत्र पहले भेजा है उत्तर इन दोनों का अतिशीघ्र आवै।

अभिन्न

हरिश्चन्द्र

(6)

प्रियवर,

आप का कृपा पत्र आया था परन्तु मेरे (री) माता का देहान्त हो गया इस से पत्रोत्तर में विलम्ब हुआ क्षमा कीजिएगा।

बूंदी के राज वंशावली का 'नोट' और दोहे भेजे जाते हैं। यह इतनी ही है।

इस में एक गलती है उसे बना लीजिएगा। वह यह है कि '(टाड साहिब के मत से हर्षिराय)' इस के आगे जो सन लिखा है उस को 755 बना दीजिए।

'अन्धेरं नगरी' का एक दृश्य यहीं रह गया था वह जाता है। इसे शीघ्रता से मुद्रित कीजिए क्योंकि 7 फरवरी को यह नाटक महाराज डुमरांव के यहां खेला जायगा उस अवसर पर बांटने के लिए इस की अत्यावश्यकता है, अतएव इस का प्रूफ बहुत ही शीघ्र भेजिए।

हरिश्चन्द्र

परिश्रम देना क्षमा कीजिएगा और भक्तमाल भी भेजिएगा।

भारतमित्र के सम्पादक भी टाड साहब का राजिस्तान छापना चाहते हैं दोनों जगह छपना अच्छा न होगा आप उन को पत्र लिख कर तै कर लें।

हरिश्चन्द्र

[बाबू साहबप्रसाद सिंह का जन्म बिहार के मुजफ्फरपुर जिलान्तर्गत रूपम ग्राम में हुआ था। वे बाबू रामदीन सिंह के मित्र थे। खड्गविलास प्रेस स्थापित होने पर वे उसके मैनेजर नियत हुए। साहबप्रसाद सिंह ने कई पुस्तकों की रचना की थी जिनमें 'भाषासार' और 'स्त्रीशिक्षा' बहुत चर्चित हुई थीं। ये दोनों पुस्तकें क्रमशः वर्नाक्युलर और संस्कृत संजीवन परीक्षा के कोर्स में लगी थीं। बाबू साहब की मृत्यु 28 अगस्त, 1901 ई. में हुई थी।]

143765

भारतेन्दु के पत्र बद्रीनारायण उपाध्याय 'प्रेमघन' के नाम

(1)

प्रिय,

एक बड़ी गुप्त बात है, इसमें बड़ी सावधानी से सहायता दीजिएगा, गोवर्धनदास रोड़ा उर्फ खरदूखनदास से इन दिनों माधवी से बिगाड़ हो गया है। वह चित्त का ऐसा कुनही है कि उस बिगाड़ का बदला यों लेना चाहता है कि माधवी की एक किता हुंडी 2300) रु. की जो वास्तव में माधवी के रुपये की है मगर उसके नाम की है उसको हजम किया चाहता है। अभी पूरी हजम नहीं किया इरादा है। इसी इरादे से वह हुंडी हम से लेकर विन्ध्याचल चला गया। एक मकान माधवी के वास्ते लिया जाता है। उसका बयाना देने को 100) रुपया हमने उससे मांगा हुंडी उसको दे दिया कि 100) आज दे बाक़ी रजिस्टरी के दिन दे। आज रजिस्टरी होनेवाली थी। आज रु. भेजते हैं यह कहके भी विन्ध्याचल चला गया। हम स्टेशन पर गए मुलाकात हुई। एक पुरजा गटू मिश्र के नाम लिख दिया और कहा कि हम कह आए हैं गटू मिश्र रुपया दे देंगे। गटू मिश्र कहते हैं कि हम कुछ नहीं जानते। कैसी हुंडी कैसा रुपया? यहां मकान की रजिस्टरी की हर्ज होती है। न जानै उसको क्या मंजूर है। जो हो कानूनन तो उन पर खयानत और जालसाजी का दावा अच्छा खासा होगा। मगर वह हमारे निज का आदमी है वह कभी ऐसी बेईमानी न करैगा खाली माधवी से बुरा मानकर तंग करता है। आप फौरन खत पाते ही उसको बुलाकर या जाकर मिलिए और एक तार हमने आप के नाम दिया है, उसके मुताबिक अनजान बनकर पूछिए कि कौन से हुंडी के रुपये के बिना बाबू साहब का हर्ज है वह भुगतान जल्दी कर दो। या तो अभी तार दो कि उनको रुपया मिल जाए या तुम कल बनारस चल जाओ। इस बखत तार उससे भिजवाइए, और एक तार हमारे नाम भी भिजवाइए।

बल्कि तार की खबर का खर्च भी आप दे दीजिएगा। हम आप के हिसाब में पाठकजी को दे देंगे। हमारा खत उसको मत दिखलाइएगा न कुछ हाल कहिएगा कि मैंने उसकी बुराई की है। अपना काम देखिएगा। जिसमें तार के खबर से चिट्ठी से गवाही से आप के सामने बयान से हर तरह से उसको पाबन्द कर लीजिएगा। रुपये बिना बड़ा ही हर्ज है। कह दीजिए कि आज शाम तक तार का इन्तिजार देखकर वह खुद चले आवैंगे। बाहर ही से इस आदमी को रवाने किया है इससे खर्च नहीं दिया है दे दीजिएगा। व्यय मात्र कहिएगा। आपके यहां के नौकरों को या पाठक जी को दे दूंगा। बड़ी सावधानी से चटपट काम हो। शाम के भीतर हमको खबर दीजिएगा तार पर कि क्या जवाब दिया। खर्च सब मेरे जिम्मे।

भवदीय
हरिश्चन्द्र

(2)

प्रियवरेषु,

आप का कृपा पत्र आया। यह संसार दुःख का सागर है और अपनी अपनी विपत्ति में सब फंसे हैं पर मैं सोचता हूं कि जितना मैं चारों तरफ से दुःख में जकड़ा हूं इतना और कोई कम जकड़ा होगा पर क्या करूं खैर चला ही जाता है। बाबूजी का यह तुक बहुत ही ठीक है—"है संसार का यह मजा, घन सरिस दुःख तड़ित सम सुख मोह छाजन छजा।" इन्हीं झंझटों से आजकल पत्र नहीं लिखा। क्षमा कीजिएगा। चित्त वैसा ही है। इसमें सन्देह न कीजिएगा। "सौ युग पानी में रहै मिटै न चकमक आग।" और सब कुशल है—आप का भी पचड़े में फंसना सुनकर बड़ा दुःख होता है। ठीक है—खैर न वह रही न यह रहेगी।

भवदीय
हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु के पत्र राधाचरण गोस्वामी के नाम

(1)

श्रीकृष्ण

प्रियवरेषु,

बहुत दिनों से आप का कोई पत्र नहीं आया, चित्त चिन्तित है, सर्व्वदा कुशल पत्र से चित्त आनन्दित किया कीजिए, यहां योग्य कार्य हो वह भी असंकुचित होकर लिखिए।

भवदीय स्नेहाभिलाषी
हरिश्चन्द्र

(2)

महोदयेषु,

शत कोटि प्रणामानन्तरं प्रेम्णा विज्ञापयति—श्री हरिदास, श्री हरिवंश जी, श्री नागरीदास जी, श्री आनन्दघन जी, और श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के चित्र हैं अनुग्रह पूर्व्वक लिखिए कि और किन किन महात्माओं के चित्र आपको मिले हैं—

दासानुदास
हरिश्चन्द्र

(3)

मित्रेषु,

दूसरी आवृत्ति में उत्सवावली में उत्सव का दिन शुद्ध कर दिया जाएगा।

तुम्हारा
हरिश्चन्द्र

(4)

4-5-88

अनेक कोटि साष्टांग दण्डवत्
प्रणामानंतरं निवेदयति

लघु र. क. मिली, धन्यवाद. नाटकादि जाते हैं, भारतेन्दु बहुत अच्छी चाल से चला है किन्तु तनिक कड़ाई विशेष है। लेख परिपाटी उत्तम है, क्या यह वही लाहौर वाला है? मैं अब तक नहीं अच्छा हुआ, बड़ी ही सुस्ती है, प्राण बचैं तो कुशल हैं, हमारी सर्वस्य निधि जो आप संग्रह कर रहे हैं शीघ्र भेजिए, इस दुःख में सर्व प्रकार सहायक होगी।

श्री चरण सेवक
हरिश्चन्द्र

(5)

श्री हरिः

अनेक कोटि साष्टांग दंडवत प्रणामानन्तरं निवेदनम्,

आज के भारतेन्दु में प्रथम पत्र आर्य्य समाजियों के विषय में जो है उसमें मेरी बुद्धि में यह बात आती है कि ब्राह्मणों को एक ही बेर छोड़ देने की अपेक्षा उनको सुधारना उत्तम है।

भारतेन्दु टाइप में छपै तो बड़ी उत्तम बात है। 24 पेज मै (मय) टाइटेल पेज के 250 कॉपी छपाई कागज समेत 25 रु. में उत्तम छप सकता है, यहां छपे तो मैं प्रूफ आदि भी शीघ्र दिया करूं।

मैं इन दिनों महात्माओं के चित्रों की फोटोग्राफ में कॉपी करके संग्रह कर रहा हूं, नागरीदास श्री महाप्रभु आदि कई चित्र तो हैं, कुछ यहां भी मिलेंगे?

आगरे के उपद्रव का वृत्तान्त मैंने विलायत कई मित्रों को लिखा है उसके प्रमाण के हेतु कई समाचार-पत्र भी भेजे हैं। इस मास का भेजूंगा इससे इसकी एक कापी और दीजिए।

अब की इसमें समालोचना छोटी छोटी बहुत सुन्दर है। शृंगारलतिका पर नकछेदीजी ने रजिस्टरी भी करा ली। यह मजा देखिए, राजा मानसिंह के मानो आप पोष्यपुत्र हैं। ललिता ना. चन्द्रावली की छाया पर बनी है, अस्तु, बिचारे वैष्णव मत का न भेद जानें न आप वैष्णव, वैष्णव, पत्रिका के सम्पादक तो हैं–

नाटकों में गंवारी बैसवारे की मेरी बुद्धि में उत्तम होगी क्यौंकि इस प्रदेश में दूर तक बोली जाती है।

प्रतिपदा

दासानुदास
हरिश्चन्द्र

(6)

अनेक कोटि साष्टांग प्रणाम

आँप का कृपा पत्र मिला चन्द्रिका सेवा में भेजी है स्वीकृत हो। आप अनेक ग्रन्थों का अनुवाद करते हैं तो चैतन्य चन्द्रोदय का अनुवाद क्यों नहीं करते? बड़ा ही प्रेममय नाटक है, इसके छन्द मात्र मैं दत्तचित्त होकर बना दूंगा, उत्साह कीजिए। जातीय गीत भी कुछ बनें और छपें, मैं बहुत उद्योग करता हूं किन्तु किसी ने न बनाकर भेजे।

गुरुवार

आपका
हरिश्चन्द्र

(7)

महोदयेषु,

मैं तीन चार दिन में शायद श्रीवन आऊं, कृपापूर्वक एक स्थान अपने अति निकट रखिए, दो बात, मुख्य आराम देख लीजिएगा एक तो पाखाना स्वच्छ हो और दूसरे दिन को गर्म न हो चाहे अति छोटा हो।

हरिश्चन्द्र

(8)

प्रणति पूर्विका विज्ञप्तिः

श्री अद्वैत महाप्रभु का उत्सव बंगला पत्रों में वैसा ही है जैसा उत्सवावली में लिखा है, क्या वह दिन नहीं है जो भारतेन्दु में 7 लिखी है? इसको जरा निश्चय कर लीजिए, मैंने बंगला कई पत्र देखे सब में 5 ही मिली।

दासानुदास
हरिश्चन्द्र

(9)

''भक्त्यात्वनन्ययालभ्यो हरिरन्यद्विडम्बनम्''

Heaven is love and love is heaven

अनेक शतकोटि प्रणामानन्तरं निवेदयति,

कृपा पत्र मिला, बच्चा को पत्र में लिख दिया है कि आप की सेवा में यात्रा से लौटकर आवे, मथुरा एजेंसी वालों को कह दीजिए कि उनके पास जिन जिन महात्माओं की कॉपी बिकाऊ हों उनका एक सूची पत्र मेरे पास भेज दें।

पुस्तकों का सूची पत्र छापा तो है।

दासानुदास
हरिश्चन्द्र

(10)

शतकोटि दंडवत् प्रणामानन्तरं निवेदयति,

काशिराज ने आपसे यह प्रश्न किया है कि श्री राधारमण, श्री राधावल्लभ आदि विग्रहों के साथ श्री राधिका जी की मूर्त्ति क्यों नहीं है? श्रीमद्भागवत में उनका वर्णन कहां है?

विशेष कृपा, कष्ट क्षमा।

चिरबाधित
हरिश्चन्द्र

(11)

अनेक कोटि साष्टांग दंडवत् प्रणामानन्तरं निवेदयति,

आप का कृपा पत्र पाया, बृहद्गौर गणोद्देश दीपिका वा बृहद्गणोद्देश दीपिका जो जो जितनी मिलैं भेजिएगा। जो पुस्तकें वहां मिलती हैं, यदि आप कृपापूर्व्वक उनका एक सूचीपत्र भेज दें तो बड़ा उपकार हो। कीर्तन की पुस्तक आप दो भेज दें एक नित्य पद की दूसरी उत्सव पद की। मुक्तावली लोग क्यों नहीं देते? कदम्ब की लकड़ी श्री...जी के वेष्णु निर्म्माण के हेतु चाहिए मयूरपिच्छ चन्द्रिका मात्र ही भेजिएगा हम आपसे किसी बात से बाहर नहीं जिस प्रकार आप भेजिएगा हमको शिरसाधार्य्य है। रासोत्सव व्यवस्था जो कल के पत्र में छपैगी वह श्रीवन के पंडितों

को दिखलाइएगा। देखिए लोग क्या कहते हैं और सब कुशल है।

रविवासरे

भवदीय
हरिश्चन्द्र

आज सबेरे से यहां घनघोर वृष्टि हो रही है।

(12)

अनेक कोटि साष्टांग दंडवत प्रणामानन्तरं निवेदयति,

निस्सन्देह आप मुझसे व्यर्थ रुष्ट हुए, इस वर्ष के पहिले ही नम्बर में आपका प्रतिवाद छपा है, भला इसमें मेरा क्या दोष है, जिसने आपकी निन्दा किया है उसको दो हजार आप गाली दीजिए देखिए छपता है कि नहीं। चन्द्रिका के भेजने का प्रबन्ध आदि सब अब पं. गोपीनाथ जी के जिम्मे है। मैं उनसे पूछूंगा कि क्यों नहीं गई और भिजवा दूंगा। संसार में भले बुरे सब प्रकार के लोग हैं कोई किसी की निन्दा, कोई स्तुति करता है। हम तो केवल तटस्थ हैं, हमारे चित्त में कल्मष तो तब आप को प्रतीत करना था जब आप का प्रतिवाद न छपता।

श्रीवन से हमें कई पुस्तकें मंगाना है आप कृपापूर्व्वक उसका प्रबन्ध कर दें तो हम नामादिक लिख भेजें। और सर्व्व कुशल है।

शनि

आपका दासानुदास
हरिश्चन्द्र

(13)

श्रीहरिः।

प्रिय पूज्य चरणेषु!

होली मंगल

क्या आप चित्रों का विषय भूल गए? क्या अभी तक एक भी नहीं बने? तनिक ध्यान रहे। मेरे योग्य सेवा हो सो लिखिएगा।

दासानुदास
हरिश्चन्द्र

(14)

श्रीकृष्ण

हम लोगों का बड़ा दिन

अनेक कोटि साष्टांग दंडवत् प्रणामांतरं निवेदयति,

महात्माओं ने जो पद बनाए हैं उनमें प्रिया पीतम का जो संवाद है वा अन्य सखियों की उक्ति हैं उन्हीं सबों के यथास्थान नियोजन से एक रूपक बने तो बहुत ही चमत्कार हो अर्थात् नाटक की और जितनी बातैं हैं अमुक आया गया इत्यादि, अंक दृश्य इत्यादि मात्र तो अपनी सृष्टि रहै किन्तु संवाद मात्र उन्हीं प्रवीनों के पदों की योजना से हों। जहां कहीं पूरा पद रहै वहां पूरा कहीं आधा चौथाई एक टुकड़ा जितना आवश्यक हो उतना मात्र उनमें से ले लिया जाय। यह भी यों ही कि एक बेर पदों में से चुन चुन कर अत्यन्त चोखे चोखे जो हों वा जिनमें कोई एक टुकड़ा भी अपूर्व हो, वह चिह्नित रहै फिर यथा स्थान उनकी नियोजना हो, ऐसा ही 'गीत गोविन्द' से एक संस्कृत में हो, बहुत ही उत्तम ग्रन्थ होगा। आप परिश्रम करैं तो हो मैं तो ऐसा निर्बल हो गया हूं कि बरसों में सुधरूंगा।

दासानुदास

हरिश्चन्द्र

(15)

श्रीकृष्णाय नमः

अनेक कोटि दंडवत् प्रणामानन्तरं निवेदयति,

पूर्व्व में एक पत्र आपको लिखा था, उसमें चित्रों के विषय में आप को जो लिखा था उसका कुछ आपको पता लगा? व्यास जी, श्री अद्वैत प्रभु, श्री नित्यानन्द प्रभु, श्री गोपालभट्ट जी या और और किसी महात्मा की तस्वीरैं मिलें और दस दिन के वास्ते भी मंगनी मिल सकैं तो मैं कॉपी करा लूं। कष्ट क्षमा—

दासानुदास

हरिश्चन्द्र

(16)

शतशः प्रगति के पश्चात् निवेदन!

क्या चित्रों की याद एकाबारगी भुला दी? इतने चित्र हैं, श्री श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु, स्वामी हरिदास जी, हरिवंश जी, नागरीदास जी, आनन्दघन जी और हमारे आचार्य्य और उनके द्वितीय पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ जी इनके अतिरिक्त और जिन महात्माओं के मिलैं दीजिए। कष्ट देने को बारम्बार क्षमा कीजिए।

दासानुदास
हरिश्चन्द्र

(17)

पूज्य चरणेषु,

श्री रूपसनातन गोस्वामि की जाति क्या थी? श्री महाप्रभु का जीवन चरित्र एक बंगला से हिन्दी किया है उसमें यवन लिखा है। मैंने कायस्थ सुना है। हमारे निज सम्प्रदाय के ग्रन्थों में भी कायस्थ लिखा है। इसका उत्तर अति शीघ्र दीजिए।

श्री शचीदेवी और श्री विष्णु प्रिया कब तक जीवित रहीं यह भी लिखिएगा। अपने परम पूज्य पिताजी से मेरा साष्टांग प्रणाम कहिएगा।

द्वितीया

दासानुदास
हरिश्चन्द्र

(18)

अनेक कोटि साष्टांग दंडवत् प्रणामानन्तरं निवेदयति,

आप का कृपा पत्र मिला, आप ने ऐसा क्यों लिखा है। अलौकिक और लौकिक दोनों सम्बन्ध से हमारे आप पूज्य हैं।

चित्र जो मिलै अति शीघ्र यत्नपूर्व्वक भेजें। जितने चित्र जितने दिन के हेतु मंगनी आवें उनका वृत्त लिखिएगा कि उतने ही दिन में वे फेर दिए जायं। जो मूल्य पर मिलें उनका मूल्य लिखिएगा। आप अलौकिक चित्र पुस्तकादि जो मुझको भेजते हैं इसका मैं जन्म-जन्म ऋणी रहूंगा।

24 डिसेम्बर, 1883
काशी

दासानुदास
हरिश्चन्द्र

(19)

शतकोटि दंडवत् प्रणामानन्तरं निवेदयति,

बाबू राजेन्द्रलाल मित्र ने एक प्रबन्ध में इस बात का खंडन किया है कि महाप्रभु जी मध्वमतावलम्बी थे इसमें प्रणाम, उन्होंने यह आज्ञा किया कि "यत श्रीधरविरुद्धं तन्नामास्माकमादरणीयम्!" वह कहते हैं कि मध्व मत के ग्रन्थ मात्र ही श्रीधर के विरुद्ध हैं। इसका क्या उत्तर है? वैष्णवदीक्षा आपने कब और किससे लिया था।

दासानुदास

हरिश्चन्द्र

मैं इन दिनों महाप्रभु जी के चरित्र का नाटक लिखता हूं उसी के हेतु इन बातों को जानने की जल्दी है।

हरिश्चन्द्र

(20)

अनेक कोटि साष्टांग दंडवत् प्रणामानन्तरं निवेदयति,

बच्चा और उसकी मां व्रजयात्रा करने जाती हैं और जो चित्र हों सो बच्चा को दीजिएगा।

दासानुदास

हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु का पत्र पं. चिन्तामणि शर्मा के नाम

श्री युक्त प्राणोपम पं. चिन्तामणि शर्म्मणे भगवत स्मरण पूर्व्वक निवेदनामिदं।

हमारे वात्सल्य का परम पात्र कविवचन सुधा पत्र जो अब आप के हस्तगत है ऐसी सुरीत से समय पर निकलता है कि जैसा उचित है। हमारे लगाए इस अमृत वृक्ष के लालन पालन का फल तुम्हें ईश्वर देगा क्यौंकि मुझ से कुछ इन दिनों दैव ऐसा रुष्ट है कि मैं इस के पुरस्कार में आप को आशीर्वाद के अतिरिक्त कुछ नहीं दे सकता और न जैसी कि लोक प्रवृत्ति देखता हूं उस से कुछ दूसरों से आशा है। हाय! पश्चिमोत्तर देश के हेतु मैं सिर पटक दूं क्या करूं कुछ सूझता ही नहीं। न जाने क्या हिन्दुओं से ऐसा अपराध बना है जो करुणामय हो कर भी ईश्वर इन से ऐसा विमुख है।

यह तो हुआ। अब नई बात सुनिए। 'बालाबोधिनी' का नाम हिन्दी समाज के सामाजिक मात्र जानते हैं। यह पत्रिका यहां की स्त्रियों की कितनी उपकारिणी थी यह मुझे वक्तव्य नहीं जगत् साक्षी है। पर मैं बड़े शोच से लिखता हूं कि मैंने उस का मुद्रण होना आगे से रहित किया। इस का कारण आप भलीभांति जानते हो कि सरकार का सहायता न मिलना मात्र है क्योंकि स्वयं व्यय देकर मुझे सावकाश नहीं। इस के न चलने का जो दुःख है वह कहने के बाहर है क्योंकि अपने लगाये विष वृक्ष और अपने अंक में लालित कुपुत्र का भी संसार को खेद होता है। भला यह तो अमृतलता और प्राण से भी अधिक प्रिया सन्तति थी। सरकार ने इस नये वर्ष से इस का लेना बन्द किया। इस का कारण हमारी हिन्दी है जो सर्वदा विरोधियों के हृदय में खटकती है। यह सच है कि बड़ों को नेत्र नहीं होते केवल कान होते हैं। अन्यथा हिन्दी की यह दुर्दशा नहीं होती।...

अब इस विषय में मुझे वक्तव्य यह है कि यद्यपि इस को मैंने बन्द कर दिया तथापि मुझको सन्तोष नहीं होता और बेर बेर मेरा जी उमगता है कि और नहीं तो इसका नाम तो रह जाय और इसी हेतु आप को यह पत्र लिखा है। जैसे गंगा में मिलकर सब जल गंगा हो जाते हैं वैसे ही 'कविवचन सुधा' रूपी अमृत प्रवाह में यह भी मिल जाय और अपने प्यारे बड़े भाई के साथ अपने दुःखी जीवन को

यह बितावे और इसी बहाने इस का नाम बना रहे। आशा है कि आप स्वीकार कर लोगे क्योंकि 'बालाबोधिनी' पर आप का भी स्नेह है कुछ मेरा ही नहीं।

भवदीय

हरिश्चन्द्र

[1 जनवरी, 1874 ई. से चार वर्षों तक लगातार प्रकाशित होने के बाद 'बालाबोधिनी' को 'कविवचन सुधा' में मिला दिया गया था। यह पत्र इस तथ्य पर प्रकाश डालता है कि ऐसा क्यों करना पड़ा और भारतेन्दु को इस तरह का निर्णय लेने में कितना कष्ट हुआ।]

भारतेन्दु के पत्र 'भारत मित्र' सम्पादक के नाम

(1)

प्रचलित साधुभाषा में कुछ कविता भेजी है। देखिएगा कि इसमें क्या कसर है और किस उपाय के अवलम्बन करने से इस भाषा में काव्य सुन्दर बन सकता है। इस विषय में सर्वसाधारण की अनुमति ज्ञात होने पर आगे से वैसा परिश्रम किया जाएगा। तीन भिन्न भिन्न छन्दों में यह अनुभव करने ही के लिए कि किस छन्द में इस भाषा का काव्य अच्छा होगा, कविता लिखी है। मेरा चित्त इस से सन्तुष्ट न हुआ और न जाने क्यौं व्रजभाषा से मुझे इस के लिखने में दूना परिश्रम हुआ। इस भाषा की क्रियाओं में दीर्घ मात्रा विशेष होने के कारण बहुत असुविधा होती है। मैंने कहीं-कहीं सौकर्य्य के हेतु दीर्घ मात्राओं को भी लघु करके पढ़ने की चाल रक्खी है। लोग विशेष इच्छा करैंगे और स्पष्ट अनुमति प्रकाश करैंगे तो मैं और भी लिखने का यत्न करूंगा।

[यह पत्र शिवनन्दन सहाय की पुस्तक 'हरिश्चन्द्र' से लिया गया है। ऐसा लगता है कि पत्र अधूरा है। उन्होंने अपनी सुविधा के अनुसार पत्र का प्रारम्भिक और अन्तिम भाग छोड़कर उद्धृत कर लिया है। इसी से सम्बोधन और हस्ताक्षर नहीं है।]

(2)

प्रिय सम्पादक!

भूपाल की रईस और स्वामिनी वर्तमान श्रीमती बेगमसाहिबा उर्दूभाषा में बहुत अच्छी कवि हैं, इन की गजल मैं 'चमनिस्तानुपर बहार' और 'गुलज़ारपुर बहार' इत्यादि में प्रकाशित कर चुका हूं। सम्प्रति उन के बनाए भाषा में कई एक भजन मेरे पास आए हैं। मैं उनमें से दो आप के पास प्रकाश करने को भेजता हूं। इस को देखकर क्या साधारण आर्य्य धर्म्माभिमानी ललनागण लज्जित न होंगी कि एक मुसलमान और अत्यन्त राज भारव्यग्र स्त्री ने ऐसी सुन्दर कविता की है। क्या वह भी दिन देखने में आवैगा कि हमारी गृहलक्ष्मी गण भी कुछ बनावैंगी? इनका काव्य में 'रूपरतन' नाम है। नाम भी बड़े ठाट बाट का रक्खा है।

भवदीय
हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु का पत्र कलकत्ता के मित्र के नाम

"इतने दिनों के अनन्तर मुझे एक हिन्दी के सच्चे प्रेमी मिले हैं, जो अपने वचन के सच्चे और कार्य्य में पक्के हैं इन्होंने मेरी पुस्तकों के छापने का प्रण किया है और मेरी अर्थ सहायता भी यथेष्ट कर रहे हैं जिस से मैं अब निश्चिन्त होकर कुछ लिखने में प्रवृत्त हूं। परन्तु खेद है कि उक्त मित्र कुछ काल पूर्व न मिले, नहीं तो मैं बहुत कुछ कर सकता, क्योंकि मेरा शरीर स्वस्थ रहता था। अब मेरा स्वास्थ्य भंग हो गया है। इससे मैं यथा योग्य श्रम नहीं कर सकता। यों तो मेरे मित्र बहुत हैं, परन्तु प्रायः सब सम्पत के साथी ही निकले, अधिकांश स्वार्थी निकले। किसी से कुछ आशा नहीं, हां इनमें से अधिकांश मित्र वे हैं जो मेरे ग्रन्थों को छापकर निज उदर पूर्ण करने ही को मित्रता का निदर्शन समझते हैं। परन्तु ईश्वर का धन्यवाद है कि उसने इतने दिनों बाद एक सच्चा प्रेमी मिला दिया जो कि हिन्दी के लिए बड़े व्यग्र हैं और हिन्दी की उन्नति के लिए ठीक मेरी तरह तन मन धन श्री कृष्णार्पण करने को कटिबद्ध हैं। आप इस समाचार से प्रसन्न होंगे कि ये बीच-बीच में मेरी अर्थ सहायता तो करते ही आते हैं। परन्तु सम्प्रति इन्होंने एक साथ 4000 रु. देकर मुझे ऋण से उऋण किया है। क्या आप ऐसे महात्मा का नाम भी सुनना चाहते हैं? लीजिए सुनिए–इनका नाम महाराजकुमार श्री रामदीन सिंह, क्षत्रिय पत्रिका सम्पादक है, मैं अब किसी को पुस्तकें छापने न दूंगा, प्रकाशित अप्रकाशित समस्त पुस्तकों का स्वत्व भी इन्हीं को दिए देता हूं।..."

हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु का पत्र फ्रेडरिक के. हेनफोर्ट के नाम

आप का...तारीख 1883 का पत्र मिला। जवाब देने में देर हुई। कारण मेरी पांच महीने से चल रही बीमारी, पहले बुखार और कुछ सप्ताह से हैजा। मैं आशा करता हूं कि आप मेरे इस विलम्ब के कारण को मेरी बेपरवाही नहीं समझेंगे।

कुछ दिन पहले मैंने आप को (राष्ट्रीय गीत) जातीय संगीत को संस्कृत में गाने के विषय पर ब्राह्मणों की सम्मति भेजी थी। उस सम्मति पत्र पर बनारस के संस्कृत के सर्वोत्तम पंडितों के हस्ताक्षर हैं। उसी के साथ मैंने आपको जातीय संगीत का संस्कृत अनुवाद भी भेजा है जिसे पं. गंगाधर शास्त्री ने किया है।

अब इस पत्र के साथ मैं आप के जातीय संगीत का हिन्दी अनुवाद भेजता हूं जिसे मैंने आपके आदेशानुसार स्वयं किया है। मेरी बीमारी के कारण यह इतना उत्तम नहीं हो सका जितना मैं चाहता था। परन्तु दूसरे अनुवादों के अपेक्षा यह अच्छा है, विशेषतया इसलिए कि यह मूल जातीय संगीत के नजदीक है। इसमें मैंने हर लाइन में मूल के भाव के विचारों का ध्यान रखा है।

ऐसे काम में जो एक विशेष कठिनाई उपस्थित होती है वह यह है कि अंग्रेजी की भांति हिन्दी में वैसे तुलनात्मक 'मीटर' नहीं है। इसलिए मैंने ऐसे पदों की व्यवस्था की है जो छोटे हों और जो मूल अंगरेजी की तरह हों।

भारत की एक प्रथा के अनुसार हर राग के गायन का एक समय निश्चित होता है। इसके अनुसार सायंकाल का राग प्रातःकाल नहीं गाया जाता। यह प्रतिकूल ही नहीं, वरन पाप समझा जाता है। इसलिए जहां अंग्रेजी के पद्य तो किसी भी समय गाये जा सकते हैं हिन्दी के पद्य नहीं गाये जा सकते। मैंने ऐसी पद्य प्रणाली चुनी है कि वह किसी भी समय गाये जा सकते हैं।

इंग्लैंड में तो आपने इस विषय पर अब विचार किया है। मैंने कई वर्ष हुए सोचा था कि जातीय संगीत, या सम्राज्ञी के लिए शुभकामनाओं की कविता हमारे देश की सभाओं में भी गाई जानी चाहिए। मेरी मनोकामना अभी तक पूरी नहीं हो पाई। मेरी अपनी इच्छापूर्ति के लिए मैंने अपनी कृतियों के अन्त में एक पद्य दे दिया है। जब क्वीन विक्टोरिया ने 1877 में 'भारत सम्राज्ञी' का पदवी ग्रहण की थी तब मैंने उर्दू में एक गजल लिखी थी। यह एक सार्वजनिक सभा में गाई भी

गई थी। और...पेरिस...के अखबारों में इसकी समालोचना भी छपी थी।

यदि आप को मेरे अनुवाद में कोई भी त्रुटि दिखाई दे, या आपके विचार में किसी पद में परिवर्तन आवश्यक हो, तो कृपा करके निस्संकोच मुझे लिख दीजिए।

मैं आपकी सुविधा के लिए इस गीत की कुछ छपी हुई प्रतियां भेज रहा हूं, ताकि आप इन्हें उन विशेषज्ञों में तुरन्त बांट सकें, जिनकी सम्मति आप आवश्यक समझें।

मुझे यह पढ़कर बड़ी खुशी हुई कि यदि सम्भव हुआ तो मेरी कविता सम्राज्ञी को भी भेंट की जाएगी।

यह तो आप जानते ही हैं कि भारतीय जनता के हृदय में सम्राज्ञी के लिए अथाह राजभक्ति है। ईश्वर भक्ति को छोड़कर यह भक्ति सबसे अधिक है। और केवल अपनी सम्राज्ञी के लिए ही है। इसीलिए मेरे जैसा तुच्छ सेवक क्यों नहीं फूला समाए कि उसे ऐसा अवसर मिला है कि वह सम्राज्ञी के प्रति अपनी राजभक्ति का प्रदर्शन कर सके।

हरिश्चन्द्र

[भारतेन्दु का यह पत्र अधूरा है। पूरा पत्र प्राप्त न हो सका। ब्रिटिश राष्ट्रगीत का भारतेन्दु द्वारा किया हुआ अनुवाद नीचे दिया जा रहा है–]

(1)

प्रभु रच्छहु दयाल महरानी,
बहु दिन जिए प्रजा सुखदानी,
हे प्रभु रच्छहु श्रीमहरानी,
सब दिस में तिन की जय होइ,
रहै प्रसन्न सकल भय सोइ,
राज करे बहु दिन लों सोई,
हे प्रभु रच्छहु श्रीमहरानी।

(2)

उठहु उठहु प्रभु त्रिभुवनराई,
तिन के अरिन देहु अकुलाई,
रन महं तिनहि गिरावहु मारी।
सब दुःख दारिद दूर बहाओ,
विद्या और कला फैलाओ,
हमरे घर महं शांति बसाओ,
देहु असीस हमें सुखकारी।

(3)

प्रभु निज अनगन सुभग असीसा,
बरसहु सदा बिजयनी सीसा,
देहु निरुजता यस अधिकारा,
कृषक, राजसुत, कै अधिकारी,
करहिं राज की संभ्रम भारी,
निकट दूर के सब नर नारी,
करहिं नाम आदर विस्तारी।

हरिद्वार के पंडे के बारे में पत्र

सन 1871 की अपनी यात्रा का वर्णन भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस छप्पय में किया है–

प्रथम गये चरणाद्रि कान्हपुर को पग धारे।
बहुरि लखनऊ होइ सहारनपूर सिधारे॥
तहं मनसूरी होइ जाइ हरिद्वार नहाये।
फेर गये लाहौर सुपुनि अम्बरसर आये॥
दिल्ली दै ब्रज बसि आगरा देखत पहुंचे आय घर।
तैंतीस दिवस में यातरा यह कीन्ही हरिचन्द्र बर॥

इसी यात्रा में उन्होंने हरिद्वार के एक पंडे के सन्दर्भ में लिखा था–

सम्वत वसु युग ग्रहससी, पूनो शुद्ध अषाढ़।
रविवासर हरिद्वार में, लिख्यो पत्र अति गाढ़॥
मित्र मिलन मधुबन गमन के हित कियो पयान।
मध श्री गंगाद्वार में, हरखि कियो अस्नान॥
संग कन्हैया लाल जू और किशुन इकदास।
रैन युगल बसि कै कियो, न्हान चन्द्र के ग्रास॥
द्विजवर नागर मल्ल पुनि, श्री गोबिन्दा राम।
पोखरिया उपनाम है, तीरथ द्विज गुन धाम॥
इनको पंडा मानि के, पूजन बहुविधि कीन्ह।
पाठ कियो शुक संहिता, यथाशक्ति धन दीन्ह॥
यातें जो आवै इतै, मेरे कुल के माहिं।
सो इनही को पूजिहें, और द्विजन को नाहिं॥
विमल बैश्यकुल कुमुद ससि, सेवत श्री नन्दनन्द।
निजकर कमलन सों लिख्यो, यह कविवर हरिचन्द॥

[शिवनन्दन सहाय की पुस्तक 'हरिश्चन्द्र' से साभार]

मल्लिका का पत्र भारतेन्दु के नाम

आज तीस दिन हुआ आपको खर्च के लिए हम लिखे थे, पर आप उस पर ध्यान ही नहीं दिए कहिए, तब कैसे काम चलेगा? आपको स्पष्ट हम सब हाल लिखकर समझा दिए पर आप कुछ भी नहीं समझते हम कैसे आपको समझें, हमारी यहां तक अवस्था है कि समय में जो खर्च न आवै और खर्च पूर रहे उपवास तक करना पड़ेगा, असबाब जो कुछ हो छोड़कर हमारे पास जो कुछ है तो आप से छिपा नहीं है आप से छिपा होगा तो वह ठाकुरजी अन्तर्यामि से तो नहीं न छिपा है आजकल हमारा कैसे कष्ट से चलता है सो कसम खाकर कह सकते हैं ऐसा कभी न पड़ा था। जैसे ईश्वरेच्छा–

आज हमको एक महीना का 21/- दीजिए और उस महीना का जोकी जाता है मजुरीन इत्यादि का तङखा, बड़ा बेइज्जत हो रहे हैं–ब्राह्मणी को रखने की हमारा अब ह 21/- में सक् नहीं है–सो उसका पिछला और अबका हिसाब चुका दीजिए उसको छोड़ा दें।

खर्च के लिए बार बार लिखते हमको शर्म लगता है और न लिखैं तो भूखे मरैं यह शोचकर झख मारकर लिखना पड़ता है हमारे इस अपराधों को क्षमा कीजिएगा। आज यदि खर्च न भेजिएगा सो कोई तरह मेरा काम नहीं चलेगा।"

[कविवचन सुधा, 28 सितम्बर, 1871]

राधालाल, डिप्टी इंस्पेक्टर आफ स्कूल, गया (बिहार) का पत्र श्री गोकुलचन्दजी के नाम

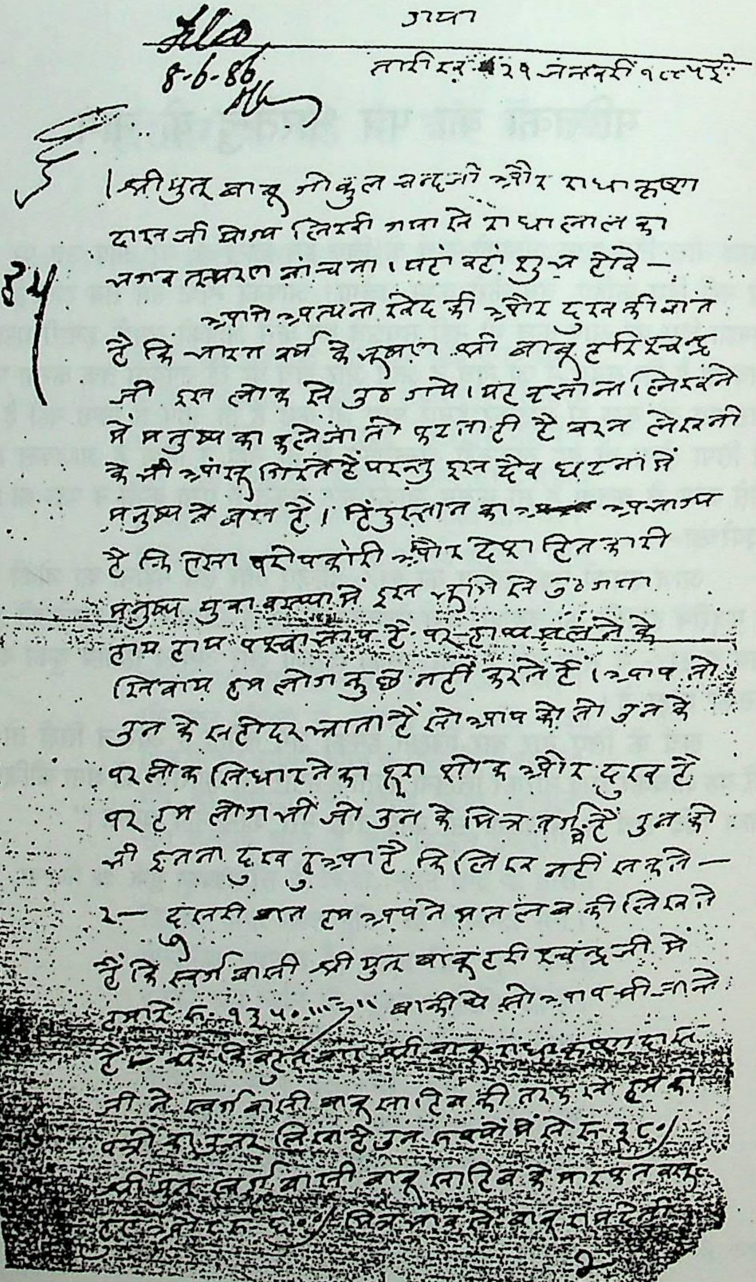

File
8-6-86

गया
तारीख २९ जनवरी १८८५ ई॰

श्रीयुत बाबू गोकुलचन्दजी और राधाकृष्णदासजी योग्य लिखी गया से राधालाल का जय गोपाल बांचना। यहां वहां कुशल होवे—

आगे अत्यन्त खेद की और दुख की बात है कि भारत वर्ष के भूषण श्री बाबू हरिश्चन्द्र जी इस लोक से उठ गये। यह समाचार सुनने से मनुष्य का कलेजा तो फटता ही है बरन लेखनी के भी आंसू गिरते हैं परन्तु इस दैव घटना से मनुष्य के बस नहीं। हिंदुस्तान का अभाग्य है कि ऐसा परोपकारी और दया हितकारी मनुष्य युवा अवस्था में इस भूमि से उठ गया। [illegible] हाय हाय पछताने के सिवाय हम लोग कुछ नहीं करते हैं। आप तो उन के सहोदर भ्राता हैं सो आप को तो उन के परलोक सिधारने का बड़ा शोक और दुख है पर हम लोग भी जो उन के मित्र थे हैं उन को भी इतना दुख हुआ है कि लिख नहीं सकते—

२— दूसरी बात हम आपसे निवेदन करते हैं कि स्वर्गवासी श्रीयुत बाबू हरिश्चन्द्र जी से हमारे रु॰ १३५०…॥ बाकी थे सो आप भी जानते हैं [illegible] कि बहुत बार श्री बाबू राधाकृष्णदास जी ने स्वर्गवासी बाबू साहिब की तरफ से हम को पत्री का उत्तर लिखा है उन रुपयों में से रु॰ ३८०) श्रीयुत स्वर्गवासी बाबू साहिब के मारफत [illegible] रु॰ [illegible]) जिन को बाबू [illegible]

२

सिंहजी बांकीपुर खड्गविलास प्रेस के अध्यक्ष ने

खड्गविलासी बाबू साहिब ने किताब में दिये कुल
६८०) रु. तो इसरार के बाबत गुल हुए अब केवल
रु ३४०।।।=) बाकी रहे हैं और ये रुपये बहुत
थोड़े हैं तो यदि आप लोग, खड्गविलासी बाबू
साहिब के हिसाब में हम को दे देवें तो उन का
देन अदा हो जावे, हम को हमारा रुपया मिल जावे
और खड्गविलासी बाबू साहिब स्वर्ग में सुनकर
आनंदित होंगे इसलिये आप कृपा करके
इन रुपयों का प्रबन्ध कर दें तो हम बहुत धन्य
वाद मानेंगे। तो कृपा करके इसका उत्तर शीघ्र
लिखिये —

हमारा हिसाब स्वर्गवासी बाबू साहिब
के साथ था आप लोगों से कुछ संबंध नहीं
था परन्तु आप उन के सहोदर भ्राता हैं तो
विश्वास है कि स्वर्गवासी बाबू साहिब का
देन अदा करने में परिश्रम करेंगे। और हम
देखते हैं हम को इतने रुपये डूब जाने से
बहुत हानि पहुंचेगी और आप महाजन हैं
आप का घर बड़ा है तो आप के इतने रुपये
देने में कुछ घटी नहीं होगी तो कृपा कर के
* इन रुपयों का प्रबंध करें और उत्तर
लिखें। और आपके कुशल का लिखें आप
सज्जन हैं और मित्र हैं —

आप का हित
राधा[illegible]
डिपुटी इन्स्पेक्टर स्कूल
गया
[illegible]

१०

प्रियवरेषु

आप के पत्र और पुस्तक भी मिली आप एक [illegible] भेज दीजिए तो उसी [illegible] पर लिख पढ़ जाय

एक भाषा [illegible] और एक [illegible] हमारे वास्ते भी भेज दीजिए [illegible]

भाष्य जब हो जाय

मैं पटने से आकर फिर बीमार पड़ा था इस से विलम्ब हो गया = ०

आपका

१५।३।८४

[illegible]

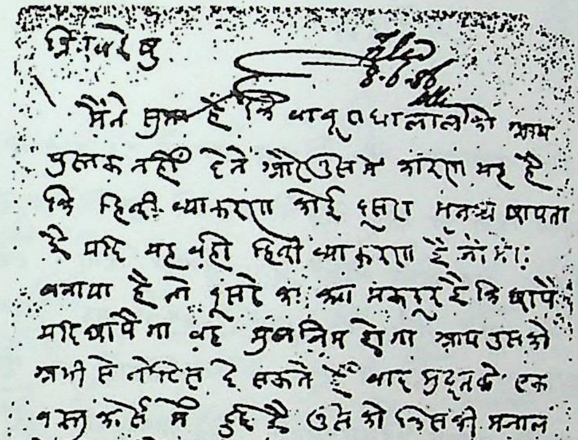

प्रियवरेषु

मैंने सुना है कि बाबू राधालाल जी आप पुस्तक नहीं देते और उसमें कारण यह है कि हिन्दी व्याकरण कोई दूसरा मनुष्य छापता है यदि यह वही हिन्दी व्याकरण है जो मैंने बनाया है तो दूसरे का क्या मकदूर है कि छापे [illegible] छापेगा वह मुजरिम होगा आप उसको अभी ही नोटिस दे सकते हैं [illegible] मुद्दत के एक [illegible] में [illegible] है [illegible] है कि छापे कोई छापे तो आप उससे अपनी नुकसानी [illegible] करके ले सकते हैं [illegible] बात की [illegible] है [illegible] में बाबू राधालाल [illegible] आने का है [illegible] कीजिए। हिन्दी व्याकरण [illegible] आपका आप उसके स्वामी हैं और कोई [illegible] छापेगा [illegible] कीजिए।

एक पत्र पहले भेजा है [illegible] शीघ्र आने —

[illegible]

२१।१२।८३ काशी

कृपामूर्त्तये जगत्पित्रे नमः

निवेदन

जन्तुओं के प्रति अत्याचार और बीभत्स प्रथा को दूर करने के हेतु जो पूर्व में निवेदन किया था और जिस की एक भांति इस निवेदन के साथ नत्थी है उसको प्रायः सब अच्छे लोगों ने अनुमोदन किया। एक बड़े शिक्षित विद्वान जो हमारे नगर के भूषण हैं उनकी यह अनुमति है म्यूनिसिपालिटी के जो नियम हैं उनके अधिकारों का पूरा बरताव किया जाय तो अलग नियम बनाने की आवश्यकता नहीं। और लोग भी ऐसा ही सोचते हैं। तो अब यह निश्चय करना कि बातों में कौन कौन सी [illegible] के नियम के अन्तर्गत हैं और उनको बरताव में कैसे ला सकते हैं आप लोगों का एकत्र होना अत्यन्त आवश्यक है। इस हेतु निवेदन है कि मिती क्वार बदी चार तारीख [illegible] को पाँच बजे संध्या के समय आप सब जगतगंज में [illegible] स्कूल में एकत्र हों तो इस विषय की सभा निश्चित हो जाय [illegible], उसी समय लोगों के नियम भी सुने जायें और किसके बरताव के विषय में भी परामर्श हो

आप लोगों का दास

चौखम्भा बनारस

अनन्तचतुर्दशी

(2)

Banaras the 10th August 1884.

Honoured Sir

Allow me to take the liberty of sending to your address by book post few books from my productions and request you to kindly present them to His Imperial Majesty the Emperor of Russia. Being assured that all the civilised countries have in them Universities a chair for our beloved Sanskrita, I send the books with a hope that these will secure an approval there also. If I can any how come to know the names of all the Oriental Institutions in Russia, I will think myself much honoured by presenting them with my humble productions. I hope you will be kind enough to excuse my this boldness of intrusion on your valuable time.

I have the honour
to be Sir
Yours most obedient & humble
servant
Harischandra

ओं नमो भगवते वासुदेवाय।

भारतवर्षीय आर्य्य धर्म्म प्रचारिणी सभा ।

* वाराणसी বারাণসী *

ভারতবর্ষীয় আর্য্য ধর্ম্ম প্রচারিণী সভা।

मान्यवर श्रीबाबू गोकुलचन्द्र श्रेष्ठ
महाशय समीपेषु

हा! विधि वशात् अकस्मात् यह क्या वज्रपात हुआ! हमारे परम प्यारे सहायक बाबू हरिश्चन्द्र जी का काशीलाभ हो गया! हा, हा, यह हृदय विदारक समाचार मुझे अत्यन्त व्याकुल किये है। आंखें में से आंसू बह रही, तब भी शोकाग्नि की शान्ति नहीं होती है। भारतेन्दु के विरह से भारत अन्धकारमय बोध होता है। ऐसे योग्य पुरुष का देहान्त होना भारत के लिये परम अशुभ चिह्न है। हा! इस महाशोक को सम्हारा नहीं जाता है। मेरी सम्पूर्ण इच्छा थी कि आप से जाके मिलूं, किन्तु मैं भी १५ दिन से अत्यन्त पीड़ित हूं, शय्या पर से उठने की सामर्थ्य नहीं; इस कारण भाई पूर्णानन्द को भूदेव कविरत्नजी को आपके समीप भेज दिया। विज्ञवर! अब स्थिर चित्तता से कार्य करना। दुःख के दिन और अधिक दृढ़ होना। भगवान् आपको सुखी करें। २-२-८५

अनुगत

श्रीश्रीकृष्ण प्रसन्न सेन

टिप्पणियां, विज्ञापन और खबरें

टिप्पणियां

कविवचन सुधा सम्पादकेषु

(रसों के सन्दर्भ में तर्क वितर्क का उदाहरण)

शृंगार रत्नाकर नामक श्रीताराचरण तर्करत्न ने जो नया प्रबन्ध बनाया है उसमें मेरा मत लिखा हे कि ''हरिश्चन्द्र भक्ति, सख्य, वात्सल्य और आनन्द यह चार रस और भी मानते हैं'' इस पर काशी विद्यासुधानिधि नामक मासिक पत्र के सम्पादक (पूर्व के किसी पत्र में) ने बड़े चढ़ाव से आनन्द रस की हंसी किया है और उनके लिखने से ऐसा जाना जाता है कि आनन्द रस हास्य के अन्तर्गत है और मानने के योग्य नहीं है तथा श्रीनृसिंह शास्त्री ने काव्यात्मसंशोधन नामक जो ग्रन्थ निर्माण कर के बहुत सा कागज का व्यय किया है उसमें भी इन चारों रस को व्यर्थ और शृंगारादि रसों के अन्तर्गत किया है तथा इन्दु प्रकाश समाचार पत्र में भी आनन्द रस को तुच्छ लिखा है और ये महात्मा लोग इसमें कारण यह लिखते हैं कि प्राचीन लोग नहीं मानते।

वाह वाह! रसों का मानना भी मनों वे के धर्म का मानना है कि जो लिखी है वही माना जाय और इसके अतिरिक्त करे तो पतित होय। रस ऐसी वस्तु है जो अनुभव सिद्ध है इसके मानने में प्राचीनों की कोई आवश्यकता नहीं यदि अनुभव में आवै मानिये न आवै न मानिये। आज इस स्थान पर चारों रसों का पृथक पृथक स्थापन करते हैं।

भक्ति : कहिए इस रस को आप किसके अन्तर्गत करते हैं क्योंकि इस रस की स्थाई श्रद्धा है इसके आलम्बन भक्त और इष्ट देवता है। और उद्दीपन पुराणदिक भक्तों के प्रसंग और सत्संग है अब तो जो इसे शान्त के अन्तर्गत कीजियेगा तो शान्त की स्थायी वैराग्य है और इसकी भक्ति है आसक्ति से और वैराग्य से जो अन्तर है सो प्रसिद्ध है वैराग्य उसे कहते हैं जो संसार से विरक्तता होय और सब सुखों को त्याग करे और भक्ति उसे कहते हैं जो गृहस्थ लोग भी कर सकते है। और भक्ति देवता के सिवा माता-पिता, गुरु, राजा और स्वामी की भी मनुष्य कर सकता है तो जहां ऐसे प्रसंग जिसमें शुद्ध भक्ति का वर्णन है और हनुमानजी इत्यादि

भक्तों के प्रसंग में यह कौन कह सकता है कि यह शान्त रस है क्योंकि इन वर्णनों में स्थायी रूप वैराग्य नहीं है स्थायी रूप भक्ति है और दास्यत्व की मुख्यता है फिर कौन कह सकता है कि शान्त और भक्ति एक है।

सख्य : इस रस को लोग शृंगार के अन्तर्गत करते हैं हम उन लोगों से पूछते हैं कि जहां श्री कृष्ण और अर्जुन का प्रसंग और इसी भांति अनेक मित्रों के विपत्ति में मित्रों के संग देने के प्रसंग में शृंगार रस किस भांति आवेगा क्योंकि शृंगार की स्थायी रति है और यहां मित्रता में रति का क्या कार्य है।

वात्सल्य : इस रस को लोग शृंगार के अन्तर्गत करते हैं अब हम उनसे पूछते हैं कि आप जिस समय अपने पुत्र को या कन्या को देखियेगा या उनका वर्णन पढ़ियेगा तो आप को कौन रस उदय होगा यदि उस समय अर्थात पुत्र को कन्या को देख के शृंगार रस उदय होय तो आप धन्य हैं और जो कहें सो मानने योग्य हैं।

आनन्द : लोग कहते हैं कि इस रस के मानने से कोई लाभ नहीं है। मैंने माना कि लाभ नहीं पर मै। यह पूछता हूं कि जहां कवि की दृष्टि शुद्ध शब्दालंकार आनन्द होता है वहां तुम कौन रस मानोगे वा जहां कोई नीति की बात व का किसी वस्तु की शोभा वर्णन की जायेगी वहां कौन सा रस होगा निस्सन्देह सब काव्य में रस होता है क्योंकि बिना रस के काव्य व्यर्थ है 'सो वे सः यल्लबध्वानन्दी भवबीति' तो इससे कृपा करके आग्रह छोड़िये और काव्य विषय में जो कुछ अनुभव में आता जाता उसको मानते जाइये इसमें शब्द प्रमाण का कोई काम नहीं है।

कृपा करके इस पत्र को छाप दीजिए।

रामकटोरा आपका मित्र
ज्येष्ठशु 11 **हरिश्चन्द्र**

हिन्दी भाषा

प्रायः लोग कहते हैं कि हिन्दी कोई भाषा ही नहीं है। हमको इस बात को सुनकर बड़ा शोच होता है यदि कोई अंगरेज ऐसा कहता तो हम जानते कि वह अज्ञान है इस देश का समाचार भलीभांति नहीं जानता। पर अपने स्वदेशियों को हम क्या कहें। हम नहीं जानते कि उनकी ऐसी हत बुद्धि क्यों हो गई कि वे अपने प्राचीन भाषा का तिरस्कार करते हैं। क्या भारतखंड निवासी महाराज विक्रमादित्य और भोज के समय में भी लखनऊ की सी बोली बोलते थे। एक महाशय लिखते हैं कि ''यवन लोगों के आगमन के पूर्व्व इस देश में प्राकृत भाषा प्रचलित थी परन्तु उसके अनन्तर उस भाषा में विशेष करके अरबी और फारसी शब्द मिश्रित हो गये। अब उस नवीन भाषा को चाहै हिन्दी कहो, हिन्दुस्तानी कहो, व्रजभाषा कहो, खड़ी बोली कहो, चाहे उर्दू कहो''। परन्तु वही यह भी कहते हैं कि 'मुसलमान लोगों ने अपने आगमनान्तर अपनी फारसी अर्थात फारस देश की भाषा के सन्मुख प्राकृत का नाम हिन्दी अर्थात हिन्द की भाषा रक्खा।'' प्राचीन रीत्यानुसार चलने वाले इसी को हिन्दी भाषा कहते हैं और इसी की वृद्धि चाहते हैं। परन्तु वे महाशय एक और स्थान में कहते हैं कि ''भाषा ऐसी होनी चाहिए जिसको सम्पूर्ण लोग बे प्रयास समझ जाएं'' और आप ही ऐसे ऐसे क्लिष्ट शब्द लिखते हैं कि फारसी खाओं के अतिरिक्त और लोगों को यूनानी भाषा जान पड़े। हम नहीं जानते कि वे यहां की भाषा किसको ठहराते हैं। कितने लोग कहते हैं हिन्दी उस भाषा का नाम है जिसमें संस्कृत शब्द विशेष हैं और उर्दू वह भाषा है जिसमें फारसी और अरबी शब्दों की—अधिकता हो—हम लोग भी इसी वर्ग के हैं और सदा अपने हिन्दी ही की उन्नति चाहते हैं—आप लोग जानते होंगे कि प्रयाग में एक यूनिवर्सिटी अर्थात प्रधान शिक्षालय नियत कराने के हेतु लोग बड़ा श्रम कर रहे हैं। बहुतेरों ने इस विषय में अपनी अपनी सम्मति प्रकट की है।

परन्तु प्रोग्रेस के सम्पादक को यह बात पसन्द नहीं है। इस विषय पर लोग अवकाश के समय अधिक ध्यान देंगे।

[कविवचन सुधा, कार्तिक कृष्ण 30, सं. 1927]

बनारस

(1)

अब की यहां दिवाली भी अच्छी नहीं भयी। शुक्रवार को पानी बरसने लगा तो दूसरे शनिवार तक सूर्य्य दृष्ट नहीं पड़े। सोमवार वाले दिन वायु का वेग इतना प्रचंड था कि खिड़कियों पर भी दिए न ठहर सके।

मधुराम या माधोराम नाम का एक कोई ब्राह्मण दशाश्वमेध घाट पर रहता है उस का आगमन किसी प्रकार से एक पंजाबी के घर हो गया और वहां उस को किसी मृगनैनी के हावभाव ने आसक्त कर लिया और यह बराबर वहां आने जाने लगा। जब इस बात का समाचार उस घर के मालिक को हुआ उस ने इस का आना बन्द कर दिया। फिर उस को कैसी व्याकुलता हुई होगी प्रेमी लोग भलीभांति जानते हैं। दैवयोग से उस मालिक का एक पुत्र बीमार पड़ा। लोगों ने कहा अमुक जन भूत विद्या जानता है, तुम्हारा पुत्र उसी के कारण बीमार हुआ है। उन्होंने उस को बुलाने का उपयोग किया पर उस ने उत्तर दिया कि जब तक वे आप मेरे घर पर न आवें मैं न आऊंगा यह उसके पास गए और वह आया और किसी प्रकार से दवा दारू करके लड़के को अच्छा किया, तब 700 रु. और दुशाले की इच्छा प्रकट की और कहा कि यदि तुम न दोगे तो अबकी तुम्हारे पुत्र को मार ही डालेंगे। ये कुछ पढ़े लिखे भी हैं। इस से यह जानते हैं कि यह सब झूठ है। पर इन के घर वाले मानते नहीं। अतः वह 100 लेने पर प्रस्तुत हुआ है पर वह बड़े विकल हैं कि क्या करैं।

हम लोगों ने सुना है उस का यही व्यापार है कि लोगों को धमका धमका कर रुपया पुजावे। क्या ऐसे आदमियों को सरकार नहीं पकड़ती। इन का तो भलीभांति दंड करना चाहिए।

[कविवचन सुधा, सन 1870 ई.]

(2)

पहली नवम्बर को प्रातःकाल सात बजे गवर्नर जनरल बहादुर काशी में आए। महाराज विजय नगरम और महाराज बनारस और अन्य रईस आगे से मिलने के लिए स्टेशन पर ठहरे थे। स्टेशन की सजावट न्यूनाधिक उसी प्रकार की थी जैसी ड्यूक साहब के समय हुई थी। इस पार आकर श्रीयुत लार्ड साहिब और काशिराज एक ही गाड़ी पर और सब लोग अपनी अपनी गाड़ियों पर आरोहरण करके महाराज की नदसर वाली कोठी में गए। दोपहर के अनन्तर दरबार हुआ था। रात्रिकाल में रोशनी प्रसन्नता योग्य हुई थी और आतिशबाजी का वृत्तान्त लिखा नहीं जाता जिन्होंने देखा वही लोग जानते हैं। तीसरी को प्रातःकाल गाजीपुर पधारे।

[कविवचन सुधा, सन 1870 ई.]

शिवाला

काशी में चौक से गुदौलिया तक जो नई सड़क निकली है उसके बीच में एक शिवाला है ईश्वर उसको खुदने से बचावे नहीं तो हिन्दुओं के चित्त में इसका बड़ा खेद होगा निश्चय है कि सरकार इस पर ध्यान देगी और अवश्य ध्यान देना चाहिए। यह भी सुना गया है कि किसी पंडित ने यह कह दिया है कि वह़ शिवलिंग तो वेश्या द्वारा स्थापित है इससे खोदने में दोष नहीं। धिक् धिक् उसकी बुद्धि ऐसा जो सोचा जाएगा तो बड़े बड़े स्थानों में यह पोल निकलेगी ऐसा कदापि न होना चाहिए और हिन्दुओं का कल्याण भी इसी में है कि वह शिवाला यथा स्थित रहे।

[कविवचन सुधा, जिल्द 2, नं. 19, सं. 1928]

भूपाल

उसी पत्र से जाना जाता है कि बेगम साहब भूपाल ने एक बहुत अच्छा आशय स्त्रियों की शिक्षा के निमित्त किसी हिन्दुस्तानी अखबार में छपवाया है। यह आशय केवल लालित्य के साथ नहीं लिखा गया है वरन उसका आशय बहुत अच्छा और उपदेश कारक है। जिस प्रकार और राजा और बड़े-बड़े रईसों की स्त्रियां रहती हैं उस प्रकार का रंग बेगम साहेब का नहीं है क्योंकि सबेरे से साढ़े ग्यारह बजे तक वे फारसी और अंगरेजी के लिखने पढ़ने में रहती हैं। इस के पीछे भोजन करती हैं। इस में दो घंटे व्यतीत हो जाते हैं। इसके अनन्तर सायंकाल तक राज्य के माली और मुल्की कार्य्यों को देखने में रहती हैं। इसके उपरान्त सूर्य्य के अस्त होने पर सिलाई और चिकन के काम में जिस में उन का पूरा अभ्यास है उद्यत रहती हैं जिस से सब कारोबार राज के प्रबन्ध के साथ होते हैं और किसी प्रकार की निन्दा बेगम साहेब के राज्य में नहीं सुनी जाती। इसी कारण से प्रजा बड़े आनन्द में रह कर बेगम साहेब को आशीर्वाद देती है।

[कविवचन सुधा, 25 जनवरी, सन 1872 ई.]

धिक्! धिक्!! धिक्!!!

श्रीमान प्रिन्स ऑफ वेल्स के रोग ग्रस्त होने से विलायत के अंगरेजी प्रजा की क्रूरता, असभ्यता, कृतघ्नता और राज्य सिंहासन से विरोध इत्यादि अनेक बुराइयां प्रगट हो गईं। राज्य वा राजा में दोष उस समय आता है जब वह प्रजा को हानि पहुंचावै वा दुःख दे इस के विरुद्ध श्रीमती महारानी ऐसी दयालु और प्रजा की रक्षा और वृद्धि करने वाली रानी पा कर उनमें द्वेष बुद्धि करना केवल अधमों और कृतघ्नों का काम है और वे निस्सन्देह परमेश्वर के कोप के पात्र होंगे। जिस समय युवराज अत्यन्त क्लेशित थे एक बजाज ने अपनी दुकान पर लिख दिया कि यहां प्रिन्स के मरनी का शोकसूचक वस्त्र बिकता है, छिः! और सुनिए 17 तारीख को लन्दन में वेलिङ्टन में एक दुष्टों की सभा हुई थी जिसमें बहुत से लोग एकत्र होकर प्रजासत्ताक राज का विचार करते थे। हम नहीं कहते कि पुलिस ने क्यौं नहीं इस में हाथ डाला। अभी इङ्गलैंड की प्रजा इस योग्यता को नहीं पहुंची है कि आप राज्य करैं इस से ऐसा सोचना केवल झख मारना है और हिन्दुस्तान को तो प्रजा राज्य सर्व्वथा बुरा और लज्जा का कारण है। ईश्वर हम लोगों की महारानी की जय और ऐसे शत्रुओं की क्षय नित्य करैं।

[कविवचन सुधा, जनवरी सन् 1872 ई.]

विद्या

इस संसार में जितनी वस्तु हैं उनमें विद्या सब से बड़ी है देखो विद्या माता उस माता से बड़ी है क्योंकि माता केवल बालकपन में रक्षा करती है, और विद्या अपने बल से सब अवस्था में रक्षा करती है, विद्या बन्धु उस बन्धु से बड़ा है, क्योंकि बन्धु लोग दुर्ग और कारागार इत्यादि स्थानों में साथ नहीं रहते पर विद्या बन्धु सर्व्वदा साथ रहता है और सर्व्वदा सहाय करता है, विद्या पुत्र इस पुत्र से बड़ा है क्योंकि जो पुत्र मूर्ख पुत्र वा कुपुत्र होता है तो मनुष्य को कैसा शोच होता है पर यह विद्या वह पुत्र है जो सर्व्वदा सुख ही देता है और न इस विद्या पुत्र के नाश का भय है, विद्या वह स्त्री है जो इस स्त्री से बड़ी है क्योंकि यह स्त्री ऐसे सन्तान उत्पन्न करती है जिन के बुरे होने की सम्भावना हो सकती है पर यह विद्या स्त्री सन्तोष, सम्बोध, उत्साह इत्यादि ऐसे सन्तान उत्पन्न करती है जो सर्व्वदा आनन्द ही देते हैं, विद्या शरीर इस शरीर से बढ़ कर है क्योंकि शरीर दिन दिन घटता है और कभी रोग और कभी बुढ़ापे से जीर्ण हो जाता है पर विद्या रूपी शरीर कभी जीर्ण नहीं होता दिन दिन बढ़ता और पुष्ट होता है, विद्या धन इस धन से बड़ा है इस धन में राजा कर लेता है, भाई अपना भाग लेता है इस को चोर का डर रहता है देने से घटता है पर विद्या धन में न राजा कर ले सकता है, न भाई बांट सकता है, न चोर का डर है और न देने से घटता है, धनवान या राजा उसी देश में माना जाता है जहां उस का राज और धन है पर विद्या मान सब देश में माना जाता है, विद्या बल इस बल से बड़ा है क्योंकि जिन बड़े वस्तुओं को लाखों धनवान मिल के हिला नहीं सकते उन को विद्या के बल से क्षण भर में उठा के फेंक देते हैं और जिन दुर्गों में बलवानों की बड़ी बड़ी सैना मन से भी नहीं प्रवेश कर सकतीं उसमें विद्या के बल से सहज में मार्ग कर सकते हैं तो विद्या सब से बढ़ कर ठहरी विद्या सीखने से मनुष्य हिताहित विचार कर अपने वा दूसरे के सुख की वृद्धि और दुःख की निवृत्ति कर सकता है। संसार में किस भांति निर्व्वाह करना चाहिए, कुटुम्ब का पालन कैसे हो सकता है और सन्तान को शिक्षा कैसे दी जा सकती है, अपने देश का हित किस बात से

हो सकता है और राज्य पालन किस रीति से करना चाहिए, व्यवहार में किस उपाय से सब बातें सुलभ और विशेष लाभकारी हो सकती हैं ये सब बातें बिना विद्या के और किसी भांति कोई नहीं जान सकता—

हा! शोच का विषय है कि ऐसी गुणवाली विद्या का स्वरूप हम लोग नहीं जानते और उससे विमुख हैं।

[कविवचन सुधा, 21 जून, सन 1872 ई.]

विट्ठोबा और हिन्दूपन

इसी महीने की 6वीं तारीख को पंडरपुर में श्री विट्ठलनाथ जी के गोसांई और पुजारियों में बड़ा झगड़ा हुआ और उन दुष्टों के झगड़ों के पीछे विचारे विट्ठोबा तीसरे पहर तक नहाने बिना भूखे बैठे रहे जब मैजिस्ट्रेट ने यह समाचार सुना वहां आया और अपने प्रबन्ध से विट्ठोबा को नहलाया और खिलाया 8वीं को फिर लड़ाई हुई और 4 मनुष्य घायल हुए हा! यह धर्म्म आ अंटका है, अब इस समय में गुशाईं, महन्त और पुजारियों की बुद्धि बहुत भ्रष्ट हो गई है और ऐसी ही देव भक्ति आ अंटकी है वरन कहें कि पर निकला है तो फबती कुछ बुरी न होगी देखें लोग इन के जाल को कब तक मानते जायंगे पर ये लक्षण है तो यह गाड़ा चलता नहीं दिखाई पड़ता।

[कविवचन सुधा, 21 जून, सन 1872 ई.]

शिल्प विद्या

हमारे पाठक गणों को स्मरण होगा ढाका नारमल स्कूल के हेडमास्टर श्रीयुत बाबू दीनानाथ सेन ने बढ़ई का काम सिखाने के निमित्त एक वर्ग नियत किया है। हे पश्चिमोत्तर देश निवासी महाशयो! देखिये बंगाल के लोग स्वदेश में शिल्पविद्या की उन्नति करने में कैसी चेष्टा करते हैं। आप लोग भी वैसा क्यों नहीं करते। शिल्पविद्या सीखना नीच काम नहीं है। बढ़ई का या लोहार का काम सीखने से यही बात नहीं सोचना चाहिए कि लोग हमको बढ़ई या लोहार कहेंगे क्यौंकि ऐसा मूर्ख लोग कहेंगे न कि पंडित, तो फिर मूर्खों की बात से क्या। परन्तु आप लोगों को देखना चाहिए कि इंगलैंड के लोगों ने लोहार और बढ़ई के कामों को सीखकर कैसे-कैसे अद्भुत यन्त्र बनाए हैं जिनसे लक्षावधि लोगों का उपकार होता है। देखिये रेलगाड़ी बनाया तो एक महात्मा ने पर अब उससे पृथ्वी के अनेकों भागों के लोग उपकार उठाते हैं। इस महात्मा ने जो यही सोचा होता कि जो मैं रेल बनाऊंगा तो लोग मुझ को लोहार कहेंगे तो फिर रेल क्यौं बनती और हम लोग भी 1 महीने का मार्ग 1 दिन में कैसे चलते। और यह भी एक बात है कि जब कोई मनुष्य एक नया काम करने लगता है तो आरम्भ में उसे लोग निरुत्साह कर देते हैं जैसा कलंबस को लोगों ने किया था। इस कारण हे पश्चिमोत्तर देश निवासी महाशयो! कलंबस का दृढ़ चित्त करके स्वदेश में शिल्पविद्या के उन्नति करने की चेष्टा करो।

[कविवचन सुधा, 21 जून, सन 1872 ई.]

बनारस

21 जून, कल सायंकाल को बनारस इंस्टीट्यूट का वार्षिक समाज बाबू फतहनारायण सिंह के गृह पर हुआ था। कमिश्नर साहिब और महाराज विजयनगर भी उपस्थित थे—एक लेखाध्यक्ष ने 1871-72 का रिपोर्ट पढ़ने के द्वारा सभा कार्य्य आरम्भ किया। पहिले समाज में बाबू उमेशचन्द्र शांडिल्य ने एक लिक्चर इस विषय पर पढ़ा था कि हिन्दी वा उर्दू राजकीय कार्यालयों में प्रचलित हो और उनकी अनुमति में हिन्दी का प्रचार योग्य था—दूसरे समाज में बाबू लक्ष्मीशंकर मिश्र ने इस विषय पर एक लिक्चर दिया था कि भारतवर्ष में यूरोपीय सैंस (Science) प्रवृत्त करने की आवश्यकता है। तीसरे समाज में बाबू शिव प्रसाद ने Physical Science पर लिक्चर दिया—चौथे समाज में महाराज विजयनगर ने इङ्गलैंड गमन लाभात्मक लिक्चर दिया—इस वर्ष भी निम्नलिखित महाशयों ने निम्नलिखित विषय पर लिक्चर देने को कहा है—

1. रिवरेंड एथोरिगटन वायु और जल पर।
2. मिस्टर शेकिल ज्योतिष पर।
3. बाबू लक्ष्मीशंकर मिश्र ने दो विषयों पर—
   क. वायु और जल की मिकेनीकल गुणों पर।
   ख. प्रकाश पर।
4. बाबू उमेशचन्द्र मेटियोदोलोजी और फिलीकल सैंस।
5. मि. ट्रेशभ रसायन विद्या और बिजली [Electricity] पर।

तीन महाशय और हैं जिन्होंने लिक्चर देने को कहा है।

महाराज विजयनगर ने सभा को रसायन विद्या सम्बन्धी एपरेटस मंगा देने को कहा।

5वां समाज लार्ड म्यौ के शोक प्रकाशनार्थ हुआ था। इसके अनन्तर शेक्सपीयर साहिब ने रिपोर्ट स्वीकृत किया। इसमें अपनी सम्मति महाराज ने प्रकाश की। कप्तान ग्रेहम ने महाराज का उस कल के निमित्त धन्यवाद दिया। इसके पश्चात सभा भंग हुई।

[कविवचन सुधा, 5 जुलाई, सन 1872 ई.]

संस्कृत की वृद्धि

निश्चय है कि संस्कृतानुरागियों को इस समाचार से आनन्द और ईर्षा एक संग होगी कि और देश के लोग अब संस्कृत में बड़े निपुण होने लगे हैं। इसके उदाहरण में हम एक याधी की कविता नीचे प्रकाश करते हैं, जिस्से इस विषय का सब को निश्चय हो जायगा। यह कविता एक अंगरेज की है जो अभी जर्मन में गया थ और वहां लिजिङ नगर में संस्कृत की वृद्धि देख कर उसने एक मित्र को लिखा है–

लिप्सायामहमागत्य विज्ञसंसद्विदृतया। जर्मनानां गणं तत्र विदुषाम्बहुमाप्तवान॥1॥ अभ्यस्तशब्दविद्यानां कोषव्याकरणविषु। निरुक्तंप्रवीणानाम्पुरावृत्तविदामपि॥2॥ युग्मं॥ पुराऽर्जितेन बहुना विद्यारूपधनेन ते। न सन्तुष्टाश्चिक्रीर्षन्ति सदा तस्य विवर्द्धनं॥3॥ नित्यैस्तथा च भूरीणां विदुषां पोषितश्रमैः। शुभविद्यातरुश्शाखा नूत्नाः नूत्नाः प्रभूयते॥4॥ तादृक्षं संघमालोक्य पंडितानाम्महात्मनां। आनंदितोऽभवं चित्ते महाश्वर्य्यममंसि च॥5॥ तेषाम्मध्येतु ये ये मे प्राक्तनास्सुहृदो ऽभवन्। मिलित्वा तैस्समंहृष्टौ विनोदेन समालपम्॥6॥ न केवलं सुहृद्भिस्तै पुराणैस्तु समागमम्। नूत्नान् ख्यातानहं प्राप विदुषस्सुहृदो ऽपरान्॥7॥ आत्मानम्प्रति सर्वेषामनुभूयत्वनुग्रहम्। प्रसन्नश्च कृतज्ञश्च बभूवाहं स्वचेतसि॥8॥ प्राक्काले नवरत्नानि विक्रमार्कस्य संसदम्। स्वविद्याशोभया व्याप्ता मलं-चक्रुः स्वदीप्तया॥9॥ तद्विद्या चंद्रदीप्तिस्तु जर्मनानां विपश्चिताम् विद्यासूर्योदयेनैव सांप्रतं क्षीणमाययौ॥10॥ नह्येव नवरत्नानि केवलानि शतानितु। रत्नानामत्रवल्हेमि मलं कुर्वति संसदम्॥11॥ तद्विद्या ज्योतिरेतर्हि देशान्व्याप्पापरानपि। शास्त्राभ्यासाय तत्रत्यानुत्तेजयति पंडितान्॥12॥ अमी पुरापि चोत्युक्ता नानाविद्यार्जने स्वयं। ज्ञात्वा जर्मनपाण्डित्यं द्विगुणं कुर्वते श्रमम्॥13॥ शास्त्राणि सर्वदिशानामनु न्विष्यन्तश्च नित्यशः। ततः खनंति रत्नौघं ज्ञानरूपखनेरिव॥14॥ स्वैःस्वैर्हिसर्वदेशीया विशिष्टयंते जनागुणैः। अन्ये गुणाहि केषां विदपरेषां तथाः परे॥15॥ स्वस्वशक्तिप्रभावेन नानाविद्याविवृद्धये। विशिष्टेनैवरूपेण ते भवंत्युपकारिणः॥16॥ विद्याक्षेत्रं कृशंतो हि विविधामिः स्व.... (अपूर्ण)

[कविवचन सुधा, सितम्बर, सन 1872 ई.]

दैव कोप

हम अपने दयालु ग्राहकों की दृष्टि इधर दिखलाना चाहते हैं वरंच विनय करते हैं कि वे लोग इस भारतवर्ष की परम विपत्ति के यथाशक्ति सहायक हों।

दक्षिण में खानदेश नामक प्रान्त और कई गांव में ऐसी वर्षा हुई कि गांव का गांव वरंच देश का देश बह गया है और वहां के लोग अन्न, वस्त्र और सब वस्तुओं से हीन होकर परम दीन हो गए हैं और उन की दशा स्मरण करके नेत्रों में जल भर आता है, कई सहस्र मनुष्य एक संग नाश हो गए, घर गिर पड़े, अन्न, वस्त्र, धन सब वह गया, केवल ईश्वर ने कृपा करके जिन के प्राण बचाए हैं वे निरवलम्ब अनाथों की भांति रोते फिरते हैं। इस से हम आशा करते हैं कि आप लोग इस पत्र के पढ़ते ही उन लोगों की यथाशक्ति सहायता करैं, द्रव्य चाहे क. व. सुधा सम्पादक के पास भेज दीजिए वा बम्बई में इन्दुप्रकाश के सम्पादक के पास भेज दीजिए वा अपने किसी दक्षिणी मित्र द्वारा भेज दीजिए। उन लोगों की सहायता के चन्दे में पहुंच जायगा।

[खान देश के बाढ़ पीड़ितों की सहायता के लिए 2 अक्टूबर, 1872 की कविवचन सुधा]

माइकेल मधुसूदनदत्त...

हा! हा! बड़ी खेद की बात है कि कलकत्ते के निवासी परम कवि श्री माइकेल मधुसूदनदत्त इस भूमंडल का सुखानुभव करके परलोक में इस भांति का है या नहीं सो देखने के हेतु सिधारे जो कि बड़े सुशील कुलीन उद्यमी थे और जिनका विद्या रूप द्वार पर की कविता रूप झंडी इस लोक में जहां चाहे वहां से दिखती हुई सब रसिकों के चित्त को अपने सौन्दर्य से बहुत प्रसन्न करती है।

[माइकेल मधुसूदनदत्त के निधन पर 10 जुलाई की 'कविवचन सुधा' में प्रकाशित]

देश की आर्थिक स्थिति

"चाहे कैसे भी द्रव्य एकत्र किया हो अन्त में सब जायगा विलायत में, क्यौंकि हमारी शोभा की सब वस्तुएं वहां से आवैंगी, कपड़ा, झाड़ फानूस, खिलौने, कागज और पुस्तक इत्यादि सब वस्तु विलायत से आवैंगी उसके बदले यहां से द्रव्य जायगा तो परिणाम यह होगा कि चाहे किस उपाय से द्रव्य लो अन्त में तुम्हारे देश से निकल जायगा।"

[कविवचन सुधा, 22 दिसम्बर, सन 1873 ई.]

स्वदेशी का नारा

अब भी हम लोगों को कला कौशल्य की ओर ध्यान देना चाहिए। लोगों को तो अंगरेजी वस्तुओं की रुचि लगी है तो अंगरेजों के समान सब पदार्थों के कारखाने यहां नियत किए जायं पर अभी यहां के व्यापारियों में इतना सामर्थ्य नहीं है कि अंगरेज़ों के समान लोहा पीतल इत्यादि मौल्यवान पदार्थ लेकर मट्टी के वस्तु तक बनावें जैसे कि अंगरेजी व्यापारी माल भेजने लगे देखो बढ़ई आदि छोटे छोटे व्यापरियों को काम मिलना कठिन हो गया है यहां तक कि घर की खिड़कियां दरवाजे आदि सब विलायत से बन कर आतें हैं। इस धोखे का मुख्य कारण यही है जो अंगरेजों ने सबों के चित्त को अंगरेजी भाषा की तरफ खींचा जो यथार्थ है कि हम लोगों ने कला कौशल्य की ओर ध्यान नहीं दिया और उन्होंने तो इसी मिस से हम लोगों को 'बहाली दी' और द्रव्य सब विदेश ले गए। अब हम लोग इस बात की ओर कुछ चित्त लगाकर अपने लाभ के विषय में विचार करने लगे हैं और उसका कुछ फल भी दृष्टिगोचर होने लगा है परन्तु यथार्थ में यहां का माल तैयार करने के निमित्त जो लोग एकत्र हुए हैं वे कुछ भी नहीं हैं क्यौंकि जब तक देश भर के व्यापारी इस विषय में उद्योग न करैंगे तब तक कार्य्य सिद्ध भलीभांति नहीं हो सकता। इसलिए केवल इतने ही से एतद्देशीय वस्त्र आदि की वृद्धि होनी कठिन है और अंगरेजों के समान वस्तु तैयार करना बिना सबों की सहायता के नहीं हो सकता—

जानि सकैं सब कछू सबहि बिबिध कला के भेद।
बनै वस्तु कल की इतै मिटै दीनता खेद॥

और

अंगरेजी पहिले पढ़ै पुनि विलायतहि जाय।
या विद्या को भेद सब तो कछु ताहि लखाय॥

[9 फरवरी, 1874 की कविवचन सुधा में प्रकाशित]

अंगरेजों की नीति

(1)

"कुछ काल पहले अंगरेज लोग जब हिन्दुस्तान के विषय में व्याख्यान देते थे तब यही प्रकट करते थे कि हम केवल इस देश के लाभ अर्थ राज्य करते हैं यही चिल्ला चिल्ला कर सर्वदा कहा करते कि हम सदैव हिन्दुस्तान की वृद्धि के निमित्त विचार करते हैं कि हम लोग इस देश की वृद्धि करैंगे और यहां के निवासियों को विद्यामृत पिलावैंगे और राज्य का प्रबन्ध किस भांति करना यह ज्ञान जब प्रजा को स्वतः हो जायगा तब हम लोग हिन्दुस्तान का सब राज्य प्रबन्ध यहाँ के निवासियों को स्वाधीन कर देंगे और अन्त को सब राम राम कह कर जहाज पर पैर रख स्वदेश गमन करैंगे। यह वार्ता हम लोग अपनी गढ़ी हुई नहीं कहते। पर इन्हीं अंगरेजों की और मुख्य करके पाद्रियों के जो व्याख्यान प्रसिद्ध हुए हैं उनसे स्पष्ट प्रकट होता है यह प्रकार पाठकजनों के देखने में निस्सन्देह आया ही होगा इसमें सन्देह नहीं।"

(2)

अंगरेजों ने हम लोगों को विद्यामृत पिलाया और उससे हमारे देश बान्धवों को बहुत लाभ हुए इसे हम लोग अमान्य नहीं करते परन्तु उन्हीं के कहने के अनुसार हिन्दुस्तान की वृद्धि का समय आने वाला हो सो तो एक तरफ रहा पर प्रतिदिन मूर्खता, दुर्भिक्षता और दैन्त प्राप्त होता जाता है। अंगरेजों ने उनको अपने विद्या की रुचि लगा कर राजनीति में उनके चित्त को आकर्षण किया और सच्ची विद्या उन्हें न दिया और यही कारण है कि हम लोग इनकी माया से मोहित हो गए और हम लोगों को अपनी हानि दृष्ट न पड़ी।"

[8 फरवरी, 1874 की 'कविवचन सुधा' में प्रकाशित]

हाथ के व्यापार का नारा

जाने को तो यहां से तत्त्व खिंचकर जाता है और आने को शीशा, खिलौना और कलम-पिन्सिल आती है। बड़े बड़े एम. ए. और बी. ए. अब इस दुर्भिक्ष में किस काम आवैंगे, एक राजा अच्छा पढ़ा लिखा और एक बंसफोड़ कभी दोनों एक जंगली टापू में छोड़ दिए गए थे वहां के लोग उनकी बोली नहीं समझते थे और क्रूर थे राजा का सौन्दर्य, बुद्धि, विद्या वहां कुछ काम न आई और उस बंसफोड़ ने बांस और लकड़ी लेकर माला बनाई उसे देख कर जंगली लोग बड़े प्रसन्न हुए और उसी लकड़ी के माला की कृपा से उन दोनों को भोजन मिला। तो हे देशवासियो! तुम भी इस निद्रा से चौंको इनके न्याय के भरोसे मत फूले रहो। ये विद्या कुछ काम न आवैगी यदि तुम हाथ के व्यापार सीखोगे तो तुम्हें कभी दैन्य न होगा, नहीं तो अन्त में यहां का सब धन विलायत चला जायगा तुम मुंह बाए रह जाओगे।

[16 फरवरी, 1874 की कविवचन सुधा में प्रकाशित]

विज्ञान की शक्ति

(विलायत में) एक लक्ष बइलर है, भाप के यन्त्र हैं और एक एक की शक्ति चालीस घोड़ों की है। एक घोड़े की शक्ति आठ मनुष्यों के बराबर है तो हिसाब से चालीस लाख घोड़े अर्थात तीन करोड़ बीस लाख मनुष्यों का काम इन यन्त्रों के द्वारा होता है। मनुष्य तो काम करते करते थक जाते हैं पर ये यन्त्र कभी नहीं थकते और मनुष्यों के समान चार आना आठा आना रोज नहीं देना पड़ता केवल इनमें अग्नि प्रदीप करने से चलने लगते हैं...परदेश के कला कौशल्य ने इस देश पर चढ़ाई किया ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था।

[9 मार्च, 1974 की 'कविवचन सुधा' में प्रकाशित]

स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार की शपथ

हम लोग सर्वान्तर्यामी सब स्थल में वर्तमान सर्वद्रष्टा और नित्य सत्य परमेश्वर को साक्षी देकर यह निमय मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा न पहिरैंगे और जो कपड़ा कि पहिले से मोल ले चुके हैं और आज की मिती तक हमारे पास हैं उनको तो उनके जीर्ण हो जाने तक काम में लावैंगे पर नवीन मोल लेकर किसी भांति का भी विलायती कपड़ा न पहिरैंगे। हिन्दुस्तान ही का बना कपड़ा स्वीकार करैंगे और अपना नाम इस श्रेणी में होने के लिए श्रीयुत बाबू हरिश्चन्द्र को अपनी मनीषा प्रकाशित करैंगे और सब देशी हितैषी इस उपाय के वृद्धि में अवश्य उद्योग करैंगे।

[23 मार्च, 1874 की 'कविवचन सुधा' में प्रकाशित]

शंका शोधन

मर्सिया में हमारे अनेक ग्राहकों को शंका होगी कि वह राजा कौन था। इस से अब हम उस राजा का अर्थ स्पष्ट करके सुनाते हैं। वह राजा अंगरेजी फैशन था जो इस अपूर्ण शिक्षित मंडली रूप अन्धेर नगरी का राज करता था। जब से बम्बई और काशी इत्यादि स्थानों में अच्छे-अच्छे लोगों ने प्रतिज्ञा करके अंगरेजी कपड़ा पहिरना छोड़ देने की सौगन्ध खाई तब से मानो वह मर गया था।

[कविवचन सुधा, 20 अप्रैल, 1874 ई.]

[यह अनुमान है कि अप्रैल, 1874 ई. के कविवचन सुधा' के किसी अंक में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का लेख 'मर्सिया' शीर्षक से छपा था। कहा जाता है कि इसी लेख से नाराज़ होकर अंगरेज सरकार ने 'कविवचन सुधा' की सरकारी खरीद बन्द कर दी थी। कुछ लोगों का यह तर्क भी है कि यह लेख अंगरेजी सरकार के खिलाफ नहीं लिखा गया था, इस लेख के केन्द्र में थे—राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द। यह लेख अप्राप्य है। भारतेन्दु की इस टिप्पणी से दो बातें साफ हो जाती हैं—(1) मर्सिया शीर्षक लेख लिखा गया था और (2) वह अंगरेजों के खिलाफ था।]

विसूचिका रोग

"अब तो प्रति वर्ष में कहीं न कहीं दुष्काल पड़ा ही रहता है मुख्य करके अंगरेजी राज में इसका घर है और बहुधा ऐसा सुनने में आया है कि विसूचिका का रोग अब सम्पूर्ण भारत खंड में छा रहा है अंगरेजों के राज में इसका घर है और बहुधा ऐसा सुनने में आया है कि विसूचिका का रोग जो अब सम्पूर्ण भारत खंड में छा रहा है अंगरेजों के राज के आरम्भ से इसका प्रारम्भ हुआ।"

"...जब अंगरेज विलायत से आते हैं प्रायः कैसे दरिद्र होते हैं और जब हिन्दुस्तान से अपने विलायत को जाते हैं तब कुबेर बन कर जाते हैं...इससे सिद्ध हुआ कि रोग और दुष्काल इन दोनों के मुख्य कारण अंगरेज ही हैं।"

[कविवचन सुधा, 18 मई, सन 1874 ई.]

अप्रसन्नता

आजकल हमारे पत्र के अष्टमंगल आए हैं बहुत से लोग हम लोगों से अप्रसन्न हो रहे हैं। श्रीयुत डायरेक्टर साहब ने पत्र के सम्पादक को लिख भेजा कि मर्सिया ऐसे बुरे आर्टिकल लिखने से तुम्हारे पत्र का गवर्नमेंट एड बन्द किया गया।

[कविवचन सुधा, 8 जून, 1874]

बंगाल में अकाल

बंगाल में अकाल पड़ा है इससे इसके समाप्त होने पर किताब का भाव निस्सन्देह बहुत सस्ता हो जायगा जहां तक कि टके सेर तक बिकै तो आश्चर्य्य नहीं, हम ग्राहकों को समाचार देते हैं कि वे प्रस्तुत हो रहे हैं केवल थोड़ा सा कागज रंगने झूठी मीठी रिपोर्ट कर देने पर खिताब मिल जायगा पर ढंगबाजी शर्त है राय बहादुर राजा रौव्वाब स्टार सब बाजार में आवेंगे ग्राहक लोग मियानी खोल रक्खैं।

[कविवचन सुधा, 20 जुलाई, 1874 ई.]

'सच मत बोल'

"अखबार वाले इतना भूंकते हैं कोई नहीं सुनता अन्धेर नगरी है व्यर्थ न्याय और आजादी देने का दावा है सब स्वार्थ साधते हौ कहोगे गवर्नमेंट के लोग तुमसे भला न मानेंगे सारांश यह कि सच्ची बातें जिनसे कहोगे वे तुम्हें शत्रु जानैंगे।

मुसलमान लोग अंगरेजों की अपेक्षा सौ गुना अपव्ययी थे परन्तु वे लोग इस देश के निवासी थे इससे उनका अर्थ समुदाय इसी देश में व्यय होता था...जिस प्रकार अमरीका उपनिवेशित होकर स्वाधीन हुई वैसे ही भारतवर्ष भी स्वाधीनता लाभ कर सकता है परन्तु भारतवर्ष के उपनिवेशित होने से इसके विपक्ष भी बहुत आपत्ति है। बीस करोड़ [वाली आबादी के] भारतवर्ष को पचास हजार अंगरेज शासन करते हैं ये लोग प्रायः शिक्षित और सभ्य हैं परन्तु इन्हीं लोगों के अत्याचार से सब भारतवर्षीयगण दुखी हैं।"

[31 अगस्त, सन 1874 ई. की कविवचन सुधा में प्रकाशित]

कर्नल मलेसन का प्रतिवाद

''एक हाल की सभा में कर्नल मलेसन साहिब ने मेरा नाम लिया है कि मैं 'जुरिजाडिक्शनविल' का विरोधी हूं। कर्नल साहिब के ऐसा कहने से सम्भव है कि मेरे देशीयजन मेरे विषय में कुछ और ही अनुमान करैं। यदि मैं कर्नल साहिब की बातों का खंडन न करूं तो मैं देश का अशुभचिन्तक समझा जाऊंगा। यथार्थ बात यह है कि लंदन में मेरे एक मित्र फ्रेडरिक पिनकाट साहिब हैं। मैंने उनके पास दो तीन पत्र भेजा था जिसमें इलवर्टविल के सम्बन्ध में भी कुछ लिखा था। मेरे लेखों का सारांश यह था कि 'जुरिजडिक्शन बिल' के सम्बन्ध में हिन्दू और अंगरेज में बड़ा हलचल और झगड़ा उठ खड़ा हुआ है। यदि बिल पास हो तो हिन्दुओं को बहुत लाभ न होगा और जो न पास हो तो अंगरेज़ों को भी बहुत लाभ न होगा। प्रत्येक अंगरेज तथा हिन्दू को जो देश की भलाई की मनोकामना रखते हैं यही चेष्टा करनी उचित है कि यह विरोध और यह जातीय झगड़ा निवृत्त हो जाय। अवश्य मैंने अपने पत्र में बंगालियों का नाम नहीं लिया था।''

[मिरिच टापू के गवर्नर पोप हेन्सी ने सन 1883 ई. में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को एक पत्र लिखकर लार्ड रिपन की सुनीति के समर्थन की बात की थी। सन्दर्भ 'इलवर्टबिल' का था। विलायत में एक सभा के दौरान कर्नल मलेसन नामक एक अंगरेज ने कहा था कि बाबू हरिश्चन्द्र ने इस बिल से असम्मति प्रकट की है, इस आशय के उनके दो पत्र मेरे पास मौजूद हैं। भारतेन्दु ने इसका प्रतिवाद हिन्दी और अंगरेजी पत्रों में छपवाया। हिन्दी में छपवाए गए प्रतिवाद की यह प्रति बाबू शिवनन्दन सहाय की पुस्तक 'हरिश्चन्द्र' से उद्धृत की गई है।]

पुनर्विवाह

''बम्बई के प्रसिद्ध रामभाऊ नगरकर की पतोहू लक्ष्मीबाई ने गर्भ गिराया और उसको गाड़ दिया, यह अपराध प्रगट हुआ और उसने स्वीकार भी किया और वह आमगर्भ निकाला भी गया, अब वह अस्पताल में है। हा! यदि विधवा-विवाह हो तो यह कर्म्म और भ्रूणहत्या क्यों होती क्योंकि 'जिसका बाप जीता है वह हरामी का नहीं कहलाता, ऐसी व्यभिचारिणियों का तो अवश्य पुनर्विवाह होना चाहिए' यही हित की बात कहने से तो हम लोग बुरे हैं पर ध्यान दीजिए तो यह करुणा करने का स्थान है।''

[कविवचन सुधा, जिल्द 3, संख्या 1 में विधवा विवाह के समर्थन में छपी भारतेन्दु की टिप्पणी प्रतिभा अग्रवाल की पुस्तक 'प्यारे हरिश्चन्द जू' से साभार]

विज्ञापन

कविवचन सुधा का विज्ञापन

"विदित हो कि जिन सुरसिकों और ग्राहकों को कविवचन सुधा अर्थात जो कि हर महीने में एक बार प्राचीन कवियों के रचित काव्य के सोलह पृष्ठ छापे जायंगे उसको खरीदना मंजूर हो कृपा करके खत बनाम बाबू हरिश्चन्द्र मुहल्ला चौखम्भा बनारस में भेजें या बनाम गोपी नाथ पाठक मोहतमिम लाइट प्रेस मुहल्ला दशाश्वमेध में भेजें दाम पहिले पृष्ठ में लिखा है और पहिले पहिल जिस महात्मा के यहां यह भेजा जाय यदि उनको लेना हो तो इत्तिला दें नहीं उसी समय फेर दें और अगर न फेरेंगे तो यह समझा जायगा कि उन्हें लेना मंजूर है फिर बराबर भेजा जायगा और जो लोग इस की मदद करेंगे उन के नाम भी प्रकाश किए जायंगे। इति।"

[कविवचन सुधा के प्रथम अंक के अन्तिम कवर पर यह इश्तहार छपा था।
प्रतिभा अग्रवाल की पुस्तक 'प्यारे हरिश्चन्द जू' से साभार]

विज्ञापन

नीचे लिखी गई पुस्तकें क.व. सुधा ऑफिस में तथा बाबू हरिश्चन्द्र के पास तथा ब्रज.वी.दास ऐंड को. के पास मिलैंगी जिन लोगों की इच्छा हो महसूल भेज कर मंगा लेवैं।

विद्यासुन्दर नाटक	1)
अगरवालों की उत्पत्ति	॥)
शुक्लयजुर्वेद पर श्री गिरिधर भाष्य भाषा अर्थ सहित	
पहिला खंड	2)
दूसरा खंड	2)
सुन्दरी तिलक	॥)
पावस संग्रह	1)
शृंगाररत्नाकर	॥)
श्रीमद्भागवत दशम हिन्दी अर्थ सहित	5)
खटमलबाइसी	।॥)

[कविवचन सुधा, अनेक अंकों में]

विज्ञापन

सन 1871 की पहली जनवरी से 31 दिसम्बर तक हिन्दी वा संस्कृत में जितनी पुस्तकें छपें मैं सब में की एक एक प्रति मोल होता हूं। सब छापने वाले को उचित है कि जो पुस्तक नई छापें एक प्रति भेज दें और मूल्य मंगवा लें।

[कविवचन सुधा, 26 जनवरी, सन 1871 ई.]

इश्तिहार

एक पत्थर का छापाखाना मै कई कल और सब छापने की सामग्री के और कई हजार की छपी पुस्तक समेत बिकाऊ है जिस्को लेने की इच्छा हो क.व. सुधा ऑफिस में लिखै।

[कविवचन सुधा, 11 नवम्बर, सन 1871 ई.]

कविवचन सुधा की न्यौछावर

अग्रिम प्रदत्त मूल्य

वार्षिक 5)
महसूल सहित 5 ।।।)
षाणमासिक 3)
महसूल सहित 3 ।=)
त्रिमासिक 2)
महसूल सहित 2≡)

पश्चात् देने वालों को

वार्षिक 6)
महसूल सहित 6 ।।।)
षाणमासिक 3 ।।)
महसूल सहित 3 ।।।=)
त्रिमासिक 2 ।।)
महसूल सहित 2 ।।≡)
एक कॉपी 1)
महसूल सहित 1)।।

जो लोग छः महीने की अग्रिम न्यौछावर तीन महीने के भीतर न भेजेंगे उनको 3।।) देना पड़ैगा और जो लोग वर्ष भर की अग्रिम न्यौछावर छः महीने के भीतर न देंगे उनको 6) देना पड़ैगा।

इश्तिहार आदि की दर

प्रत्येक पंक्ति (अंगरेजी वा हिन्दी की) =) आठ पंक्ति पर्यन्त
द्वितीय वार.... 1)।।
तृतीय वार आदि... –)
एक पृष्ठ प्रति मास... 5)
अर्ध... 3)

[कविवचन सुधा, 11 नवम्बर, 1871 ई.]

FOR SALE

KEY
TO
READINGS IN ENGLISH POETRY
BOOK SECOND
(as used in N.W.P.)
PRICE WITH POSTAGE 5 ANNAS

Containing the Etemology, and English, Hindi and Urdu Meaning of words, and explanations of difficult passages with biographical and geographical notes.

APPLY TO
BABU GADADHAR SINGH
KAVI VACHAN SUDHA, OFFICE, BENARES
[Kavivachan Sudha, 26 Dec. 1871]

नई पुस्तक

पाखंड बिडम्बन नाटक और प्रेम मालिका यह दो नई पुस्तक छपी हैं दाम प्रत्येक का चार आना है। जिस्को लेने की इच्छा हो मुझसे मंगा ले।

हरिश्चन्द्र

[कविवचन सुधा, 26 दिसम्बर, 1871 ई.]

फोटोग्राफ

फोटोग्राफ का हम लोगों ने नया प्रबन्ध किया है और अनेक चित्र राजाओं के, बनारस के रईसों और प्रसिद्ध स्थानों के छापे हैं जिनको लेने की इच्छा हो मुझे लिखें।

हरिश्चन्द्र

[कविवचन सुधा, 26 दिसम्बर, 1871 ई.]

कासिद

"कासिद।
सातएं दिन आवैगा।"
नए हितकारी और विचित्र समाचार कहैगा।

यह एक साप्ताहिक उर्दू पत्र निकलैगा इसमें अनेक हित की नए उद्‌गार की साम्प्रत समयानुसार लोक बृद्धि की और अनेक शुभ समाचार की बातें रहैंगी यह पत्र बहुत उत्तम बड़े बड़े पृष्ठों में स्वच्छ अक्षरों में छपैगा।

हरिश्चन्द्र

[कविवचन सुधा, सितम्बर, सन 1872 ई.]

लवेन्डर का सपटन

फ्लोरिडा वारद सुगन्ध का जल

यह सुगन्धी और सब सुगन्धियों से अच्छी है। सिर में लगाने, कपड़े में लगाने और रूमाल में छिड़कने योग्य है और सिर की व्यथा घूमटा, जी मचलना और गरमी को इसकी सुगन्ध दूर करती है और इस्से मुंह धोने से मुंह के मुहासे और किसी प्रकार के मुंह के दाग हों तो दूर जाते हैं और दांत में पीड़ा हो तो पानी मिला कुल्ली करने से दांत भी शुद्ध हो जाते हैं। अभी हम लोगों ने इस को इन्द्र प्रकाश ऑफिस से थोड़ा सा नमूने के हेतु मंगाया है जिस को मंगाना हो लिखै।

हरिश्चन्द्र

मूल्य 3)

[कविवचन सुधा, 20 जुलाई, सन 1872 ई.]

इश्तिहार

मुद्रिका **छल्ले** **अंगूठियां**

हम लोगों ने नई चाल के छल्ले सोच कर निकाले हैं और उनमें नगों के नाम पर और रंग के मत सम्बन्धी वा प्रीति सम्बन्धी शब्द निकालते हैं अंगरेजी, फारसी और हिन्दी के वर्णों में लोगों के नाम के मुख्य अक्षर भी निकल सकते हैं जिन लोगों को ऐसी मुद्रिका बनवानी हो वह अपना नाम और आशय लिखें तो वैसी ही बन जायगी उसका उदाहरण हम लोग खलों के भय से स्पष्ट रीति से नहीं लिख सकते क्यौंकि यदि लोग इस विषय को जान जायंगे तो हम लोगों के परम श्रम से फलस्वी अंगूठियों को सहज में बना लेंगे इस्से जिनको जो आज्ञा देनी हो उसका आशय हम लोगों को लिखें।

हरिश्चन्द्र
(बनारस)

[कविवचन सुधा, 7 मई, 1872 ई.]

ADVERTISEMENTS

RINGS! RINGS!! RINGS!!!

of

ACCIENT INVENTIONS

PREPARED WITH

HINDI, PERSIAN AND ENGLISH

VERSIFICATION BEAUTIES.

By an ingenious arrangement the initials of stones on each ring from various love and religion mottos. Besides these all kinds of order for jewellry & c. executed.

Apply to H.C. AND BROTHERS,

MERCHANTS

APPLY

FOR

ANCIENT COINS

TO

HARIS CHANDRA AND BROTHER

BENARES

[दोनों विज्ञापन कविवचन सुधा के अनेक अंकों पर प्रकाशित हैं]

ग्राहकों से अपील

''अब केवल तुम ही लोगों का भरोसा है सो तुम लोग भी मत रुष्ट हौ क्यौंकि 'हरौ रुष्टे गुरुस्त्राता गुरसै रुष्टौ न कश्चन' परन्तु हम देखते हैं कि इन दिनों आप लोगों में से ही अनेक हम से रुष्ट हौ पर इस में हमारा दोष नहीं इस श्लोक बनाने वाले का दोष है 'सत्यं ब्रूयात प्रियं ब्रूयात न ब्रूयात सत्यम प्रियम। नानृतं च प्रियं ब्रूयात एषने अनेक निन्दित कर्म्म किए, अब कहिए इस वृत्ति को हम सत्यता और प्रियता दोनों मिला के कैसे लिख सकते हैं।''

[सरकारी सहायता बन्द होने पर सहायता हेतु कविवचन सुधा में ग्राहकों से की गई भारतेन्दु की अपील]

हिन्दी भाषा और लेख दोनों की दुर्दशा

इष्टारण बेङ्गल रेलओये कोम्पानि

इस्ताहार

इष्टारण बेङ्गल रेलओये कोम्पानि सब लोगों को खबर देते हैं कि कुष्टिया अी गोयालंडसे कलकाता तक बीज ओ सब भुसा माल गाड़िमे ढालाइ करके लियाने का वास्ते तैयार है।

ओहि वास्ते एसि तरेकि लोहेकि गाड़ि तैयार हुआ है कि ओहिमे कोइ सुरतसे माल पानिमेभीके खाराब नेहि होवेगा। आडर रेलओये कोम्पानि एहि एकरार देते हैं कि महाजन लोगों के पास से योओजन माल मिलेगा ओहि ओजन पुरा देबेङ्गे आउर यो कुछ माल कमति ओ लोकसान होवेगा उसका दाम तुरन्त दे देबेङ्गे।

रेलओये होके यो सब बीज ओ भुसा माल ढालाइ हीके आवेगा उस्को राखने का वास्ते सियालदह में बहुत से अलग अलग गुदाम तैयार हुआ है कि महाजन लोगों के बोरेका आउर डस्पर मारका लियाइका यो कुछ खरचा होताराहा उह सब बचयावेगा अउर यो मुद्‌दत का बिछमे माल खालास लेने का हुकुम राहा उस्का दुना मुद्‌दत वा चार रोज तक एहि सब गुदाम में माल रहे सेखेगा।

यी महाजन लीग बराबर अी हरदम रेलगाडि करके बीज ओ भुसा ओ आडर आडर माल आमदानि करते हेय उन लोगों को वास्ते रेलओये कोम्पानि गुदाम अलग करने के देका तैयार हेय।

हर रकमका माल राखने का वास्ते काच्चा ओर पाक्का गुदाम तैयार करने का वास्ते रेलओये कोम्पानि का हरइएक गुदाम का पास थोड़ाइ केरेयामे यागा मिलेगा।

बीज ओ ऑउर आउर भुसा माल रेलपर लेयानेका केरेया निचे लिखे याता हेय—

गोयालंड से कलकाता तक...तिन आना हर मन

कुष्टिया से कलकाता तक... = दुइ आना हर मन

आउर हर चालान में 100 मन ओ उससे जेयादे ओजन के मालका साथ यो चड़न्दार आवेगा उस्को बेमासुल से रेलगाड़ि पर आने का पास वा टोकेट दिया यावेगा।

एजेंटर आपिस
सियालदह टारमिनस
जानुयारि 1872

फाङ्कलिन प्रेष्टेज
एजेंट

[यह विज्ञापन 9 फरवरी, 1872 ई. की कविवचन सुधा में छपा है। विज्ञापन से पूर्व मोटे अक्षरों में 'हिन्दी भाषा और लेख दोनों की दुर्दशा' शीर्षक देकर ऐसी हिन्दी के प्रति उन्होंने अपने कष्ट को प्रकट किया है। उस समय के व्यापारिक विज्ञापनों में कैसी हिन्दी प्रयुक्त होती थी या कलकत्ता में किस तरह की हिन्दी फैल रही थी, यह विज्ञापन उसका अच्छा उदाहरण है]

सब रोगों का मूल रक्त बिगड़ना

परम उपचार रक्त शुद्ध करना
स्वल्प है शीघ्रता करो!!!

हम लोगों के पास ब्रिस्टल्स सारसा परीला के कुछ बाटल आ गए हैं और बिकने के हेतु रक्खे हैं जिन को मंगाना हो शीघ्र मंगवा लें क्योंकि वस्तु थोड़ी ग्राहक बहुत॥

इसके पीने का उपाय उसी में कागज पर चपकाया है।

विदित हो कि यह शुद्ध काष्ठ औषध है और रक्त के यावत विकास जैसा घबड़ाहट, गजकर्ण, दाद, फोड़े, व्रणरक्तपित्त, गंडमाला, अंश से चिनगारी सा निकलना, गरमी का कोई रोग, अंग पर लाल या काले चकोटे पड़ना वा किसी रस के खाने से जो रक्त का बिगाड़ होना इन सब रोगों को यह गुण करता है। यह निर्बल वा बालकों को भी दिया जा सकता है।

मूल्य बड़ा बाटल–6॥) (साढ़े छह रुपये) **हरिश्चन्द्र**

[कविवचन सुधा, 20 जुलाई, सन 1872 ई.]

प्रिन्स ऑफ वेल्स के भारत आगमन सम्बन्धी कविता के लिए कविवचन सुधा में छपा विज्ञापन

श्री महाराजाधिराजजी के ज्येष्ठ पुत्र युवराज श्रीयुत महाराजकुमार प्रिन्स ऑफ वेल्स आगत नवम्बर में हिन्दुस्तान में आवैंगे, इसके वर्णन में सब भाषा के कवियों की कविता एकत्र संग्रह कर के पुस्तकाकार छापी जायगी। यह सब कविता श्री महाराणी के वा कुमार के वा उनके वंश की कीर्ति में वा उनके आशीर्वाद में होगी। संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी, अरबी, बंगला, गुजराती, तमिल, तेलगु इत्यादि सब भाषा की कविता इसमें सन्निवेशित हो सकेगी। कविता में अत्युक्ति और निरा भाटपन न हों, यों तो बिना कुछ नमक मिर्च लगाए कविता होती ही नहीं। इसमें जिनकी कविता छपैगी एक एक प्रति इस पुस्तक की मिलैगी और जो लोग सहायतापूर्व्वक कविता भिजवावैंगे वे भी पुस्तक पावैंगे। जो कोई कविता भेजै, वह स्पष्ट अक्षरों में भेजै। 30 अक्टूबर के बाद कोई कविता आवैगी तो वह न छापी जायगी। यदि पत्र बेरिंग भेजै तो लिफाफे पर 'राजकुमार सम्बन्धी कविता' इतना लिख दें और कविता बहुत लम्बी चौड़ी भी न हो। कविता चुनने का अधिकार हमने अपने हाथ में रखा है।

हरिश्चन्द्र

[काशी पश्चिमोत्तरदेशैक]

सर्व्व रोग का दिव्य महौषध

रोगी की पूरी अवस्था लिखने से भेजी जा सकती है।

हरिश्चन्द्र और ब्रदर

[कविवचन सुधा, 1872 ई.]

अपील

श्री रामनारायण दास आनरेरी मजिस्ट्रेट आपने मेरे स्कूल में 5 रुपये मासिक देने को कहा था उसको 14 महीने हुए परन्तु अनुग्रह नहीं किया इन दिनों स्कूल में रुपयों की आवश्यकता है इससे आशा करता हूं कि आप शीघ्र भेज देंगे।

हरिश्चन्द्र

मालिक-चौखम्बा

[कविवचन सुधा]

JUST PUBLISHED

THE FIRST BOOK OF HINDI
BY

Pandit kali Charan, Head Pandit Zillah School, Allygarh.
Apply to the author. Price as 1½ and postage a.
1 : 25 copies Re-1-9 and postage and package 5 as.
N.B. after a month the book will be hardly available.

हिन्दी भाषा की प्रथम पुस्तक

पंडित कालीचरण हेड पंडित ज़िलअ़ स्कूल अलीगढ़ प्रणीत।

ग्रन्थकर्त्ता के पास मिलती है। मूल्य 1)॥ एक कॉपी महसूल –)-25 कॉपी 1||–) महसूल ।–)

सू=एक महीने के अनन्तर पुस्तक का मिलना दुर्लभ हो जायगा इस निमित्त शीघ्र ही पत्र भेजिये।

[कविवचन सुधा, जुलाई, सन 1872 ई.]

पुराने सिक्के

हम लोगों ने पुराने सिक्के एकत्र किए हैं जिनको भरपूर मूल्य देकर लेना हो लिखें।

हरिश्चन्द्र

[कविवचन सुधा, 7 मई, सन 1872 ई.]

फरासीस युद्ध

सब पर विदित हो कि फरासीस में जो युद्ध हुआ है और हो रहा है उस का वर्णन कोई नाटक की रीति से करेगा तो उस को मेरी ओर से 400) पारितोषिक मिलेगा परन्तु उस के ये नियम हैं–

1. पुस्तक वीररस अंगी होगा और करुणा और रौद्र उसके अंग होंगे।

2. इस के पढ़ने से युद्ध का आद्योपान्त सब वृत्तान्त जाना जाए कि युद्ध कब और क्यों आरम्भ हुआ और कब तक रहा और इसमें क्या क्या हुआ।

3. इस का फल यह हो कि पुस्तक के पढ़ने से मनुष्य सन्धि और विग्रह इत्यादि नीति में और युद्धकर्म्म में चतुर हो जाए और 200 पृष्ठ से न्यून न हो।

4. नीचे लिखे हुए लोग इस की परीक्षा करेंगे कि पुस्तक यथोचित बनी है कि नहीं सब पारितोषिक मिलेगा। बाबू राजेन्द्र लाल मित्र, कुंअर लक्षण सिंह, बाबू ऐश्वर्य्यनारायण सिंह, बाबू नवीनचन्द्र राय, ठाकुर गिरप्रसाद सिंह।

हरिश्चन्द्र

[कविवचन सुधा, फरवरी 1872 ई.]

आनन्द

हम लोग आनन्द से प्रकाश करते हैं कि श्रीमानू गवर्नर जेनरल ने हिन्दुस्तान के बिन्ध्य दक्षिण पाती मध्य देश के सब राजकीय काम में हिन्दी प्रचलित होने की आज्ञा दी है। अहा! सिंह का भाग सिंह को मिला यह स्मर्ण करके कैसा आनन्द होता है। ईश्वर करै कि हम लोग भी यह दिन देखैं। हम लोग संग्रह के स्तम्भों में गवर्नमेंट की वह आज्ञा उद्धृत करैंगे।

[कविवचन सुधा, 21 जून, सन 1872]

सूचना

मुझे एक मनुष्य ऐसा चाहिए जो हिन्दी अच्छी लिख पढ़ लेता हो और अंगरेजी से अनुवाद करने में भी समर्थ हो और 'ऑफिस' के कार्य पत्रव्यवहार, डाक के कामों में और छापे के प्रूफ आदिक शोधन लेखनादिक कामा में में चतुर हो। मासिक योग्यतानुसार मिलेगा पर कार्य्य नित्य श्रमपूर्वक करना होगा जिन की इच्छा हो मुझे शीघ्र लिखें।

हरिश्चन्द्र

[कविवचन सुधा, 21 जून, सन 1872 ई.]

इश्तिहार

प्रगट है कि सरकारी कानूनों से परिचय होना सब को अवश्य ओ हितकारी हो पर इसके साथ यह भी सिद्ध ओ माननीय है कि जब तक वे कानून हमारी भाषा में उलथा ओ हमारे देवनागरी अक्षरों में न लिखे जायंगे उनसे सब को ज्ञान होना सम्भव नहीं है इसलिए विचार है कि आदि से लेकर गत साल सन 1876 ई. के अनन्तर कि जितने कानून उन देशों से किसी भांति सम्बन्ध रखते हैं जहां यह भाषा बोली और यह अक्षर बर्ते जाते हैं हमारी भाषा ओ अक्षरों में उलथा हो जावें (और यदि मावकाम होगा और ग्राहकों को सावधानी होगी तो सन 1872 ई. से पिछले एक साल पीछे जुदे जुदे उलथा होकर छपवा दिए जाया करेंगे क्यौंकि संग्रह की पूर्णता में विघ्न न आवे) पर कानूनों का समूह बहुत बड़ा है इसलिए सुगमता के विचार से यह चित्त मन है कि एक मासिक पत्र के द्वारा प्रकास किया जावे जिस्में बड़े तबके 24 सफे अथवा छोटे तबके 32 सफे हुआ करेंगे सौ (100) ग्राहकों की दरखास्त के आ जाने के पीछे पत्र के छपने ओ निकलने का प्रारम्भ कर दिया जावेगा सरकार से भी प्रार्थना की गई है ओ आशा है कि सरकार की सहायता ओ हिमाइत भी होगी।

डांक के महसूल समेत		दाम यह है मासिक	छः माही	बरखंडी
	पेशगी	||)	3)	6)
	पश्चातेम	|||)	4||)	9) लोटये

दरखास्त मुझे इश्तिहार देनेवाले के नाम इस पते से भेजी जावें।

ठाकुर उमराउसिंह हवे
भी मोलबी वज़ीरउद्दीन।
खां महल्ला मदनमोहन।
दरवाजा आगरा।

[कविवचन सुधा, 20 जुलाई, सन 1872 ई.]

इश्तिहार

विदित हो कि यह लीविंग साहब डॉक्टर ने निर्माण किया है और हम लोगों ने इन्द्रप्रकाश ऑफिस से अभी इसके केवल थोड़े से बॉटल परीक्षा के हेतु मंगवाए हैं। निश्चय यह बड़ी अपूर्व वस्तु है क्योंकि निर्बल या अन्न से चिढ़ने वाले या मातृहीन बालकों का तो यह जीवन है और निर्बल या मनुष्यों का भी यह भक्ष्य के समान है जिनको मंगाना हो मंगा लें।
मूल्य-2 रु.

हरिश्चन्द्र

[कविवचन सुधा, 20 जुलाई, सन 1872 ई.]

इश्तिहार

कवितावर्द्धनी की दूसरी सभा अगहन कृष्ण को होगी।

समस्या—बीस रवि दस ससि संगही उदै भये वर्णन सन्ध्या काः चाहे जिस छन्द में हो। सूड़िया नई धर्मशाला कार्तिक कृष्ण 5।

हरिश्चन्द्र
क. व. सभा का लेखाध्यक्ष

कविताविर्द्धनी सभा

कविताविर्द्धनी सभा की तीसरी सभा पूस बदी एक को सूड़िया पर नई धर्मशाला में होगी।

1. समस्या—खेलत आंगन नन्द को लाला। .

2. वर्णन—पुरुष के वा स्त्री के खुले हुए बालों की शोभा का वर्णन।

मार्गशीर्ष कृष्ण 30 हरिश्चन्द्र

पंचपत्र

क. व. सभा कार्यालय   लेखाध्यक्ष क. व. सभा

"मेरी बहुत दिनों से इच्छा है कि एक हास्य रस का हिन्दी भाषा में 'पंच' पत्र प्रचलित करूं, सब हिन्दी रसिकों से सहायता की प्रार्थना है। अभी केवल 13 ग्राहक हुए हैं और 100 ग्राहक होने पर पत्र छपेगा।"

[पंचपत्र के प्रकाशन के सन्दर्भ में अक्टूबर सन 1877 ई. की 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में भारतेन्दु द्वारा प्रकाशित विज्ञापन]

'मार्गशीर्ष महिमा' का विज्ञापन

चतुर्वर्ग को मौक्षादिक पाने का बहुत सहज उपाय हम लोग माघ, वैशाख, कार्तिकादि महीनों को अति पवित्र जान कर स्नानादि करते हैं, परन्तु हम लोग नहीं जानते कि एक महीना जो इन सबों से महापुनीत और थोड़े साधन में बहुत फल का देने वाला है, बच गया है और उसमें हम लोग कुछ स्नानादि नहीं करते जिसकी प्रसिद्धि के वास्ते हम बड़े आनन्द से यह इश्तिहार देते हैं।

वह गोप्य मास जिसका माहात्म्य सब शास्त्रों में बड़े आदर से कहा है वह मार्गशीर्ष अर्थात अगहन का महीना है, जिसका गुन गान करने से महात्मा लोग तृप्त नहीं होते और यह महीना सब महीनों का राजा और भगवान का स्वरूप है जैसा कि आपने श्रीमद्भगवद्गीता में और श्रीभागवत एकादश स्कंध में आज्ञा की है। और श्री कुमारिकागणों ने इसी के स्नान से श्रीकृष्ण को पाया था और स्कन्दपुराण में इसकी बड़ी स्तुति लिखी है यथा 'सर्वयशेषु यत्पुण्यं, सर्वतीर्थेषु यत्फलं॥ सहसाप्नोति तत्सर्व्वेम्मार्गशीर्षे कृते सुत॥1॥ यज्ञाध्ययनदानाद्यैस्सर्ब्बतीर्थावगाहनैः। सन्यासेन च योगेन नाकृस्वश्यो सवामि च॥2॥ स्नानेन दानेन च पूजनेन होमे विधाने तप पादित। वश्यो यथा मार्गशिरे स्मासि तथा न चान्येषुहि गर्भमुक्त॥3॥ मार्गशोर्षन्न कुर्वन्तिये नराःपापमोहिताः। पापरूपा हि ते ज्ञेयाः कलिकाले विशेषतः॥4॥ माघाच्छतगुणम्पुण्यम्वैशाखे मासिलभ्यते। तस्मात्सहस्त्रगुणितं तुलासंस्थं दिवाकरे॥5॥ तस्मच्चि कीटिगुणितं बृश्चिकस्थे दिवाकरे। मार्गशीर्षोऽधिकस्तस्मात्सर्व्वदा मम बल्लभः॥6॥ और भी बहुत सा माहात्म्य है कहां तक लिखें अर्थात इस महीने में प्रातःस्नान तुलसी और कदम्बपूजन से बढ़ कर मोक्ष का दूसरा उपाय नहीं है और कदम्बपूजन को इसमें मुख्यता विशेष है। यथा। पूजयेत्संस्मरेद्यस्तु कदम्बं सर्व्वकामदं। सर्वान् कामानवाप्नोति इहामुत्र न संशयः॥ इस वास्ते आप लोग इसमें जहां तक बन पड़े स्नान दानादि कीजिए और दूसरे लोगों को भी इसका उपदेश कीजिए किमधिकम्, इति।

चौखम्भा, बनारस

हरिश्चन्द्र

[बाबू शिवनन्दन सहाय की पुस्तक 'हरिश्चन्द्र' से साभार]

भारत जननी

'भारत जननी' रूपक जो गत नवम्बर से छपता है उसके ऊपर मेरा नाम लिखा है। वह रूपक मेरा बनाया नहीं है। 'बंगभाषा' में भारत-माता नामक जो एक रूपक है वह उसी का अनुवाद है जो मेरे एक मित्र ने किया है जिन्होंने अपना नाम प्रकाश करने के लिए मना किया है। मैंने उस को शोधा है और जो अंश भी कुछ अयोग्य था उस को बदल दिया है। कवि की कीर्ति का लोप नहीं करना। अतएव यह प्रकाश करना मुझ पर आवश्यक हुआ। यह सन 1877 ई. के दिसम्बर की चन्द्रिका में छपा था उसी से 'कविवचन सुधा' में पुनर्मुदित होता है।

हरिश्चन्द्र

[बाबू शिवनन्दन सहाय की पुस्तक 'हरिश्चन्द्र' से साभार]

पैनीरीडिंग क्लब की नियमावली

1. पढ़ने वालों को अपने विषय का नाम तीन दिन पहिले लेखाध्यक्ष के पास भेज देना होगा।
2. अपशब्द और अश्लील और व़ीभत्स शब्द कोई न प्रयोग करै, और ईश्वर के विषय में कोई निन्दा का शब्द वा किसी सभ्य के विषय में मर्मवाक्य कोई न बोले।
3. बिना पास के कोई न आने पावैगा और पास सब सम्भावित लोग लेखाध्यक्ष से मंगवा लेंगे।
4. जो पास पाने का अधिकारी नहीं है उस को पांच रुपये देने से सीजन पास मिलैगा।
5. जहां तक हो सकेगा पढ़ना शीघ्र ही आरम्भ और शीघ्र ही समाप्त होगा।
6. कोई देखने वाला कोलाहल करके विघ्न करैगा तो निकाल दिया जायगा।
7. कोई रंग मन्दिर में न आए यदि आयगा तो निकाल दिया जायगा।

[भारतेन्दु ने 1873 ई. में काशी में पैनीरीडिंग क्लब स्थापित किया था। इस क्लब में जो लेख पढ़े जाते थे वे हरिश्चन्द्र मैगजीन में छपते थे। इस क्लब के लिए उन्होंने उक्त नियमावली बनाई थी। शिवनन्दन सहाय की पुस्तक 'हरिश्चन्द्र' से साभार]

तदीय समाज का प्रतिज्ञा पत्र

"हम हरिश्चन्द्र अगरवाले श्री गोपालचन्द्र के पुत्र काशी चौखम्भा मुहल्ले के निवासी तदीय समाज के सामने परम सत्य ईश्वर को मध्यस्थ मानकर तदीय नामांकित अनन्य वीर वैष्णव का पद स्वीकार करते हैं और नीचे लिखे हुए नियमों का आजन्म मानना स्वीकार करते हैं–

1. हम केवल परम प्रेममय भगवान श्री राधिकारमण का ही भजन करैंगे।
2. बड़ी से बड़ी आपत्ति में भी अन्याश्रय न करैंगे।
3. हम भगवान से किसी कामना के हेतु प्रार्थना न करैंगे और न किसी और देवता से कोई कामना चाहैंगे।
4. जुगल स्वरूप में हम भेद दृष्टि न देखैंगे।
5. वैष्णव में हम जाति बुद्धि न करैंगे।
6. वैष्णव के सब आचार्य्यों में से एक पर पूर्ण विश्वास रक्खैंगे परन्तु दूसरे आचार्य्य के मत विषय में कभी निन्दा का खंडन न करैंगे।
7. किसी प्रकार की हिंसा वा मांस भक्षण कभी न करैंगे।
8. किसी प्रकार की मादक वस्तु कभी न खाएंगे न पीयेंगे।
9. श्रीमद्भगवद्गीता और श्री भागवत को सत्य शास्त्र मान कर नित्य मननशीलन करैंगे।
10. महाप्रसाद में अन्न बुद्धि न करैंगे।
11. हम आमरणान्त अपने प्रभु और आचार्य्य पर दृढ़ विश्वास रख कर शुद्ध भक्ति के फैलाने का उपाय करैंगे।
12. वैष्णव मार्ग के अविरुद्ध सब कर्म्म करैंगे और इस मार्ग के विरुद्ध और स्मति वा लौकिक कोई न करैंगे।
13. यथा शक्ति सत्य शौच दयादिक का सर्व्वदा पालन करैंगे।
14. कभी कोई वाद जिस से रहस्य उद्घाटन होता हो अनधिकारी के सामने न कहैंगे। और न कभी ऐसा वाद अवलम्ब करैंगे जिस से आस्तिकता की हानि हो।

15. चिह्न की भांति तुलसी की माला और कोई पीत वस्त्र धारण करैंगे।
16. यदि ऊपर लिखे नियमों को हम भंग करैंगे तो जो अपराध बन पड़ैगा हम समाज के सामने कहैंगे और उस की क्षमा चाहैंगे और उस की घृणा करैंगे।

साक्षी–

पं. बेचन राम तिवारी

पं. ब्रह्मदत्त

चिन्तामणि

मुहर (तदीय समाज)

दामोदर शर्मा

शुकदेव

नारायण राव

माणिक्य लाल जोशी शर्मा

मिती भाद्रपद शुक्ल 11 संवत 1930

हरिश्चन्द्र

हस्ताक्षर तदीय नामांकित अनन्य वीर वैष्णव

यद्यपि मैंने लिख दिया है तथापि इसकी लाज तुम्हीं को है (निज कल्पित अक्षर में)
मुहर (तदीय समाज)

[तदीय समाज के समक्ष भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा लिया गया शपथ पत्र]

'कुराने शरीफ'

'मुसलमानों के मत की पवित्र धर्म्म पुस्तक हिन्दी भाषा में इस बड़े ग्रन्थ को मैंने बड़े परिश्रम से हिन्दी भाषा में अनुवाद किया है और अब इसको छापने का भी विचार है परन्तु बड़ा ग्रन्थ है और व्यय विशेष है इससे यह इच्छा की है कि पहिले 100 ग्राहक ठहराकर तब छापना आरम्भ करूं इससे विद्यानुरागी और मतों के जानकारों से निवेदन है कि वे लोग इसके छापने का उत्साह अपने आज्ञापात्र से शीघ्र बढ़ावें और मूल्य इसका छपने के पीछे व्यय के अनुसार रक्खा जायगा परन्तु किसी दशा में दस रुपये से वह विशेष न होगा।

12 जनवरी! हरिश्चन्द्र

[कुरान शरीफ के अनुवाद के प्रकाशन के सन्दर्भ में 19 जनवरी, 1874 के 'कविवचन सुधा' में प्रकाशित विज्ञापन]

कविता

हमारे गुरुवर श्री बाबू शिवप्रसाद सी.एस.आई. अपने हिन्दी गुटके की पुस्तक फिर से छापते हैं उस पुस्तक में हिन्दी कविता का संग्रह और बढ़ाया जायगा मैं भाषा के रसिकों से निवेदन करता हूं कि प्रसिद्ध कवियों की स्वाभाविक उत्तम कविता छांट कर जो लोग भेजैंगे वह हम लोग बड़े हर्ष पूर्व्वक उस गुटके में छापैंगे जो लोग कुछ कविता भेजैं उनको उचित है कि कवि का नाम लिखैं और यह भी लिखैं कि किस गुण के कारण यह कविता उत्तम समझी गई है।

हरिश्चन्द्र

[हरिश्चन्द्र मैगजीन, दिसम्बर, 1873 ई.]

बनारसी माल

विदेशी लोगों पर विदित हो कि हम लोगों के यहाँ बनारसी दुपट्टे, साड़ी, रूमाल मन्दील कमखाव के थान, चोलखंड चिनियापोत और छोटे रूमाल और टोपी इत्यादि अनेक वस्तु बहुत उत्तम और सस्ती बनती है। जिन सौदाग या रसिकों को मंगाना हो वे हम लोगों से पत्र व्यवहार करें निश्चय है कि वे इस में लाभ भी उठावैंगे और अच्छी वस्तु पाकर प्रसन्न भी होंगे।

चौखम्भा, बनारस

हरिश्चन्द्र

[कविवचन सुधा के अनेक अंकों में प्रकाशित]

विज्ञापन

We beg to apologize to our subscribers for the delay in issuing the Magazine; the arrangements we anticipated making, having failed. The 24 pages of Demy Quarto which is now issued, contains more matter than the proposed 40 pages of our Prospectus, and will be published on the 15th of every month.

HARIS CHANDRA.

[Harishchandra Magazine, First Issue, october 1873]

शब्द कल्पद्रुम

॥श्री सर राजा राधाकान्त देव का॥
॥भुवन विख्यात॥
॥अभिधान॥
॥द्वितीय बार मुद्रित॥

बंगला और देवनागरी दोनों अक्षरों में अलग-अलग छपैगा छः महीने तक 20 फर्मा (80 पृ. का एक-एक खंड) प्रति मास में मिलैगा और पचास खण्ड में सम्पूर्ण हो जाने की सम्भावना है। मूल्य प्रत्येक खंड का एक रुपया और जिन लोगों को लेने की इच्छा हो वह कलकत्ते में शोभा बाजार में कुमार श्री उपेन्द्र कृष्ण बहादुर को या मुझे लिखैं।

हरिश्चन्द्र

[हरिश्चन्द्र मैगजीन, दिसम्बर सन 1873 ई.]

विशेष विज्ञापन

सम्पादक के अस्वस्थ होने से यह नम्बर यथोचित मनोरंजक नहीं हुआ परन्तु हम अपने ग्राहकों को समाचार देते हैं कि अगला नम्बर बहुत ही मनोरंजक होगा।

Owing to the ill-health of the Editor the present issue is not so well got up. Therefore assures his readers that the next issul will be more attractive and interesting.

[हरिश्चन्द्र मैगजीन, 15 जनवरी, 1874 ई.]

विशेष सूचना

इस पत्र के सम्पादक का जी नहीं अच्छा है और वह व्याधि ऐसी है कि लिखने पढ़ने से और भी बढ़ती है इससे ग्राहकों से निवेदन है कि जब तक ईश्वर उसे फिर ज्यों का त्यों भलीभांति अच्छा चंगा न कर दे तब तक इसके अप्रबन्ध मात्र को आप लोग क्षमा करें।

[हरिश्चन्द्र मैगजीन, 15 मार्च, 1874 ई.]

GRAND FRESH NOVELTIES OF THE SEASON

We have received Various Tresh Goods direct from England per Steamer Cathay, Consistins of new and choicest novelties of the season that are not to be had in the Indian markets, such as :—

Photographic beauties of Europe, (coloured)
Do. Royal celebrities of Europe, (not coloured)
Do. Indian royal clebrities, (ditto).
Chromos wope
Croblet of Gagliastro
Name Mystery
Enchanted Coffer
Comic Pictorial Pyrotechnics
Here and there.
Purse of Purses.
The magic Tablet.
The Prairie Bird.
Design for chromoscope.
Watches.

We beg respectfully the kind patronage and inspectionm of the ladies and gentlemen of the station in our firm at chowkhambha.

BENARES : HARIS CHANDRA & BROTHER
Jany 1874.

N. B. : We exped another fresh stock of goods direct from England by next mail, which are entirely new and amusins from what we have already advertised Bankers, Jwellers and Dealers in Miscell.

HARIS CHANDRA & BRÓTHER,

[Harischandra Magazine, January 15th, 1874]

हैजे से कैसे बचें

इन हैजे का उपद्रव बहुतायत से फैल जाता है। इस हेतु लोगों को उचित है कि नीचे लिखा हुआ उपाय करें। निश्चय है कि इस उपाय से बड़ा बचाव होगा।

सब लोग छोटे या बड़े एक एक तांबे का पैसा या अधेला या तांबे का जन्तर या तांबे का कोई टुकड़ा डोरे में पिरोकर गले में इस चाल से पहिरे कि वह छाती के नीचे लटकता रहे और धूप में बहुत न फिरै और भोजन दस बजे तक कर लें और घर में मैलापन न रखैं और हैजे की चर्चा बहुत न करैं।

निश्चय ही जो लोग यह उपाय करेंगे उन को ईश्वर बुरे लोग से बचावेगा।

हरिश्चन्द्र

[कविवचन सुधा, चैत्र 15, 1927 भारतेन्दु समग्र से साभार]

अपील

आपका पुस्तकालय सहायहीन हो जर्जर हो गया हम आप लोगों से प्रार्थना करते हैं कि आप लोग कृपा कर थोड़ी-थोड़ी सहायता करें। पुही पुही तालाब भरता है। इस लोकोक्ति के अनुसार यह शुभ कार्य भलीभांति सम्पन्न हो जायगा।

गत मुंशी जी के बाबू रामदास उस पुस्तकालय को सहायता करने को सब भांति उद्यत हैं और श्री बाबू गुरुदास मित्र ने घर भी बहुत उत्तम दिया है और उस्में पुस्तकें भी बहुत भाषा की रक्खी हैं पर केवल परें की सहायता के बिना वह नष्ट प्राय हो रहा है आशा इस पत्र को देखने वाले कुछ सहायता अवश्य करेंगे। वरन मेरी यह विनती है कि सहायता थोड़ी ही की जाय जिस्में उसका निर्वाह निष्कंटक होता रहे।

आप लोगों का दास

हरिश्चन्द्र

[कविवचन सुधा, 17 अगस्त, 1927 ई.]

खबरें

बम्बई, गत सप्ताह में 7 बालक जनमे और 332 लोग मरे। यहां के जज्ज ओलिवर साहब कचहरी में बैठे बैठे एक संग कुरसी से गिरकर मर गए! आश्चर्य की मृत्यु हुई!!! यहां गिरगावां में लाहोर ज्ञान विस्तारिणी सभा के लेखाध्यक्ष बाबू नवीनचन्द राय ने हिन्दी भाषा में पंजाब के वर्णन में व्याख्यान सुनाया। यहां सन 70-71 में कस्टम खाते में 7690835 रु. 4 आना 8 पाई उत्पन्न हुई।

[कविवचन सुधा, दिसम्बर, सन 1871 ई.]

बनारस अखबार में म्युनिसिपल कमेटी की दुर्दशा और बूलो नाले पर नल का उपद्रव बहुत ठीक लिखा है। अब आजकल यह दशा है कि हमारा कार्यालय ऐसा दुर्गन्ध में हो रहा है कि वहां का बैठना कठिन है। चार चार स्थान पर नल फूटा है और कुछ प्रतिबन्ध नहीं होता। वरन यह दशा है कि कुली सब ढके हुए मैले को खोल खोल कर छोड़ देते हैं और तमाम सड़क पर मैला बह रहा है। यद्यपि हम जानते हैं कि बूला नाले के पास नल बन रहा है इसी हेतु यह उपद्रव है पर इस ओर का मैला निकलवा देने से बहुत अच्छा होता। नहीं तो हम लोगों को आशा है कि एक या दो सप्ताह में लोगों के चौकों में मैला बहने लगेगा और तब बड़ा संकट होगा। पर इस को कोई नहीं विचारता और अब तो मार्ग बन्द हो जाने से कोई इधर आता भी नहीं कि इतस्थित दुखियों की दशा देख दयार्द्र हो।

[कविवचन सुधा, 25 जनवरी, सन 1872 ई.]

कविवचन सुधा और दूसरे एतद्देशीय पत्र इस बात पर शोच करते हैं कि मुंशी प्यारे लाल का विवाह व्यय घटाने के निमित्त श्रम व्यर्थ जाता है परन्तु हम लोग आनन्दपूर्वक उन पत्र के सम्पादकों को साहस देते हैं और चाहते हैं कि वे लोग आजमगढ़ के कलेक्टर के इस विषयात्मक सफल उद्योग पर ध्यान देवैं। गत शीत ऋतु में उक्त महाशय ने इस काम में हाथ डाला और...(अपूर्ण)

[कविवचन सुधा, 5 जुलाई, सन 1872 ई.]

श्रीमान् गवर्नर जेनरल साहब बहादुर ने 30वीं जनवरी को ब्रह्मा देश मुख्य नगर रंगून में एक लेवी का दरबार किया था। उस में न्यूनाधिक 200 सभ्य लोग एकत्र थे। वे 19वीं फेब्रवरी को फिर कलकत्ते में पधारेंगे।

— ● —

एक दिन कलकत्ते की कचहरी में एक किसी बाबू का मुकद्दमा था और उन पर 25 रुपया दंड हुआ। वे बड़े अप्रसन्न होकर बोले कि "हमारे ऐसे प्रतिष्ठावान मनुष्य को विशेष दंड करना चाहिए। हम घर से एक शत मुद्रा लाए थे।"

— ● —

गत पक्ष में हमने लिखा था कि बिहारी का जूआ पकड़ा गया। उस में सब 22 मनुष्य पकड़े गए थे तिस में 21 को तो एक दो महीने का कारगार हुआ और बिहारी तीन महीने को काराबद्ध हुआ।

[कविवचन सुधा, 9 फरवरी, 1872 ई.]

हमारे नवीन गवर्नर जेनरल 17वीं अप्रैल तक बम्बई में पहुंच जायंगे।

— ● —

महाराजा पटियाला ने लार्ड म्यो के स्मरण कीर्ति के लिए पंजाब युनिवर्सिटी कालेज को 15000/- दिया है।

— ● —

गुजरात ने निवासियों ने यह विश्वास करके 13वीं फेब्रवरी को पृथ्वी का नाश होगा उस दिन खूब ब्राह्मण भोजन कराया।

— ● —

श्रीमती लेडी म्यो ने 5वीं मार्च को कलकत्ते से प्रस्थान किया। एक दिन जब्बलपुर और चार दिन बम्बई में ठहरकर अपने देश को जायंगी।

— ● —

परसाल का वह दिन फिर आ गया जिसके विषय में हमने लिखा था कि "लोगों का मार्ग में चलना कठिन हो जाता है।" देखें इस बेर सरकार क्या प्रबन्ध करती है।

— ● —

एक दिन ठठेरी बाजार में किसी बदमाश ने एक मैदा वाले को कई लाठी मारी। सुनते हैं वह अभी पकड़ा नहीं गया। ऐसे ऐसे दुष्टों के लिए कोई उत्तम प्रबन्ध नहीं होता।

— ● —

बम्बई के किसी पारसी की स्त्री ने एक समाचार पत्र में लिखा है कि हमारे

धर्म्म वालों को उचित है कि जब श्रीमती लेडी म्यो बम्बई में आवें तो उन को एक शोकसूचक पत्र दें।

— ● —

जब श्रीमान गवर्नर जेनरल के मरण का समाचार मूलमीन में पहुंचा तो वहां के लोगों को कुछ आश्चर्य नहीं हुआ क्योंकि जब श्रीमान वहां गए थे तो उन लोगों ने कई अपशकुन देखा था। वहां के मुसलमानों ने मुख्य द्वार पर ऐसी तैयारी किया था कि जो मुर्दनी में की जाती है।

— ● —

एक दिन ओकोनर नाम के किसी आईरिश ने श्रीमदिङ्लन्डेश्वरी महारानी का पिस्तौल मारना चाहा था। जब श्रीमती गाड़ी से उतर रही थीं उस ने एक हाथ से निवेदन पत्र दिया और एक हाथ में पिस्तौल लिए था परन्तु पीछे से जब वह पकड़ा गया तो ज्ञात हुआ कि पिस्तौल टूटी थी और भरी भी नहीं थी।

— ● —

बिहारीलाल नाम का एक किसी जैनी ने यहां पर एक बड़ा भारी मन्दिर बनवाया है, उस में कई सहस्र मुद्रा का व्यय हुआ है। थोड़े दिन हुए उस का रथ बड़े धूमधाम से निकला था। सच है जब तक मनुष्य के हृदय में से अज्ञान रूपी अन्धकार नहीं जाता उसको हानि लाभ का यथार्थ ज्ञान नहीं होता। एक पाहनमूर्ति स्थापन के हेतु असंख्य मुद्रा व्यय करना हमारे समझ में बुद्धिमानी का काम नहीं है। पर अभी यहां वालों की ज्ञान दृष्टि खुली नहीं।

[कविवचन सुधा, 9 मार्च, सन 1872 ई.]

शेरअली हत्यारा 11वीं मार्च को फांसी पड़ गया।

— ● —

सिनकिनसन साहेब हमारे भूत असिस्टंट मजिस्टर फिर अपने पद पर आ गए।

मुर्हरम के दिनों में काशी में बड़ा कोलाहल हो रहा था कि क्यामत (प्रलय) आवेगी और संसार का नाश होगा पर कुछ न हुआ।

— ● —

इन्डियन कौंसिल के लोगों ने लेडी म्यो और उनके पुत्रों ने लिए 12000 रुपया वार्षिक देना स्वीकार किया है। निःसन्देह यह बहुत उचित है।

— ● —

लार्ड म्यो की कीर्ति स्मरण सम्बन्धनी एक सभा प्रयाग में 19वीं को हुई थी। उचित शोक प्रकाश के अनन्तर यह दृढ़ हुआ कि इस देश में उनके स्मरणार्थ एक कीर्ति बनाने के लिए रुपया एकत्र किया जाय।

— ● —

सन 1874 से गया स्कूल के हेड मास्टर बाबू राधेलाल की भाषा बेधिनी, चतुर्थ खंड, कलकत्ते की विश्वविद्यालय की प्रवेशिका परीक्षा में नियत हुई, हमारी समझ में यह बात अच्छी नहीं हुई क्योंकि वह पुस्तक कुछ कठिन नहीं है।

— ● —

कलकत्ते के लाल बाजार में 15वीं को एक अंगरेज कांस्टेबल ने एक पंजाबी को पकड़ा। वह कहता है मैं कलकत्ते में लाड साहब से कुछ बातचीत करने आया हूं, मेरी भूमि बलात् छिन गई है। पुलीस के कमिश्नर ने उसे गारद मे रखा है और जिज्ञासा हो रही है।

— ● —

कूका लोगों का ग्रुप राम सिंह जो अभी इलाहबाद में था रंगून में भेजा गया।

— ● —

काशी में भी एक विधवा विवाह हुआ है।

— ● —

[कविवचन सुधा, 25 मार्च, सन 1872]

शेरअली 11वीं मार्च को फांसी पड़ गया। उस ने कहा कि मैंने बहुत दिनों से यह संकल्प किया था कि किसी बड़े साहब को मारूंगा परन्तु जब यहाँ भेजा गया तो आशाहत हो गया। जब मैंने लाट साहब के आने का समाचार सुना तो चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ कि अब वह अवसर आ गया। मैंने लाट साहब और स्टिवर्ट साहब दोनों को मारने की कल्पना की थी परन्तु ईश्वर ने स्टिवर्ट साहब को बचा दिया। हमारे इस कल्प का फल निश्चय ही अब्दुल्ला से विशेष होगा क्योंकि मैंने एक बहुत बड़े साहब को मारा और मेरी स्मरण कीर्ति भी बनावेंगे। उसने अपना एक वस्त्र एक सिपाही को दिया कि मेरे 'कबर' में गाड़ देना पर उसने लम्बर्ट साहब को दे दिया। फांसी चढ़ने के समय वह वस्त्र उसे दिखलाया गया तो वह बहुत क्रुद्ध् हुआ।

— • —

किसी ने एक पहेली लिखकर ग्रिफिथ साहेब के पास भेजा है। उन्होंने कालिज के और कई लोगों से कहा पर अभी तक किसी ने उस का अर्थ ठीक ठीक नहीं लगाया पंडित एमजसन उक्त पाठशाले के हेड पंडित इसका अर्थ नारिकेल (नारिअर) बतलाते हैं। हम आशा रखते हैं कि हमारे कोई पाठक लोग इसको बैठावेंगे।

पहेली। सास कुंआरी बहू पेट से ननद पंजीरी. खाय। बिनु ब्याही बेटा जनी बांझिन दूध पिलाय॥1॥

[कविवचन सुधा, 25 मार्च, सन 1872 ई.]

सिन्ध मे ऐकवाबाद में भूमि कम्प हुआ था॥

— ● —

गत मंगलवार को बम्बई में बड़ी भारी वर्षा हुई थी॥

— ● —

नैनीताल में एक क्रीकट हुआ था उसमें हमारे डैरेक्टर मिस्टर केमसन साहिब भी थे—

— ● —

कलकत्ते के हाईकोर्ट के निमित्त जो नया गृह बना है उसमें 1815000 रु. व्यय हुआ है॥

— ● —

दि शिमला सिविल एंड मिलिटरी गज़ट जो पहिली मई को निकलने वाला था अभी तक नहीं निकला॥

— ● —

रेवरेंड लालवेहारीदे वेंगाल मागेजीन नामक एक नया समाचारपत्र प्रचलित करनेवाले हैं यह पत्र महीने में एक बार छपेगा॥

— ● —

सुन्ने में आता है कि श्रीमान डैरेक्टर आफ पबूलिफ इंस्ट्रक्शन शीघ्र इलाहबाद को म्योर कालिज खोलने के निमित्त आवैंगे॥

— ● —

म्योर कालिज इलाहबाद के प्रिंसिपल हेरिस साहिब, साहित्याध्यापक राइट साहिब औरं अंक विद्या के प्रोफेसर इलियट साहिब नियत किए गए हैं॥

— ● —

'दि मोहमिडेन सोशल रिफारमर' (The Mohamedan Social Reformer)

नामक एक पत्र प्रचलित है इसका आशय मुसलमानों में सभ्यता फैलाना है, यदि हिन्दुओं में भी एक ऐसा पत्र हो तो कैसे आनन्द की बात है!

— • —

मेयो स्मारक कृत्य

मेयो स्मारक कृत्य के हेतु पश्चिमोत्तर देश में अब तक 38.142 रु. 10 आने एकत्र हो चुके हैं जिसमें केवल बनारस से 6.219 रु. मिले हैं बनारस वालों ने निस्सन्देह इस बारी बड़ा जी किया। इन में मुख्य श्रीमहाराज विजयनगर का नाम है जिसे अपनी प्रसिद्ध उदारता से 2000रु. दिया है और श्रीकाशीराज ने तथा काशीस्थ नवाब टोंक ने एक एक हजार दिया तथा राजा शम्भुनारायणसिंह ने 200 और शेक्स पीयर साहब तथा बाबू गुरुदासमित्र ने सौ सौ रु. दिये। यदि इसका सहाय हो तो सब सफल हो।

— • —

कृत्रिम नोट

यहां एक मद्रासी मनुष्य ने एक लाख साठ हजार के कृत्रिम नोट बेंचे हैं। एक गोपाल दास नामक जौहरी ने अपना बहुत सा जवाहिर उस मनुष्य के हाथ बेंचा और उसके बदले वही काग़ज़ पाए। ये नोट B/29 सीरिज़ के बने हैं और इनका नम्बर 30000 से लेकर 31000 तक है। ये बहुत शुद्ध नहीं बने हैं। पहिले के दो अंक पत्थर से छापे हैं और सब, टाइप से। काग़ज़ कुछ कोमल है और उसके भीतर पानी की लकीरें भी नोट के काग़ज़ ही की सोवनी हैं। इसकी कालिमा गहिरी है और प्रायः उसमें 1000 रु. के टुकड़े हैं परन्तु कोई कोई 2000 और 5000 के भी हैं। सुनते हैं कि महाराज विजय नगर के यहां भी इस में के कुछ नोट लिए गए हैं। मद्रास में बिगत सोमवार को 18 मनुष्य कोष में इन का दाम लेने गए थे। अब पूलिस खोज कर रही है।

[कविवचन सुधा, 21 जून, सन 1872 ई.]

— • —

अलीगढ़ गज़ट द्वारा ज्ञात हुआ कि पश्चिमोत्तर में केवल छः पत्र हिन्दी के निकलते हैं कैसे शोच का स्थान है—हिन्दी की उन्नति कब होगी!!!

— ● —

अलीगढ़ स्कूल के हेड मास्टर मिस्टर एल. ए. स्टेपली साहिब इलाहाबाद हाई स्कूल के हेड मास्टर नियत किए गए हैं। उनके स्थान पर प्ले साहिब मुरादाबाद से आए हैं॥

— ● —

हमारे संवाददाता के द्वारा ज्ञात होता है कि चिंगलीपुर के ग्रामों में चीते आते हैं और खेतों को बहुत हानि होती है और गाय आदि पशुओं को ले जाते हैं।

— ● —

पायोनियर द्वारा ज्ञात हुआ कि एक मुसलमान ने अपनी बहिन को मार डाला इस का यह कारण था कि उस की मां ने उस लड़की का सम्बन्ध उस के भाई से बिना कहे कर दिया था।

— ● —

बम्बई में 'बम्बई समाचार' सब से पुराना समाचार है इस को छपते 53 वर्ष हुए। इस से उतरता 'जमीजुमरोद' है जो 41 वर्ष से छपता है और इस से उतरता 'चाबुक' जो 40 वर्ष से छपता है॥

— ● —

फ्रेंड आफ इंडिया द्वारा ज्ञात हुआ कि बाबू चमथकर मोहन कलकत्ता निवासी ने कूका की विधवा और लड़कों को निमित्त चन्दा देने की इच्छा प्रकाश की है इस पर पायोनियर के सम्पादक महाशय प्रश्न करते हैं कि कितना चन्दा होगा!

यहां भी वर्षा आरम्भ हुई।

— ● —

16 तारीख (जून) को मिर्जा खुदादादबेग को स्वागत करने के अर्थ एक समाज हुआ था— उसमें महाराज विजयनगर और कमिश्नर साहिब भी थे॥

— ● —

यहां मौलबी सैयद अहमद खां एक कालिज के हेतु चन्दा एकत्र कर रहे हैं उस कालिज का नाम दि मोहमिडेन एंगलो ओरिएंटल कालिज है, (The Mahommedan Anglo Oriental College) है।

[कविवचन सुधा, 5 जुलाई, सन 1872 ई.]

व्याघ्र

वीरायेन्द्र पट की सड़क पर एक बड़ा व्याघ्र एक मिस्तरी से मारा गया। वह दो तीन दिन पहिले से घूमा करता था, एक दिवस वह सड़क पर आया जहां कि कई एक वृषभ थे। वृषभ इस प्राण घातक की गन्धि पाकर घबड़ाए और कए उन में से भागा व्याघ्र उछला और उसकी ग्रीवा पकड़ ली और पचास गज दूर जंगल में खींच ले गया। बहुत से मनुष्य वहां उपस्थित थे पर किसी ने उस के पास जाने का साहस न किया। दूसरे दिवस सायंकाल में उस की पिछली टांग और एक ग्रीवा का भाग मिला। मिस्तरी एक बन्दूक लेकर तरु पर चढ़ गया जहां से कि वह भली भांति देख सकता था जोहीं व्याघ्र निकला तोहीं तक कर गोली मारी और व्याघ्र समाप्त हुआ—पायोनियर॥

[कविवचन सुधा, 5 जुलाई, सन 1872 ई.]

लाहौर के मजिस्ट्रेट श्री (जैसीरामजिन को गत सेप्तेम्बर मास मे एक कूके ने मार डाला) की विधवा स्त्री को सरकार ने कुछ वार्षिक देने की आज्ञा दिया है।

— ● —

मेजर वर्न इन्डिया आफिस के मेहे मेमदार नियत हुए हैं। हम लोग नहीं जानते यह कौन पद है।

— ● —

बंगदेश में कोई-कोई स्थानों पर नीच लोग (जो कि श्मशान के आस पास रहते हैं) मृत शरीर को दग्ध करने के समय उसका वस्त्र मांग लेते हैं और अनन्तर उस वस्त्र को बाजार में बेंचते हैं। आशा है कि राजकर्मचारी महाशय लोग इस दुष्ट व्यवहार को शीघ्र ही बन्द कर देंगे।

— ● —

लाहोर में डेंगू ज्वर से पहिले ही पहिले एक परिवार ग्रस्त हुआ यह परिवार थोड़े ही दिन हुए कि कलकत्ते से आया था।

— ● —

मोहेमडेन अंग्लो ओरियन्टल कालिज के निमित्त 40,000) मुद्रा एकत्र हो चुकी है।

— ● —

ज्ञात होता है कि युवराज मिस्टर एच जी, स्टर्ट (Mr. H. G. Stanrt M. P.) से भेंट करने के निमित्त इन महाशय के गृह में शुभागमन करेंगे, हम लोग बोध करते हैं कि ये महाशय लार्ड नार्थब्रूक के कोई सम्बन्धी हैं।

— ● —

बम्बई के पुलिस कोर्ट में बाबाजी लक्ष्मण और अमरचन्द नामक मनुष्य पकड़े गए हैं इन ने सहस्र सहस्र मुद्रा के सात कृत्रिम नोट बनाए हैं। बोध होता है कि बम्बई मद्रास प्रेसीडेंसी कृत्रिम नोट की खान है।

[कविवचन सुधा, 2 सेप्तेम्बर, 1872]

चित्रावली

विश्व हिन्दी समुदाय के पुरखे भारतेन्दु

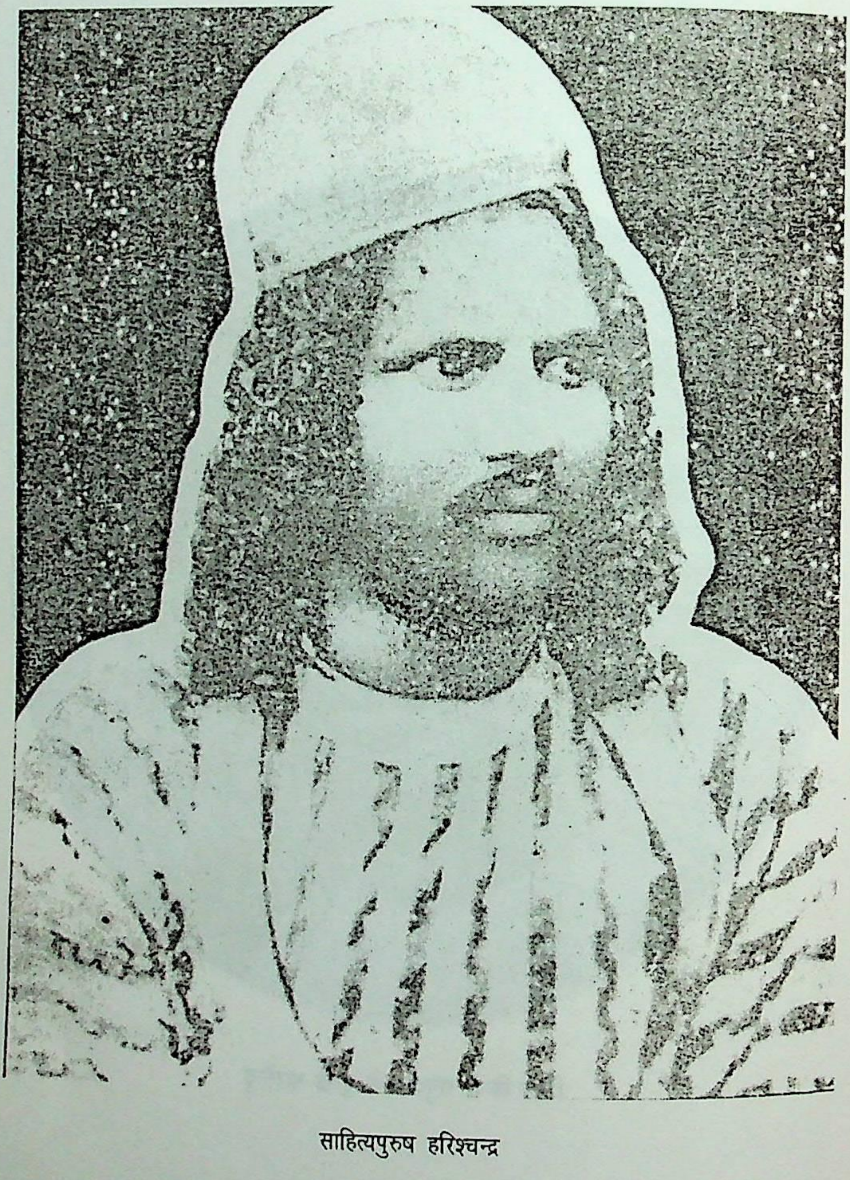

साहित्यपुरुष हरिश्चन्द्र

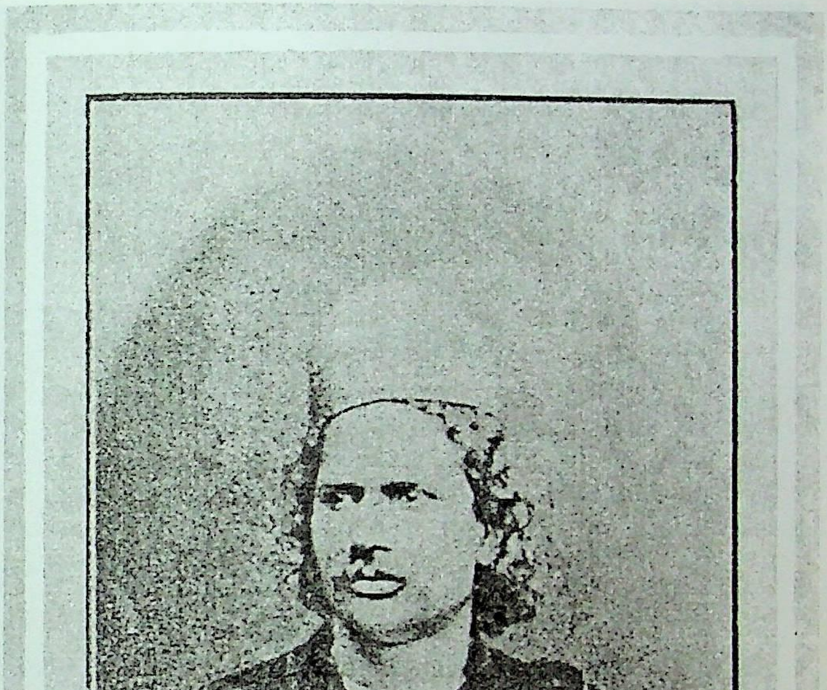

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनकी धर्मगृहीता मल्लिका

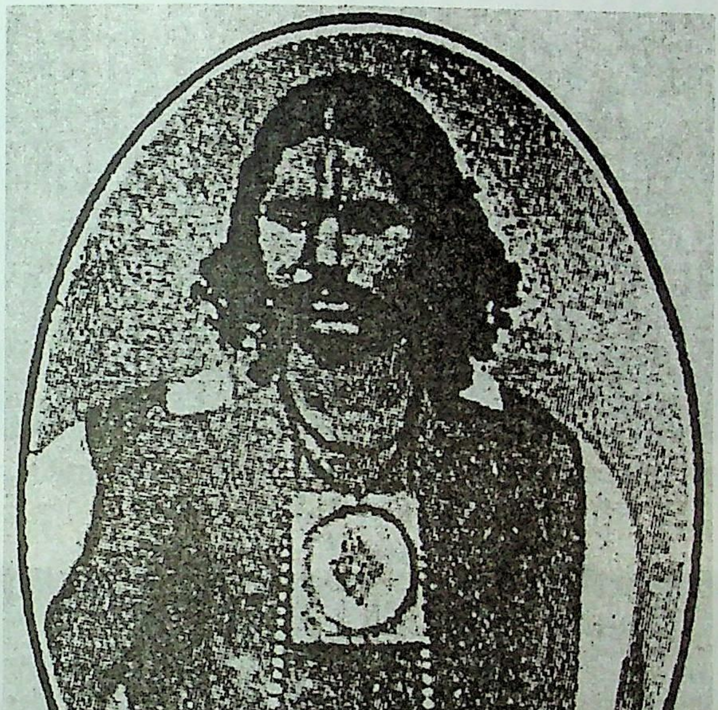

अनन्य वीर वैष्णव हरिश्चन्द्र

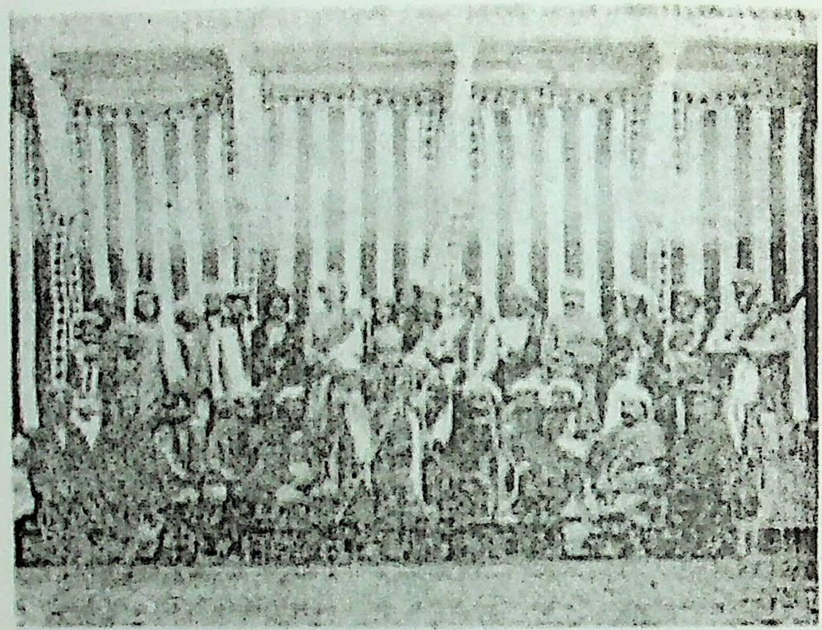

काशी-नरेश श्रीमान् विभूतिनारायण सिंह द्वारा सभा [नागरी प्रचारिणी] को प्रदत्त दरबार का एक फोटो चित्र; खड़े व्यक्तियों में बाईं ओर से सातवें भारतेन्दुजी हैं

शती उत्सव के अवसर पर अभिनीत बुद्ध-गृहत्याग का एक दृश्य

ENGLISH WRITING

Public Opinion In India

The state of transition in India, after a laps of so many centuries of thraldom, is come under the paramount sway of the British nation. The country is gradually rising from the death-like slumber of misrule and oppression by the appearance of the western rays of civilization and enlightenment, and with its bulk of multifarious population, is influenced by the progressive policy of the British nation. But in this progressive state, national energy and zeal, sympathy and disintiredness, are wanting to make both the conqueror and the conquered to act in concert, and in harmony; and hence we have the broad distinction of white and black still. But in this country, many are the blemishes that adhere to us, to be eradicated and many are the shortcomings that are hovering around us, to be done away with before we can have a public opinion here in its true sense. Race antagonism, rivarly and mutual misunderstanding are the favourite occupations of the aristocratic class. Want of confidence among all classes of men are the prevailing characteristic of the nation and above all multifarious castes and creeds with their numerous forms of religion and local habits and customs, which all combined have kept the progressive policy at a stand still. True it is that a representative Government is a boon to this country and true it is that Sir Bartle frere a man of vast experience and a good statesman, has found out that in village community, we can have public opinion; but with all his experience he has lost sight of our national defects-defects which we ourselves know and which no foreigner can catch at a glance. Certainly time is at hand when the Indians may be entrusted with some of the responsible posts of the Government; but to whom is the question? To those whose rank, position and c. in the Indian Society are acknowledge by the Government and not the serfs. Sir William Muir has partially introduced such a system by establishing local committees and

sub-committees and has thus given the savants of the North west a fair opportunity to convey their views and opinions to the notice of the Government. These committees though acting under the surveillance of the governing class, are doing their respective functions properly.

The deep and warm interest displayed by the members of the East Indian Association of England composed as they are of politicians, statesmen and men of rare experience and knowledge, to raise the status of Indian Society be creating a form of "Village representative Government" is indeed encouraging and speaks much of their disinterestedness and zeal for the welfare of the Indians, but how this can be effected is a problem still to be solved by those advocates of "Village representative Government." The bulk of Anglo Indian population is under an impression that time is forthcoming when actual reformation of India is to be aimed at in right earnest and when the nation is to be placed in **par excellence** with other nations of Europe and America. But alas! The case is quite different now. When we consider ourselves deliberately our own shortcomings and when we think with downcast feature that we cannot reconcile each other in any point of importance both as to social and religious reform, we stand reproved by hopelessness. Allowing the representative form to come into operation, what would be the result then? The result would be that different village will have different opinions materially differing from each other. The cities of one part of the country will not coincide in their views and opinions with the cities of the other part, inasmuch as they differ greatly in their customs and manners. Hence we will have different opinions of different sects and communities widely differing from each other in their general opinion even and instead of one public opinion, we will have ad-infinitum sects of India. Hence it is desirable that religion, which has gone to such a degree of corruption now, should be looked after with much care and concern by the Indians. Unless there be a general desire to shake off the trammels of superstition, the regeneration of India cannot be aimed at. Let the religion of India be the religion that can govern millions of her subjects without any let or hinderance. Let the dark shadow of secterianism be vanished by the rays

of western civilization and let one and all of us combine together to look over national customs and habits from the catholic point of view and let unity be the basis of that grand superstructure of national improvement which every civilized nation has in its possession.

[Kavivachan Sudha, 9th March, 1872]

Failure of Munshi Peary Lall's Scheme of Reduction

The pleasant and delightful Indian dance-music still as usual cheers our mind, not withstanding the strenuous efforts of that energetic. Munshi Peary Lall to bring this under the scheme of his reduction. The soft and sonorous voice of Shahindies coming from the streets has not as yet holly subsided but maintaining all its vivacity luring this marriage season; and long marriage processions, composed of to .... elephants with golden and silver Hoods and Howdas, welldressed ...... numerous caparisoned horses and hower gardens of various colours and descriptions, are moving majestically through the streets and narow lanes of the city. We were auxiously expecting the approach of marriage-season to see how ...... the rules of "reduction of marriage expenses, are carried on with success but alas! we are fully disappointed to see them not properly acted upon as they ought to have been in their true sense. Certainly it is a matter of great regret that our citizens violate those very rules which they themselves formed for their guidance. But why so? For the Indian customs and prejudices, which are fettered by the inviolable chain of religion, cannot be obliterated by a sudden change of policy and opinion by the Indians themselves. Social reformation requires time and foresight. Neither the whimse and semi-civilized wisdom, nor, the outward of show of disinterestedness can affect the minds of a nation composed of innumerable castes and sects who are widely differing from each other in their manners and customs. The truth is that the extreme levelling policy of the Munshi Peary the invention to his own individual imaginating which failed to grasp preperly the scope and extent of multifarious local habits and customs of the people of different parts of the province, has

brought such a sad and an end that can not be bettered unless...act up to the combined policy of the well-to-do orthodox class or men who should be explained of the object of the mission of Munshi Peary Lall and then to make them to give their views and opinions about the reduction of marriage expenses. Each community should select a head of its own to watch over the proceedings and then allow that head-man to adjust and settle disputes and quarrels that generally happen between two parties viz bridegroom and the bride's party. Should any one deviate from the preseribed rules of the community of course, he will have to suffer much for his intentional negligence and that suffering or punishment must be given by the members of the community and not by any outsider, for the influcence and position of the head man of the community, will carry much weight and importance than score of wise and spirited men like our Munshi. The above mehtod, no doubt, would enhance the utility of the grand scheme of reduction. But after all we must be gratefull to the Munshi for his kind suggestions though we may not agree with his rules and by-laws of "reduction". We would not have brought this sad failure to the notice of the public at large had we not been obliged to do so by the rules of the Munshi which distinctly declare that individual failure must be brought to the notice of all men through the medium of he newspapers. Instead of individual failure we have treated general failures thereby avoiding personality which a journalist ought not to do.

[Kavivachan Sudha, 25th March, 1872]

Hindee Bhasa

Very, great sensation seems to have been caused in certain quarters recently, and since the presentation of the Memorial to the Government for a change in the Court language, especially, in favour of the Hindee. The advocates of that dialect have tried every means, possible for the people in their situation, for giving wide diffusion to the subject. Persons of influence among them, have made it a topic of general conversation, and endeavoured to raise the hopes of people and succeeded in obtaining their co-operation in asking for an alteration which is supposed to confer substantial benefits on them. Vernacular newspapers and their contributors, have not been wanting in their assistance. They, too, have come forward and joined their voices in their prayer and have strengthened their solicitations by humorous anecdotes, and philosophical discussions, bearing upon the subject. Backed and supported by such allies, the so called Hindee has appeared in the field against "*Urdu*", to dispute and regain the ground lost by her, and believed to have been occupied by her rival. Nor was the latter without friends or adherents. Her partizans have soon rallied, and assembled their forces against this violent attack of an unexpected enemy. The literary portion of the North-Western Provinces of India may well be said to be divided into two factions in this Civil War. The English Press, also, should not be supposed to have been entirely a neutral spectator. Most of the journals have taken one side or the other, as has appeared proper or expedient to them. The friends of Hindee pretend to be actuated by such a noble and patriotic feeling for the cause of what they call and offspring of their original language, if not the language itself, that any attempt, on the part of a Hindoo at least, to question the propriety or soundness of their zeal, is sure to be regarded as little less than a sacrilege and sin. In

the present state of circumstances, however, the following observation, will, it is hoped, be read with interest by both parties.

There is yet another and independant class of persons, who regard the claims of the two contending parties as groundless, and maintain that the combatants wish to draw a distinction where there is no real difference; that the Hindee and Urdoo languages are in fact indentical; and that the Hindee shorn of big and abstruse Sanscrit phraseology, is nothing more or less than the Urdoo deprived of difficult Persian and Arabic Words. With this view I concur. Call it Hindee or Urdoo as you may, it is only the simple vernacular, without pendatry, derived from the dead or foreign languages, spoken by, and intelligible to, the mass of the population of these Provinces. I comprehend, and approve of, no other definition of the Hindee or Urdoo. There was no difference when the language of Urdoo was first formed. The poetical or prose compositions of the earliest Delhi Authors are now regarded as works of *Hindee* written in Persian characters. Some of the later Urdoo writers of Lucknow have scorned in their bombastic and high flown language at the writings of Meer Amman and his contemporaries, as uncouth and vulgar. What are then the languages sought to substitute and be substituted? If those who are fighting for Hindee wish to introduce, and adopt for writing the current dialect of this part of the country, let them bear in mind, that there is no such dialect. There are, strictly speaking, as many languages as there are towns in the North-West Provinces. The vernacular of one city perceptibly differs, and is distinguishble, from that of another. If they wish to bring in a language which is not really spoken but, in their opinion ought to be spoken, they will cause insurmountable difficulty and inconvonience by their recommendation. Let the partizans of each point out respectively the standard Hindee or the standard Urdoo.

That the present vernacular of this part of India, is poor and meagre, will be admitted by all and also that, therefore, it must be reinforced by foreign aid whenever itstands in need. Why then limit the supplies to any particular source? Why should we scruple like a Brahmin to receive gold from any individual who can afford to give? Our real endeavour ought to be to enrich the language we speak, from all available sources. Improve the stock by the treasures from wherever they may be had. The

principle which ought to guide us in our exertion should be such as in calculated to render our vernacular, by whatever name you may call it, *useful and intelligible* to all. But do not, while pretending to guard against the introduction of foreign words, fill the language with obsolete Sanscrit idioms. One is as distasteful as the other.

Then there remains only one question ; what characters ought to be employed, Persian or Devanagri? This is such an insignificant point, on which it is useless, in my opinion, to waste our energies and time. It is indeed a matter of indifference to me, whether one or other is chosen as the medium of expressing our thoughts ; our efforts, as I have said before, should be directed to wards improving our *language*, and making it rich and fertile. I would not care much for the adoption of the Sanscrit alphabets, simply because they are admitted, on all hands, to be most perfect, but would try to follow, in this respect, the literary men of England, who notwithstanding their very defective orthography have immensely, beyond all conception, enriched their language.

We should try, I repeat, to acquire real learning, and not waste our time at the formation of our letters only. What should be said of a student who instead of proceeding to learn, devotes his whole valuable time for study and improvement on being able to write a good A. B. C.

I stop at present and may resume the subject, hereafter.

[Harischandra Magazine, October 1873]

Scope For The Educated Indians

The present attitude of our educated society is as deplorable as anything can be ; hence the discussion of the above subject is essentially necessary to awaken them from the dreams of lethargy, and monotonous course of life. The kind and benign British Government who have conquered this land with the apparent object of civilizing it, have up to the present moment preserved their natural exclusiveness which has made the progress of India to go on slowly and seemingly. One who had visited India some half a century ago, is to come again here ; he will, no doubt, be startled to find the outward pomp and flourish of British boasted civilization, and will be astonished to see the grand operation of the "East India Railway Company" from Howrah to Delhi terminus with carriages, employes &c. Which do not fall short in comparison with that of England's. Further at the outset, he will be delighted to find natives swell in bears and benches with sufficient legal acumen that puts many ordinary Englishmen into blush, and will be surprized to find them serving as Clerks and Heads of departments with all official formalism that does credit to the nation. He will again see the progress of education good and glaring, and many Colleges and Schools will show ample example of refined understanding and good culture. He will see the facility of communication by Post and Telegram as easy as in other countries of Europe, and last of all, he will see, with unfeigned pleasure his Brittania's numerous merchants pushing on trade and commerce with redoubled zeal and energy by establishing extensive factories throughout the length and breath of India, that India which Mr. Murray the celebrated Historian says "is the epitome of the whole world". But alas ! he is quite ignorant of the true status of the educated Indians. Numerous Colleges and Schools annually send forth

hundreds nay thousands meritorious scholars who, either enter several departments as Clerks, Engineers, Doctors, Masters of school and colleges Pleaders &c. or remain to pass the hard and excruciating ordeal of penury and starvation ; but these departments are so full now that after some five or six years the authorities will have to devise some means or other to prevent the tumultuous rush of hosts of qualified scholars who are daily swarming. Already the Calcutta High Court has passed a resolution that B. Ls. will have to practice some three years in the Moffusil Court before they can be allowed to plead in the High Court. The Calcutta University has made the course for examination from Matriculation to B. A. as difficult as anything can be, having left the practice of fixing any prescribed course for English literature. Such are the restrictions in other departments of the state. The question now arises, what will become the fate or occupation of these qualified men annually sent forth from Colleges and Schools? Now-a-days a B. A. or nay a M. A. is hankering for a post of 50 or 20 per mensem, and if he secures any with the butt-end of good recommendation, he secures it with his might and main, and drudges whole day to earn his economic livelihood.

Government, no doubt, have made many concessions for the educated natives by opening several departments before them to try their luck, but still they preserve some exclusiveness which despair them greatly. Why not they open Marine and Military departments to them that may be of some relief to them?

Notwithstanding many concessions from the part of the Government for the educated Indians, and notwithstanding its exclusiveness, the educated Indians should themselves be blamed for their apathy in carrying out commerce, agriculture, and their own ancestral professions on a scale that may enhance the commercial, and social prospects of India and there by open a line of lucrative business for their fellow-countrymen. These are the alternatives left to our educated class who, if unanimously ventilate these questions of their material benefit, may have the boons solicited from the Government. Our educated class are quite mistaken in understanding the main object of the Government in imparting sound and high education to them. They think that more they are educated the more they are to acheive something good and great for themselves, and not for the country

at large. The main object of education is simply to enlighten the minds of millions of ignorant subjects who may know the sublime truths of knowledge and wisdom, and not to turn out Clerks, Engineers, Doctors, Moonsiffs, Pleaders only.

India is peopled by heterogenous nation whose social, moral, and intellectual status differ greatly from other countries whose homogenous class preserve one uniform state of social manners and customs which undergo change or modification as time and circumstances allow. Even this heterogenous nation, now a days, have undergone some superficial change by the administrative policy of the British nation which has proved bane to the society. For we see that the nation instead of preserving their ancestral profession, are obliged or willing to enter upon a new arena of life by adopting new and seemingly glorious occupation which their forefathers never dreamt of. This change, we mainly attribute to the progressive policy of the British nation, who, like methodists, are quite repugnant to interfere even with the time-honoured and absurd social customs of their subjects. I do not thereby mean that they should directly interfere with the profane customs and manners fettered by the inviolable chain of religion, which interference would be a direct infringement of the political principles of an enlightened nation. What I mean is, that Government should open all departments to them without any let or hinderance not irrespective of caste, creed, or color, should induce them to turn their new British instilled energy and zeal to the attainments of science and art which are the ornaments of a civilized life, and should urge them to carry on commerce agriculture and their own profession systematically and regularly. If these radical means be adopted by the Government coupled with the co-operation and assistance of the educated savants, the scope for the educated natives will then be vast and comprehensive. Then India will see gradually and surely the happy advent of her palmy days—days that will be frought with the bright and illustrious actions of her poor and dejected sons.

[Harishchandra Magazine November, 1873]

Itihastimir Nasik Part III

A History of India in Hindee by Baboo Siva Prasad, C.S.I.

Medical Hall Press, Benares, 1873.

The work is intended for the Educational Department. It is a most valuable addition to the Vernacular Literature of our country. It is the first of its kind ever written in our language. The author has very beautifully condensed together various and curious informations respecting India, two and three thousand-years old, in the short compass of 80 pages, making the freest possible use of the latest archeological numismatical, bibliographical and historical researches, of such distinguished scholars as Sir William Jones, James Prinsep, Professor H. H. Wilson, Dr. Haug, General Cunningham, Dr. John Muir, and Professor Max Muller, on India. What the followers of Alexander the Great, Megasthenes, the Greek resident in the Court of Chundragupt and the two Chinese pilgrims to the shrines of India have recorded, and what ever can be traced from the native writings of Valmiki, Vyasa, Kali Dass & c., about the manners and customs, distinguished places and kings of ancient Hindus, is given by Babu Siva Prasad, in the briefest and the most readable and attractive style.

But we regret, that Babu Siva Prasad has one fault which presents an obstable to his being a generally popular author. He just like Christian Missionary writers speaks of Hindee institutions in a way offensive to the orthodox Hindus. Instruct your countrymen by all means but in a loving and mild not in an abusive and sneering manner,—much less in a work intended for Government schools. The following is an instance taken at random. In page 43 he writes, "Asoka was one day looking at Brahmins feasting. The sight was most like the Brahmin feasts of our day *Sundmusunda* (meaning stout, able-bodied, a word only used in contemptuous and abusive language) Brahmins were greedily swallowing down *dahee* and *paira's*. Though the stomachs

were full to the throats, yet they were thrusting down sweetmeats. There was so great a bustle and noise made by their pressing crowd and such loud laughter as to have all the appearance of a great fight." I submit such taunting is unsuited to a sober historian. It is now an avowed theory of the civilized world that any popular faith when subject to strict scientific scrutiny will anyhow suffer much or less. The author now and then in his attempts to glean forth some historical truth from Hindoo scriptures, tries to distract the belief of his countrymen from them. He himself in his preface says, " no sober man is expected to go through these pages and again believe in the absurdities of *Purans* or long for one of the old *regimes*" The author with this terrible aim in view shall effect a great mischief, a revolution that threatens to turn anything into chaos, if the work be solemnly handed by Government to tender children of the masses attending village schools. Jones, Wilson, Tod, Max Muller, Griffith and other admirers of ancient Indian literature are unanimous in attributing every thing noble in Hindoo character to the influence and implicit belief in the writings of such divines as Manu and Valmiki, but whose defects supposed or real our author exposes to the reader with a view to take his belief from them. Take this from a Hindoo and what is he? An ungodly creature. Professor Max Muller, that venerable Pundit of the world-wide fame, in acknowledging a sonnet addressed to him by a native scholar thus advises him and through him to all his countrymen, "Take all that is good from Europe, only do not try to become Europeans, but remain what you are sons of Manu, children of a bountiful soil, seekers after truth, worshippers of the same unknown God, whom all men ignorantly worship, but whom all may truly and wisely serve by doing what' is just and right and good." If this disbelief be allowed to be propagated into the mind of the rising generation, the effect will be similar to what the introduction of Epecurian and other Greek philosophies produced among the ancient Romans. When they destroyed their primitive faith in the mysterious Power that rewards the good and punishes the wicked, they (Romans) became totally indifferent to their actions, and immediately after a marked change was visible in their national character. A simple chivalrous and honest Roman was converted into a selfish blood-thirsty and cruel creature, until. Christianity again revived in him to some extent the same humane feelings.

"If there is bliss in ignorance it is fully to be wise."

The chapter on Mohammedans is an epitome of the four volumes of Elliot's Historians of India. It is a dreadful catalogue of the violence and oppression practised by Delhi king on their subjects. But a historian ought to give both sides of the question. Is it honesty to give one and suppress the other to deceive a reader? European critics and Historians are unanimous in placing the names of Acbur, Jehangeer and Shah Jehan among the benefactors of human race, but our author sees nothing but faults in them. History tells us they have done all that could have been expected from the civilization and the form of Government of that period, much better than the rulers of Europe of those days. They have proclaimed toleration in matters of religion when it was unknown in the civilized Europe. The author rather boldly puts before his reader the wrongs, the Mohammedans did to the Hindoos, which though however true we do not want to remind tender children of the masses, as they are likely to produce a spirit of revenge and a natural hatred between the two principal sections of the Indian population. It is the time we should, heartily co-operating with each other and making our common cause as natives of the same country, make advances in civilization, try to amileorate our condition, and cultivate useful arts of peace, under the beneficiency of British rule.

Babu Siva Prasad, giving a list of some 22 taxes from *Fatuhat-i-Ferozshahi* that existed up to Ferozshah's reign, remarks, "People of our day will be surprised even to hear the name of some of these taxes, we wonder how the poor could live in that period." We will be guilty of the blackest ingratitude if we do not acknowledge the blessings we enjoy under the British Government, but it has excelled far all the former governments of the country *in* the variety and number of its taxes on the people. The author forgets that the taxes, which he names as an instance of the harsh tyranny and oppression of the former rulers, are existing with two or three exceptions under the 'British rule under altered refined names, not to say of many more imposed, which the former half-civilized rulers could not even think of. Professor Fawcett, the blind champion of India, as he is gratefully styled by native newspaper Editors in the present sitting of the Parliament, replying to Mr. Grant Duff the Under Secretary of State, remarks in his touchingly eloquent speech, "The system of local

taxation in India seemed to have been devised to produce among the people the *maximum* of torment and terror. Was the Under-Secretary aware that in Bombay an Act existed—the Act was suspended merely not repealed ; it was held over the people's head and might be enforced any day—authorizing the imposition of an income-tax on incomes of 5£? *In the history of the world was so monstrous a tax ever before devised by human perversity, (hear)"* Still Babu Siva Prasad thinks fit to sound the praises of British Government in this respect.

See ! neath taxations heavy grinding load
In younder shade unheard she groans,
Each breeze that blows thro' her fair palm tree groves
But wafts her sighs, her plaintive moans.

Mokerjea's Magazine.

The author concludes his excellent work with the following beautiful play on the words *phut* and *bair,* "Many a foolish countryman of ours believes that the English will one day fall like their predecessors, but they are labouring under a great mistake. The British can only fall when disunion *(phut)* and enmity *(bair)* be created among them but both of these are strongly adverse to the 'nature of their religious belief and political constitution. *Phut* and bair (alluding to two common country-fruits) are indigenous to this land only, they would not germinate in the cold climate of the British isle. England shall prosper more and more daily and may God it do so, for India taking hold of her feet will gradually rise with her in the scale of civilization and prosperity". May God it be so!

An Orthodox Hindoo of Kasi

[Harischandra Magazine, February 1874]

हंटर शिक्षा आयोग (1882 ई.) के समक्ष दिया गया भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का लिखित वक्तव्य

Statement by Babu Harischandra

Question 1.–Please state what opportunities you have had of forming an opinion on the subject of education in India, and in what province your experience has been gained?

Ans. 1.–I have always taken an interest in education. I am a Sanskrit, Hindi and Urdu poet and have composed many works in verse and prose. I started a Hindi journal, the *Kavivachan Sudha*, which still exists. My aim has always been to better the educational status of my countrymen, to improve the vernacular language of these provinces and to add to the stock of the vernacular literature. I have always taken pleasure in the enlightenment of my fellowcountrymen. I have established a school for elementary education in the city of Benares. I was a member of the Benares Eduactional Committee and have had considerable opportunity of comming into contact with those connected with the Educational Department and other men of learning. I have given prizes to students and scholars of Govt. Schools and colleges to encourage the advancement of learning.

I belong to the North-Western Provinces and my experience is confined to them.

Question 2.–Do you think that in your province the system of primary education has been placed on a sound basis and is capable of development up to the requirements of the community? Can you suggest any improvements in the system of administration or in the course of instruction?

Ans. 2.–As far as my knowledge and experience go, I am of opinion that the system of primary education has been placed

on a sound footing and is quite capable of development up to the requirements of the community with but a few slight amendments and improvements.

I consider the present system of managing schools by educational committee objectionable. The official members can hardly spare time to look after the schools which are situated far from them in the district. The Majority of non-official members attend the meetings, not because they have and love or even the smallest desire on their part for the education of their country but only because they consider it an honour to be a member of such local boards, and, because they would be entilled to a seat in the presence of the Collector. I have known many members of educational committees who hardly themselves know even the vernacular of the province and they are enrolled as members because they are classed among the gentry and some of them are such as cannot even claim that distinction. I seldom know a non-official member of the committee visit a district school or take a bonafide interest in the cause of education, purely with a view to benefit his country. All the knowledge that the committee have is at second hand, viz. through the officers of the Education Department. If the Government itself were to entreat them, to ask them, to induce them and even to compel them, the measure will fail to succeed. Who would like to travel to the end of his district to visit a school, to preach to the villagers the advantages of educating their children, to see whether a trifling sum, say Rs. 4, sanctioned by the committee for repairs have been actually spent and whether the teacher is punctual to his duty. Here and there a public-spirited man may come forward to devote his time, his purse and even his life, but that will be lost like a drop of rain in the ocean. I am of opinion that the education of the country, as has been the case since the institution of the department, must be conducted by a separate department , as other branches of the Government administration, Police, Revenue, Justice, Post, Telegraph, &c., are; and if any philauthrophist wishes to help the Education Department, let him be appointed Honorary Inspector or Joint Inspector of School and have an actual share in the management of the department, instead of a nominal membership of the Education Board.

The educational committee, as far as I have had a knowl-

edge of them, are practically useless. I know members who do not know what is the member of schools within their jurisdiction or what is the difference between a tahsili and a halkabaudi school.

It is true that the officers of the Education Department are not sufficiently respected by the ignorant public. It is not the fault of the department. It is owing to the quiet nature of the work which the department has to do, viz, supervision and examination of schools. *In India hukumat (authority) cammands* respect. An education officer cannot consign a man to custody, cannot fine him, cannot squeeze his purse. They are much like Missionaries, in pursuits of a good cause, unmindful of the scorn of the ignorant. Whereas the functions of the Revenue and Police Department inspire awe in the minds of people affecting as they do matters in which they have a nearer interest then they have in the education of their little ones. This very reason, I believe, has led the Honourable Sayyid Ahmed Khan Bahadur, to suggest in his evidence that extra Deputy Collectors be appointed to take charge of education. To remove this evil, the best remedy would be to make primary education compulsory in India as it is in England and other European countries, to make the language of the court the language used by the people, and to intorduce into the court papers the character which the majority of the public can read. The character in use in primary schools of these provinces is, with slight exceptions, entirely Hindi and the character used in the courts and offices is Persian and therefore the primary Hindi education which a rustic lad gains at his village has no value, reward or attraction attached to it. The son of a zamindar, after he has been for years mastering the curriculum of a village school, on going to court finds himself out of his element, he sees that all his labour has been wasted, he finds himself as ignorant as his forefathers were and cannot understand the hieroglyphics used in *amladam*. If the son of a poor man wished to secure a livelihood by his knowledge, he must knock at the door of the Education Department. The other departments will send him away as ignorant.

Question. 3.–In your province is primary instruction sought for by the people in general or by particular classes only? Do any classes specially hold aloof from it; and if so, why? Are any classes practically excluded from it; and if so, from what causes? What is the attitude of the influential classes towards the ex-

tension of elementary knowledge to every class of society?

Ans. 3.–Primary education is generally sought for by the people and the wish for it is not confined to particular classes only. The statement will be borne out by the returns of the Education Department, but I am sorry to learn that for the last three or four years the classification by castes has been dropped from the returns of that department. No class of people hold themselves particularly aloof from elementary instruction, with the exception of some very low and at the same time poor people for instance *domras* and *mehtars*, or to a certain extent, Mussalmans, who hate the system of education pursued in Government schools and are comparatively poorer and lazier than Hindus. To no class of people is the door of elementary education practically barred. The influential class of people, specially Hindus in habitting cities and large towns and even villages, highly desire that all people, high and low, should receive elementary education.

There are instance of big landholders of zamindars of the Kshatriya or Brahman caste not wishing to educate the sons of their rayat of the lower orders, with a view to profit by their ignorance. But such causes are very rare.

Question 4.–To what extent do indigenous schools exist in your province? How far are they a relic of an ancient village system? Can you describe the subject and character of the instruction given in them, the system of discipline in vogue? What fees are taken from the scholars? From what classes are the masters of such schools generally selected and what are their qualifications? Have any arrangements been made for training or providing masters in such schools? Under what circumstances do you consider the indigenous schools can be turned to good account as part of a system of national education and what is the best method to adopted for this purpose? Are the masters willing to accept State aid and to conform to the rules under which such aid is given? How far has the grant-in-aid system been extended to indigenous schools and can it be further extended?

Ans. 4.–Indigenous schools exist in abundance in these provinces. I cannot say what is their approximate number, but at any rate their number is proportionate larger than that of Government schools. (1) There are chatsals, which give education in the multiplication-table, mental arithmetic, the four ruler of

arithmetic, example and compound, proportion, interest, simple and compound, discount, profit and loss, writing of Nagari, Kaithi or Mahajani characters. (2) *Sanskrit* schools, which teach different subjects, arithmetic, astronomy, astrology, logic, philosophy, rhetoric, literature, grammar and law. All these subject are not taught in one or the same school, but separate school are kept for separate branches. (3) Theological or religious schools teaching the Vedas or their different sub divisions, Mimansa, Vedantha, &c. (4) School for teaching practical banking business and book-keeping. There are kept by *munibs* or accountants of banks kept by Natives. The schools of the Classes II to IV are exclusively attended by the Hindus and even *chatsals* are rarely attended by Mohammedans. (5) *Maktabs* or schools for teaching purely Persian literature and writing. This class of schools is kept by both Mussalmans and Hindus and generally Maulvis are employed as teachers. They teach Persian according to the old method. In the beginning, a few books are read by rote and the students are made to commit to memory verses from *Karima Mamukiman*, & c., only with a view to make them acquire a habit of correct pronunciation. When the student has mastered three or four books in this manner, he is made to translate from advanced books, but he is hardly able to grasp the sense of what he reads until he has been four or five years in the school. The schools are attended by both Mussalmans and Hindus. But with the growth of the English system, the *Maktabs* are gradually losing their popularity and those who have been educated at college or other Government schools, do not wish to bring up their children after the maktab method described above, as it takes a considerable time before the student is able to read and write Persian. A well-to-do person sometimes employs a maulvi on a small pay (from R2 to 10) and the children of the neighbours attend the maktabs on payment to the maulvi of a tuition fee varying from annas 2 to R2 according the circumstances of the parent. (6) Arabic schools which teach Arabic literature, grammar, logic and sometimes philosophy, medicine and theology. Such schools are kept by learned maulvis with a view to keep up their own knowledge and are mostly attended by Mussalman boys who have finishing their Persian studies at a maktab. The education given in these schools is purely gratis and fees are seldom or never charged. The teacher gains his livelihood by

other means. These schools are kept up with a view to strengthen the Mohammedan religion. (7) Kuran schools.–When a well-to-do Mohammedan builds a masjid (mosque), he generally employs a mulla to recite the Kuran and read prayers there. The mulla collects a number of boys and teaches them the Kuran. This is considered a sacred duty. The Kuran is read by rote without being translated or understood. Sometimes a boy is made to commit the whole of their holy book to memory and he them receives the title of Hafiz. When the boy finishes the Kuran, his parents make presents of money and cloth to the mulla.

There is not any great discipline in vogue in any class of the schools described above. In maktabs, of course, where teachers are paid, schools are kept between certain regular hours, and the master and boys are punctual in attendance. In all the other class of schools the teacher devotes certain hours to teaching. In all classes of indigenous schools no curriculum is fixed and each boy reads his own books and has his own lesson. Even the boys reading the same book have different lessons. The teacher will not retard the progress of a sharp boy in order to push on with him an indolent one. Each student goes to the tuitor for a short time to receive his lesson. Advanced students generally help those who are backward. The schools sadly lack the discipline in vogue in Government schools. With the exception of *chatsals* and *maktabs*, the instruction in all schools is given purely free, only with the hope of reward in the next world and no fees in any shape are charged. The masters have other means of livelihood or live entirely on charity. For instance an astrology-teacher will also teach his school, cast horoscopes, prepare almanacs and assist people in the performance of their religious rites , by which he will maintain himself. A pandit who lives in a village will do his agriculture and also teach his pupils. The disciples in return will do their preceptor's menial service which they are enjoined to do under the strict order of the law of their religion. A *guru* or teachers, is more respectable than parents. Not to obey his order will subject the offender to infernal miseries in the next world. In the schools of Class-I *viz., chatsals*— a very small fee is charged, which is taken weekly or fortnightly. It is in kind of money. The amount seldom exceeds one Anna per boy during the month. The teacher also receives some money or cloth present at certain festivals or when the boy is married

or finishes his study. The teacher or guru is always treated with great respect, even after the boy has left the school and commenced the world. The teachers of chatsals are generally Kayasths of very limited attainments. They seldom known much more than what they teach. The teachers of Sanskrit schools are learned scholars of acknowledged reputation. The maulvis or maktab masters are generally well qualified in Persian. The Arabic schools-teachers are generally maulvis well known for their learning. The Kuarn school masters are generally Hafizes or persons who have committed the whole of the sacred text to memory. The masters of the schools wherein banking and account-keeping is taught are generally accountants of the native banks.

No arrangement has ever been dreamt of to provide masters in such schools. This profession generally passes from father to son as by inheritance.

It must not be forgotten that the majority of the indigenous schools are in the cities and there are comparatively few schools in village.

I do not think such schools can be turned to any account as a part of the system of national education. The masters may be willing to accept Government aid, but I am afraid they rarely or never conform to the rules laid down.

The grant-in-aid system has not been extended to such schools and I am of opinion that to give them Government grants would be a waste of public money and Government interference would hardly benefit the public.

I quot extracts from letter No. 1295, dated 13th August 1771, from the Director of Public Instruction to the Government :

> "To begin at the bottom of the educational scale, His Honour is aware that Persian and Arabic are taught with more or less success in the indigenous or desi schools frequented by Mussalman children. In these schools the pupils, if they remain long enough, the taught to read and write fluently, if not correctly. The more advanced students read Persian books, more distinguished perhaps for their elegance of style then suitable, on the score of morality, for the young. Among these the generally beautiful, though sometimes objectionable, crotic poem of *Yusaf-o-Zulaikha* and the elaborate indency of the *Bahari-Danish* are the special favorites. Some learn to read the *Kuran*, but with the most

imperfect knowledge of the language of their sacred book. In these schools there is no mental training, nothing in fact which can be called education, regularity, order, method are all neglected; the children come and go when it suits their convenience; each receives his separate lesson; the eye learns to recognise and the hand to form, the Persian characters; words are then committed to memory; and this is nearly all the instruction that the teacher wishes to impart or the pupil to receive. The visits of Government officials are looked upon with jealousy and suspicion and advice, if offered, is rejected. As long as the parents who pay the teachers are satisfied, as they seem at present to be, with this state of things, little improvement in these schools can be expected it will come in time, but is can come only with the general increase of intelligence."

Question 5.–What opinion does your experience lead you to hold of the extent and value of home instruction?: How far is a boy educated at home able to competete on equal terms, at examinations qualifying for the public service, with boys educated at school?

Ans. 5.–I have a very low opinion of the value and usefulness of home instruction in India. In the first instance there are but very few people who educate their children exclusively at home and the instruction is not liberal in its character, not is it imparted on European principles. Sometimes a raja or mahajan, engages a tuitor to teach his son, but the instruction if often limited and confined generally, if not-exclusively, to the literature of one or two languages. Kayasths and Mussalmans, who have a love of bringing up their children on the old method of the Mussalmans, engage a Maulvi and the instruction imported is exclusively in the Persian literature and the most part of it is learnt by rote. The books also in certain cases are objectionable, as tending to deteriorate the character of scholars. Arithmetic, history and geography are unknown. The middle and well-to-do class of people often entertain the services of a tuitor to impart to their children elementary instruction in order to prepare them for admission into a public schools.

My own knowledge and experience tell me that a boy educated at home can never competent with those educated at a public school. The lists of the Calcutta University Examination

will bear testimony to this effect. The percentage of private students at such examination is, I think, very small. In this matter the institutions entirely under Government management take the lead; aided schools come next (thought for behind), followed by unaided institutions and the private students forming only an infinitesimal part of the total number of examines.

Question 6.–How far can the Government depend on private effort, aided or unaided, for the supply of elementary instruction in rural districts? Can you enumerate the private agencies which exist for promoting primary instruction?

Ans. 6.–The time has not yet arrived when the Government should depend on private exertions for the diffusion of elementary education in rural districts. The withdrawl of Government, even if it be in an indirect manner, would certainly be a death below to the cause of education. The Natives of this country have for a long-long period been under the despotic rule of Hindu rajas or Mussalman emperors and have acquired a habit of dependence and slavery which is engendered in their very nature and it will take a very long time before the benign rule of the English Government can inspire their nature with free thoughts of independence. In India, wherein it is but the dawn of civilisation, such a step would be too early and premature, especially when we see that in England and other European countries, which are far ahead of us in all that appertains to civilisation, elementary education is compulsory. If we turn to the returns of the Education Department we shall be able to see what progress has been made by this country in education by direct Government interference. People of this country, although they pay for primary education in the shape of local rates, care little whether a school situated and their village is opened or abolished. They pay the education cess because they consider it a tax imposed on them by Government and not with any regard to their own good. It is by direct Government interference alone that this country can prosper.

Aided institutions have failed and will fail to fulfil the object of Government of imparting a thorough elementary education to the masses. We daily see that the aided schools, whether they be managed by Natives or European Missionaries, cannot compete with Government schools of the same standing.

I do not know any private agencies which exist for promoting

primary education. If there are any, they must be the Missionaries.

Question 7.–How far, in your opinion, can funds assigned for primary education in rural districts be advantageously administered by District Committees or local boards? What are the proper limits of the control to be exercised by such bodies?

Ans. 7.–The local boards have been entrusted with the management of schools in these provinces since 1872, and their power have been gradually enlarged. They have now a complete control ever education and have the whole inspection staff made over to them. I think this an imprudent and premature step. The members of the Education Board are generally men who have little or no experience in educational matters, who cannot spare time to look to the education of their fellowcreatures. Even if they try to do so, their labour will be perhaps misdirected like an unskillful doctor trying his best to cure his patient, bestowing all his time and labour on him, but finally operating on him in a manner so as to cause his death, without any will or desire on his part to injure his patient's life. I do not mean to say that officials on the Education Board are in any way incompetent for this duty or all native members as a rule are so; but at lest the majority of the members are more puppets in the hands of the President. The President of the Education Board are, as a rule, Magistrates of officers of the same standing, overburdened with work, who even if they try their best, can hardly find time to look to education. There are some able Collectors (whom I could name) who take a hearty interest in the cause of education, but the salutary effect of their endeavours can be felt only in the district to which they are posted. I would only entrust to such bodies the supervision of funds and ask them to render any other aid the Education Department may require. But in no way should they entrusted with the management of schools, the appointment or punishment of teachers, selection of the course of study or the examination of schools; these functions should be entirely left in the hands of that Education department. Perhaps it may not be out of place to say that Government selects members from the gentlemen of the city without any regard to the literary qualification of the man selected or his experience in educational matters. I do not wish to cite particular instances.

Question 8.–What classes of schools should, in your opinion,

be entrusted to Municipal Committees for support and management? Assuming that the provision of elementary instruction in towns is to be a charge against Municipal funds, what security would you suggest against the possibility of Municipal Committees failing to make sufficient provision?

Ans. 8.–The Municipal Committees have had in their hands the management of the free or ragged schools which were established some years ago in cities and large towns for the education of the children of the lower classes. These schools they may retain, but I think it would be a mistake to make over to them any other schools for management. I do not see how the Municipal Committees can be bound to provide elementary education within their limits.

Question 9.–Have you any suggestions to make on the system in force for providing teachers in primary schools? What is the present social status of village school masters? Do they exert a beneficial influence among the villagers? Can you suggest measures, other than increase of pay, for improving their position?

Ans. 9.—I think the present system for providing teacher for primary schools is satisfactory and have to note only the following points : (1) The teachers receive only one year's training the Final Certificate Examination is held generally in the beginning of April, after which the school closes for about a month and a half and re-opens in the beginning of July, when new admissions are allowed. The new admission and formation of classes take almost the whole of July. The period of training, which extends over nine months, has one or two long holidays for instance, Dashahra and Christmas. I think this term very short and suggest that teachers should be retained in the school for two years.

(2) The Government calls upon the pupilteachers to enter into an agreement to serve it for three years in the capacity of teachers. I think this period should be extended a five or six years.

(3) Cases have been known in which certificated men, after leaving the Normal school, have taken to occupations other than teacherships and the educational authorities have overlooked such breach of contract with a view to avoid the troubles of a civil action. I think a stricted observance of this rule should be enjoined.

The social position of a teacher much depends on the personal character he bears and on his caste; generally the teachers,

who are Brahmans, Kshatriyas and Kayasths, command the respect of the people. But I think their position ought to be higher then it is at present. As a rule, patwaris, mukhtar &c., are held in better estimation by the ignorant public than our poor school-masters, though the latter may draw better pay.

The teachers always exercise beneficial influence among the villagers. If the Government change the court language of these provinces into Hindi, which is the vernacular taught in schools or if elementary education is made compulsory or if the order of the Government, No. 1494, dated 16th July, 1877, of these provinces, which ruled that none should be appointed who had not certain public examination to Government posts to which a salary of Rs. 10 or upwards was attached, is really carried into force, the status of our school-masters would be materially improved.

Question 10.–What subjects of instruction, if introduced into primary schools, would make them more acceptable to the community at large, one especially to the agricultural classes? Should any special means be adopted for making the instruction in such subject efficient?

Ans. 10.–Our Government has strongly ruled that the agricultural community of these provinces should receive instruction in the three R's, viz, reading, writing, arithmetic and the attention of the authorities of the Education Department has been always drawn to it. In the order of Government on the Education Report for 1875-76, paragraph 29, page 10, the Government says :

> "With your concluding remarks regarding the halkabandi schools Sir Goerge Couper desires to express his emphatic concurrence. What you say well deserves the attention of all officers connected with the Government. 'We wish,' you write, 'that every boy who attends these schools should learn to read intelligently, to write legibly and intelligibly and to keep simple accounts; and we wish to bring this minimum of knowledge with in the reach of every boy in the province.' It is impossible to sum up the educational policy of the Government more correctly or succinctly."

Again, the Government Order on the Education Report for 1879-80 says :

"It has always been held that the object Government had

in view was to give every boy who wished it a chance of acquiring a fairly sound knowledge of reading, writing and elementary arithmetic, as well as a slight acquaintance with history and geography. It was in order to teach up to this standard that village (halkabandi) schools were established."

Considerable, perhaps undue, efforts, have been made by the educational authorities to conform to these orders and the result has been the reduction of a vast number of middle class halkabandi schools to the primary standard.

I, think the following scheme of study may suit the village schools :

Multiplication table on the principles adopted by chatsal teachers, which is undoubtedly superior to the European system of teaching the same object. More attention should be given to mental arithmetic, which calls into action the powers of understanding. Arithmetic, first four rules, sample and compound, vulgar fractions proportion, simple interest, discount, profit and loss, partnership, percentage and book-keeping.

Writing–Penmanship, direction and easy composition.

Reading–Pieces from Ramayan, treatises on agriculture on the system pursued in India, lessons on morality (Rajniti), principles of rent and revenue system. Treatise giving information about details and contents of the patwari's papers. Map of the district.

Optional subjects–Mensuration, map-drawing and surveying; Encluding the history or geography of India.

The course, I think, will suit the wants or the agricultural community and the same with certain alteration be introduced into the city schools, particular regard being paid to literature.

To suggest the special means for making the instruction in such subjects efficient would be the work of time.

Question 11.–Is the vernacular recognised and taught in the schools of your province the dialect of the people and if not are the schools on that account less useful and popular?

Ans. 11.–It is rather difficult to answer the question, what is our vernacular language? In India it is a saying—may, an established fact–that language varies every 'yojana' (eight miles). In the North-Western Provinces alone there are several dialects.

The vernacular of this province, though it can be divided, owing to its various intricate and manifold forms, into a hundred subheads, has four main feature : (1) *Purbi*, as is spoken in Benares and its bordering districts; (2) *Kannauji*, the dialect spoken at Cawnpore and the adjoining district; (3) *Brajbhasha*; as spoken in Agra and its neighborhood; (4) *Kaiyan* or *Khariboli*, as spoken at Saharanpur, Meerut and neighboring districts.

In the city of Benares alone, if you have to ask any man how he is doing, you will use the following; different expressions :

> *"Apka sarir kusal hai? Kshem hai, swasth hai? Mizaji mubarak, mizaji mukaddas, mizaji sharif? Apka mizaj kaisa hai? Tohar jiu kaisan batai? Ka ho Kaisan baya? Kaisan heo," & c., & c.*

according as you are a pandit, a munshi, a citizen or a villager. When you observe such vast variety in one and the same common dialect used is one and the same place, what can you say of the language used throughout the entire province? The vernacular of this province, therefore, varies according to the caste, birthplace and attainments of the speaker. I would, therefore, call the vernacular of the province the dialect spoken by all classes of people in public places and on public occasions: for instance, at royal durbars, courts, public meetings, &c., &c., or the dialect in which books are written.

Thus, it will be seen that out of four features of the vernacular of this province, as noted, above, only two. viz., *Brajbhasha* and *Khariboli*, attract attention. *Brajbhasha* is used in Hindi poetical composition and Khariboli under two different disguises is spoken all over the province. The letter consequently, when spoken with abundant use of Persian words and written in Persian character, is styled *"Urdu"* and when free from such foreign mixture and written in Nagari character, is termed Hindi. Thus, we come to the conclusion that there is no real difference between Urdu and Hindi.

But in these days the two forms of our vernacular occupy the thoughts of the people and afford to them an attractive topic of discussion and a theme for long debates and harangues. The Muhammadans and their fellow-companions, such as the Kayastha of Benares and Allahabad, the Agarwalas and Khattris of the more western portion of the province, call this dialet Urdu and there are several reasons for their doing so. The Muhammadans for a long time were the ruling power in India

and consequently the dialect spoken by them was considered in these provinces as most respectable. Those who wished to be looked upon as fashionable or polite in public meetings or other assemblages spoke Urdu and many have recourse to the same practice up to the present day. Excellence in Urdu is imagined to be contained in the use of big and high sounding Persian words to such a degree of profusion as to leave only the verb of the sentence Hindi.

The respect that Urdu commands in the British rule is owing to its being the court language of the province. The Mussalmans not only have a sharp and oily tongue, but are also very forward and headstrong and this is the cause why they overpower other people. By the time the Hindus think to convene a meeting to address the Government and ask it to introduce Hindi, the Mussalmans will have protected the Government to contrary. If Urdu cease to be the court language, the Mussalmans will not easily secure the numerous officers of Government, such as peshkarships, sarishtadarships, muharrirships, &c., of which at present they have a short of monopoly. By the introduction of the Nagari character they would lose entirely the opportunity of plundering the word by reading one word for another and thereby misconstruing the real sense of the contents. The persian character, particularly *Shikast*, in which at present the court business is carried on, is an unfailing source of income to mukhtaras, pleaders and cheats. For example make a mark like सहर and suppose it to be the name of some village. If we take the first letter to be बे (b) it can be pronounced in eleven different ways : babar, bapar, batar, (with ते,) and batter (with से), basar, banar, bahar bayar, ber bair, bir, again, if we take the first letter to be either पे (p), सीन (s), टे (t), नून (n), हे (h), ये (y), it can be pronounced in 77 more different ways. If we change the vowel points of the first eight words given above, we will have 64 more words, for instance, bunar, hunar, sipar, &c., Again, it we will take the last letter to be जे (z) or आर (r) we will have 304 more words. If we suppose the last letter of the same word to be गे (d) we get 152 more new words. We thus see that in a word consisting of three letters, in which the last letter assumes only three different shapes, we have in all 606 different pronounciations. If we change the last letter of the same word into बे (b) we can

have a thousand new different pronunciations.[1]

May God save used from such letters !!!. What wonders cannot be performed through their medium? Black can be changed into white and white into black. Writing, which is at present a perpetual source of income in hangers-on of the court, will cease to fill their coffers if Hindi is introduced. Bombast and high-sounding Persian words which have never been heard of by landholders, cultivators and traders, are forced into composition purely with a view to yield a harvest to interpreters. If Hindi is introduced, who will pay 2 to 4 annas to learn the contents of a summons or 8 annas to 1 rupee for writing out a small portion? How can, then, a summons to give evidence be interpreted as a warrant of arrest? The use Persian letters in offices is not only an injustice to Hindus, but it is a cause of annoyance and inconvenience to the majority of the loyal subject of Her Imperial Maiesty. Because Urdu is the language of the court a few people are favourably impressed towards it.

In all civilised countries the language spoken by the people and the character written by them are also used in the courts. This is the only country where the court language is a language which is neither the mother-tongue of the ruler nor of the subject. If you send out two public notices one written in Urdu and the other in Hindi, the proportion of the people deciphering each can be easily known. But rayats and zamindars have been heartily gratified at the introduction of, Hindi letters in summonses issued by Collectors. The bankers and traders keep their account-books in Hindi. The private correspondence of the Hindus is carried on in the same letters. The Hindus speak Hindi in their families and their women use Hindi characters. The patwari keeps his village papers in Hindi and the majority of the village schools teach Hindi.

I am sorry to learn that the Honourable Sayyid Ahmad Khan, Bahadur, C.S.I., in his evidence before the Education Commission, says that Urdu is the language of the gentry and Hindi that of the vulgar. The statement is not only incorrect, but unjust to the Hindus. With the eception of a few, Kayasths, the remaining Hindus, e.g., Khshatriyas mahajans, zamindars—may, the revered Brahmans, who speak Hindi–are supposed to be vulgar. In spite

---

1. नोट–उर्दू में व्यवहृत लिपि की जगह देवनागरी लिपि का व्यवहार किया गया है।

of this though the Lala Sahib (Kayastha) will correspond with the Sayyid Sahib Bahadur in Urdu, Yet when writing to his wife he must use the Hindi Character.

In colleges there are 769 Hindus, 112 Mussalmans.

In Anglo—vernacular middle schools there are 6,740 Hindus, 1,522 Mussalmans.

In primary schools there are 170,478 Hindus, 32,619 Mussalmans.

In Normal schools there are 177 Hindus, 50 Mussalmans.

In the Benares District, of which place I am a resident, during the current year, there are 103 vernacular schools, of which only eight teach both Urdu and Hindi, the rest being pure Hindi schools. My statement will be further borne out by a glance at the census returns that the number of Hindi-knowing men is comparatively very much larger than those knowing Urdu. Nobody has either to directed his attention to an enquiry into this matter, or else the dispute would have been long ago decided in our favour. If you refer to the post office you will be able to the accuracy of the fact. I had occasion to make an enquiry of the kind in one of the post-offices and I was told that half the number of letters that passed through that office bore Hindi superscriptions. Similarly, most of the papers filed in the courts bear Hindi signatures. Almost all the notices of sale programmes of amusement or play, are published in Hindi. The accuracy of assertion can be proved by an enquiry for the purpose in any city of the North-Western Provinces, except Lucknow or some such other pure Mohammedan places. The Gospels which Missionaries distribute to the people are generally printed in Nagari or its allied characters, such as Marathi Gujarati, Bengali. Some any that swift writers of Hindi are not available. I can guarantee to procure a thousand such men in a month.

As I have mentioned above, the 2nd branch of *Khariboli.* is Hindi, which is also called is *Aryabhasa* or *Sadhubhasa*. Hindi made to appear hard and difficult by our Pandits on account of profuse use of Sanskrit words are far beyond the average understanding of the ignorant public. For example, 'mar sahkar wuh bhag gaya'; this is a pure Hindi sentence. The Maulavis would translate it 'wuh zad o kob bardasht kar apne makan ko farar ho gaya'. The Pandits would say 'wuh mar sahan kar swagriha ko palait ho gaya'. This interposition of foreign words

has spoiled true Hindi. Hindi by itself without much foreign aid can easily answer our purpose. Look at the language of the "Rani Ketaki ki Kahani" (Story of Queen Ketaki), complied by Insha Allah Khan. The constant war in which Maulvis and Pandits have engaged themselves has ruined the cause of true Hindi. Our vernacular is neither the language of the Maulvis nor that of the Pandits. It is something between; it is "the golden mean".

Our law terms which are intended to be understood by the masses give amazing examples of Maulvi's pedantry. Thus, for *indivisible*, Ghair mumkin ul taksim; *declaratory decree*, Hukm mush'ir isbat-i-istihkak; *barred by limitation*, kharij az miyad-i-sama'at; *one-fourth*, rub'a ; *declaration of right of occupancy*, Istikrar-i-hakk-i-mukabizat-i-kashtkarana. I do not see why such words should have a place in legal papers, school-books or daily conversation.

The copulative particular *az, al, zer, o*, by which several words are joined to make one compound and which often render the sense obscure, should be disused. I do mean to say that all Persian words should be banished from our vernacular. This is beyond our power. Who can dispense with the words matlab, 'adalat', 'hazar', 'jahaz', 'wazir', 'badshah', 'jama kharch', 'nekniyat', 'sahib?' Even Chand, the famous bard of Pirthiraj, has used such words in his early poems :

Auladi tas tan aike'.
'Mete *sad nishan* ke'.
'Ghan gherik kiya su *pan*j baran'.

Suradasa, a later Hindi poet, has also used a good Persian words, e.g. :

'Haun *ghulam* prabhu swami'.
Jaise *ure jahaz* ko pachchhi.
Madho *iti araj* suni lijai.

Even Sanskrit authors have sometimes employed Persian words; Lolimbaraja, in his work on medicine, writes "Rachayati charakadina vikshya vidyavatansha kavikulasultanolal Lolimbarajah." The famous Pandita Raja Jagannatha says, "Agaramagatah Shah Jallaludi." In the Rajatrangini we meet with many Sanskritised words; for instance, *dinar, shah*. In works on

astrology we find *Hanpha, Sunpha, Itthisal*. To insist on expelling all Persian words from Hindi composition is a mistake. We neither wish to have Hindi of this sort : *"Nabhomandal ghanghata-chchhan hone laga vividha wat wahulya se itastatah kujhijhatika nipat dwara rasatal tamomay ho gaya,"* nor Urdu of this style : *"chyunki da'wa-i-muddai bi-l-kull balid az' akl-o-guzashta-o-hadd-i-sama'at o a/Khihf az Kennu-i-murawwija-mulk-i-mahru-sa-i-sarkar hai."* We want the pure simple vernacular; understood by the public and written in the character familiar to the majority. In books of science, of course, we are compelled to use technicalities for which we cannot find equivalents in the vernacular; but in conservation, in books for family instruction, for children's school-book, in court papers, in newspapers and public lectures, we want that easy colloquial language which can truly and correctly be called our mother-tongue.

Question 12.–Is the system of payment by results suitable, in your opinion, for the promotion of education amongst a poor and ignorant people?

Ans. 12.–The system of payment by results may be suitable in the case of aided schools, which, as a rule, at present receive much aid and do little work. The fact will be borne out by the results of the University and the departmental examinations and the examinations of Inspectors of Schools. In Government schools, which are already placed on a secure footing, the introduction of the system would prove injurious.

Question 13.–Have you any suggestion to make regarding the taking of fees in primary schools?

Ans. 13.–In India the people have not been in the habit of paying any fees for education since time immemorial. Up to the present day, in indigenous Sanskrit schools, whether primary, middle or high education is given entirely gratis. The teachers are strictly forbidden by religion to charge anything for imparting instruction. Even Maulvis who keep Arabic schools do not charge for tuition.

Our philosophers and sages never paid any fees to get their vast attainments. I cannot see why the agricultural community should be called on to pay any fees for primary education when they already pay a cess for the purpose. To charge even a small fee in such schools would be injurious to the progress of education.

Very short time ago, when Mr. Kempson was the Director

of Public Instruction of these provinces, it was proposed to charge the children of the non-agricultural community half anna per month per boy. The system was allowed a trial for a while, but, having failed, it was finally abandoned.

(Question No. 14 and 15 are missing)

Question 16.–Do you know of any case in which Government institutions of the higher order might be closed or transferred to private bodies, with or without aid, without injury to education or to any interests which it is the duty of Government to protect?

Ans. 16.–The people of India have always been under the monarchical form a Government and it is their idolatrous tendency that they always like to have some visible object of worship round which they can gather and to which they can pay homage. They must have a king, a ruler, a master whose orders they would always obey without questioning his authority. Leave them to themselves and they are out of their element. In our language we have no such word as "public," we translate it as "Sarkar," which signifies "head of the work." We have no equivalents for "nationality" or "patriotism."? To expect us to provide even primary education, to say nothing of high education, to our progeny, is a mistake. Hitherto, at least as I think, India has made but little progress in civilisation and is not yet prepared to take upon herself the responsible duty of providing education for her children. We daily see from the results of the University examinations and departmental tests that boys educated at Government schools always stand ahead. The number of those educated in private institutions is comparatively very small. The quality of instruction given in such schools, whether managed by Missionaries or Natives, is undoubtedly much inferior to that given in Government schools. To entrust to the people of this country and especially in these provinces, the task of the diffusion of education, would be premature measure sure to end in evil results. It is my honest conviction that such a step would ruin the cause of education. The blessed rate of English Government and a salubrious system of education administered by it, will in course of time cast the children of India in a mould of civilisation, freedom and self-help. At present they are too young and must depend for their nourishment upon their parent–The British Government. Some of India's truant children may wish to throw

off the yoke of the mild parental sway too early, but when they acquire sufficient maturity of understanding they will have reason to regret their folly.

Question 17.–In the province with which you are acquainted, are any gentlemen able and ready to come forward and aid, even more extensively than heretofore, in the establishment of schools and colleges upon the grant-in-aid system?

Ans. 17.–In the first place there are no Native gentlemen or private bodies willing to come forward and help in the establishment of colleges on the grant-in-aid principles.

The litigation of this country is too well known. There is no such thing as union in this country. Members of the same family cannot decide their own family disputes without going into court. I cannot for a moment think that it can be possible for Natives to combine together in a body to partake in the administration of the country.

Question 18.–If the Government or any local authority having control of public money, where to announce its determination to withdraw, after a given term of years, from the maintenance of any higher educational institution, what measures would be best adapted to stimulate private effort in the interim, so as to secure the maintenance of such institution on a private footing?

Ans. 18.–The Natives of this country, at least of these provinces, have been under a strict impression for the last eight or nine years, that the government wishes to shut up the doors of education against them; that it thinks the Education Department the most super-fluous of all the department of the state; that this is the only department which shows all expenditure and no income. That Indian youths aspire to Government posts, and upon failure turn round and abuse the very Government that educated them. I quote the following from G.O. No. 391 A, dated 28th Nov. 1877.

> Expenditure on educational objects in these provinces had been largely increased of late years, resulting in a severe...annual strain on the revenues of the Local-Government. When, therefore, pressing financial necessities, arising from a variety of causes, compelled the Government to retrench in all departments, it was absolutely necessary to abandon or curtail some of

the most costly and least successful educational experiments that had been undertaken, and generally to cut down expenditure to the lowest point consistent with efficiency. The Lieutenant-Governor is satisfied that the unpleasant policy of retrenchment has been carried out judiciously. One college, with a small attendance and a large staff, was reduced; but there remain the large and flourishing central college at Allahabad and the sister institutions at Benares and Agra, amply sufficient for the needs of the province. On the aided Anglo-vernacular schools much public money was thrown away, the results being most disappointing, and the *raison d'etre* of the schools being in many cases non-existent : here retrenchment naturally and justify followed. So, too, in regard to female schools, where the policy of the Government is rather to foster and supplement local private effort than to organise a system of State schools for which, in the present state of native society, no adequate demand exists."

This impression of the public has been gradually ripened into firm conviction by the wholesaler eduction made in the education Department during the last ten years. More than one hundred Anglo-vernacular schools which had been established by private exertions in principal towns for the diffusion of elementary education in English, and which depended for their existence partly on local subscriptions and fees and partly on the Government grant-in-aid, were closed in a day and several thousand boys lost the boon. A similar misfortune be feel the girls schools. More than 200 of them were shut up at once and four thousand girls were left without any means of instruction. Of two Sub-Deputy Inspectors in each district only one remains now. The offices of Assistant. Inspector and Inspectresses of girl's schools were abolished. Although the number of Inspectors was raised from 4 to 7, their pay was considerably reduced. The case was similar with the Normal schools; their number was increased, their status and expenditure considerably disminished. The Bareilly College was closed. The status of the school department of the Benares College was considerably lowered. The Anglo-Sanskrit department was shut up. The amounts for scholarships

and prizes were cut down.

Any further step on the part of the Government likely to interfere with the cause of high education will be received by the people with the utmost dissatisfaction and would crush their very minds. We first ask the Commission to give us high may, higher-education for atleast half a century more, till we attain some understanding and be able to judge for ourselves, and then put us this question. We may then perhaps be able to suggest measure to stimulate private effort to secure the maintenance of high education institutions on a private footing.

If we are required to answer this question today, we say that we will adopt the same measures which we adopted after the abolition of the Bareilly College or after the demolition of the temple of Viswanath by Aurangzeb or that of Somnath by Mahmud Ghaznawi.

(Question No. 19 and 20 are missing)

Question 21.–What classes principally avail themselves of Government or aided schools and colleges for the education of their children? How far is the complaint well founded that the wealthy classes do not pay enough for such education? What is the rate of fees payable for higher education in your province and do you consider it adequate.

Ans. 21.–People of all castes (with the exception of a few very low castes) avail themselves of Government colleges and aided schools. Mussalmans avail themselves but little of such institutions. They are averse to learning English and even to learning oriental or vernacular language in Government schools. Their religious prejudices are too well known to be described and the reason for their not attending Government schools is not far to seek.

I do not very well see how the complaint that the wealthy classes do not pay enough for education can have any foundation. If we turn to the history of all colleges and high schools in these provinces, we will be able to see how liberally the rich men of this country have contributed towards education. Some will go so far as to say that what they subscribed was only to please some high Anglo-Indian official; but this will go only to prove the slavish disposition of the people and to show that great things can be easily accomplished by a little Government interference.

The following details may perhaps show that munificent

contributions have been made and are being made by the people of this country :

Agra College

The Agra College was in 1823 endowed by Pandit Gangadhur with the interest of a lakh and-a-half of rupees and the revenues of certain villages in the Agra, Aligarh and Muttra districts Besides this it has the following endowments :

Rs. 12,500, Maneel, Robertson and teachers, for scholarships.

Rs. 2,500, Thomason medal.

Rs. 5,000, called Colvin Memorial, for small scholarships.

In addition to the above, the college receives a yearly grant of scholarship money from the Gwalior and Bharatpur Durbars.

Benares College

The College building, which cost about a lakh and thirty thousand rupees, was erected chiefly from the subscriptions raised from the people. The inscription on the outer walls of the college describes the names of the persons from whose donations different portions of the college were built. His Highness the Maharaja of Benares contributes largely towards the expenses of the Sanskrit College.

The following is a list of minor endowments–

Rs. 13,000 by Maharaja............Ghoshal for scholarships.

Rs. 13,000 by Vainkatacharya for the library.

Rs. 5000 called Tucker scholarships.

Rs. 500 by Radha Bibi for a prize.

Rs. 7000 by Maharaja of Vizianagram for scholarships.

Rs. 5000 by Maharaja of Rewah for scholarships. Besides the Vizianagram and Tucker medals.

Muir College Allahabad

For the creation of this college the leading Native gentlemen and Chiefs in the province and the adjoining independent States subscribed 1.50 lakhs of rupees towards the building and Rs. 62,000 for the provision of scholarships.

Now we come to schools–

Moradabad zilla school chiefly depended on endowment of Rs 72,000, yielding an annual income of Rs. 3,600 besides Rs.

250 realised as rent of certain shops bequeathed to the institution; besides Misra Tanna Singh's property yielding an annual income of Rs. 250.

Mirzapur zilla school when first founded, was wholly supported by subscriptions which were collected to the amount of Rs. 48, 261. The Oriental department of this school is entirely supported by an endowment fund.

The building of the **Banda Zilla school** was erected from subscriptions raised by Mr. Mayne and a missionary.

The mere, representation of the Hon'ble Raja Siva Prasad, C.S.I. who was then the Join Inspector, D.P.I., and had been ordered by Government to institute schools, came forward and agreed to pay one-third percent, more on the land revenue to Government Treasury on behalf of education. This sum, supplemented by a similar grant from Government, formed the nucleus of the village schools of this circle. The government, in their order on the Education Report for 1878-79, say; "I am to express regret at the retirement of Raja Siva Prasad, C.S.I., who had been connected with the department since its institution and had done excellent service, especially in instituting village schools in the Benares Division.

When the Local Rates Act came into force in 1872, the school fund was merged in it. In the face of all that has been mentioned above, I would only ask the Commission to decide whether the people of the province can be blamed for not paying sufficiently for education.

The grants already assigned by the people have been, in my opinion, wrongly spent. We do not want splendid stupendous Gothic palaces for our boys to sit in to be educated. Our philosophers, who were the source of civilisation and from whom western nations borrowed the fine arts and all that appertains to civilisation, were not educated in palaces. But in hamlets and under the shade of trees.

Had the above sum been only used in instituting professorships the Government of India would not have bad the opportunity of inviting this Commission and saying that the expenditure on high education is unduly enormous.

The present rates of tuition fees are Rs. 3 in the Arts class, Rs. 5 in the B. A. class and Rs. 1-8 in the Entrance.

The rates appear adequate; but, as the Government seem

anxious to raise the amount the minimum fees may be at the following scale, as it was for some time in the Benares College :

Entrance	...	...	...	...	... 3
Arts	...	...	...	...	... 5
B.A.	...	...	...	...	... 5

Question 22.–Can you adduce any instance of a proprietary school or college supported entirely by fees?

Ans. 22.–No; I do not know of any such instance.

Question 23.–Is it, in your opinion, possible for a non-Government institution of the higher order to become influential and stable when in direct competition with a similar Government institution? If so, under what conditions do you consider that it might become so?

Ans. 23.–I do not think it is at all possible. Whatever encouragement the Government might give to non-Government institutions, it is my honest conviction it will totally fail to compete with a similar Government institution, unless the Government itself to take the management of it into its own hand.

Question 24.–Is the cause of higher education in your province injured by any unhealthy competition; and if so, what remedy, if any, would you apply?

Ans. 24.–No; there is on such competition to which the word "unhealthy can be applied in any sense. The Missionaries and proprietors of aided schools who are in receipt of large grants from Government and whose schools cannot compete with similar Government institutions at public examinations, blame the University course, consider it too high, find fault with it and say that Government does not give useful instruction.

Question 25.–Do educated Natives in your province readily find remunerative employment? Regard as the causes of this state of things, and what remedies would you suggest?

Ans. 25.–I cannot but express my deep regret to answer this question in the negative. The Government has hitherto turned a deaf ear to our prayers in this matter. After repeated representations of the complaint by the Education Department in the year 1877, the Local Government passed an order ruling that no Government appointment to which a salary of Rs. 10 or upwards was attached should be given to a person who had not passed a certain public examination. The rule was heartily

welcomed by the educated, who thought the golden age had again returned, and that none but the really deserving would have the monopoly of Government posts. Alas! to their mortification and surprise, the Government order was consigned to the waste-basket by Anglo-Indian officials. It is no more than a dead-letter now. If a report be called for from all the department of Government administration, as to how far effect has been given to this order of Government, my statement will be borne out.

A large majority of the Anglo-Indian officials have a deep rooted and under-graduates, and systematically shut to them the doors of responsible Government posts. They prefer employing men of the old school, who are neither well educated nor possess any high moral sense, but are ready to bear patiently the abusive language and offensive manners of their superiors. On the contrary, the Anglo-Indian functionaries hate the University educated men, who seldom refrain from criticising the conduct of the authorities when they pass the bounds of propriety or give way to their whims. The amlas try their utmost not to let University men pollute the atmosphere of their jurisdiction or trespass on the limits of the cutcherry, into which they think that they themselves and their belongings only have a right to enter. The officials always accept the nominations of their serishtadars and head-clerks. The claims of the educated are persistently ignored : they are deliberately kept down, and all the avenues to distinction are shut to them. The Government of these provinces has done but little to help such men, and this is the reason that such men go round from door to door of all the departments begging for employment. If the Commission were to take up the list of Sub-Judges, Munsifs, Deputy Collectors, tahsildars, peshkars, munsarims, serishtadars, head-clerks, and subordinate amla, it will readily find whether what I have stated is a fact. The only department wherein such people can find employment is the Education Department.

Question 26.–In the instruction imparted in secondary schools calculated to store the minds of those who do not pursue their studies further with useful and practical information.

Ans. 26.–I do not think that the instruciton imparted in secondary schools is sufficient to store the minds of those who do not pursue their studies further with useful and practical information. For this purpose the standard should be revised and

raised a little.

Question 27.–Do you think there is any truth in the statement that the attention of teachers and pupils is unduly directed to the Eutrance Examination of the University? If so, are you of opinion that this circumstance impairs the practical value of the education in secondary schools for the requirements of ordinary life?

Ans. 27.–It is a deliberate falsehood, framed by the enemies of education, who, under the cloak of friendship, wish to deal a deadly blow to its cause. From the education returns of 1880-81 we see that 270 students passed the Entrance Examination, 522 the Middle Class Examination, 7, 567 the Upper Primary Examinations, and 16,434 the Lower Primary Examinations.

Question 28.–Do you think that the number of pupils in secondary schools who present themselves for the University Entrance Examination is unduly large when compared with the requirements of the country? If you think so, what do you regard as the causes of this state of things, and what remedies would you suggest ?

Ans. 28.–No; this is not the reality. The number appears to you too much because the under-graduates cannot find employment and go on petitioning from one department to another. If the Government were to employ none but the educated, such a complaint will seldom be heard; on the contrary, they will with difficulty find sufficient number of men to fill up all their offices.

Further answer to this questions will be the same as the answer to Questions 25.

Question 29.–What system prevails in your province with reference to scholarship; and have you any remarks to make on the subject? It the scholarship system impartially administered as between Government and aided schools?

Ans. 29.–I cannot sympathies with who consider scholarships as a waste of public money or a bribe to receive education. Instances have occurred in which students have attained with only this means of livelihood, University distinctions originally beyond their hope. The amount for scholarship in these provinces has been lowered and lowered. The number of scholarships now is small, and of course it is open to competition to boys of Government, as wall as aided schools. I enclose a scholarship Schedule of these provinces.

I–Governemnt Scholarships, Forth-Western Provinces and Oudh, under sanction of G.O. No. 365 A., dated the Ist November, 1887

Kind and Value General	Manner of award	Time for whcih tenable	Conditions	Number	Cost Rs.
I. M.A. at Rs. 20	Precedence in B.A. Examination Calcutta University.	1 year	Tenable at the Central college.		1,200
II. B.A. at Rs. 12 for first year; Rs. 15 for second year.	Precedence in first Division F.A. Examination, Calcutta University.	2 year	Tenable at any college, Government or aided, in the province, on condition that the holder studies with diligence for the B.A. examination.	24*	3,888
III. F. A. at Rs. 8 for first year; Rs. 15 for second year.	Precedence in First Division, Entrance Examination, Calcutta University, a classical second language being taken up.	Ditto	Tenable at any College, Government or aided, in the province, on condition that the holder studies with diligence for the F.A. Examination	48*	4,464

IV. E.E. at Rs. 4 for Ist year, Rs. 10 for 2nd year.	Precedence in the middle Class, Anglo-vernacular Examination.	Ditto	Tanable at any high school, Government or aided, in the province, on condition that the holder studies with diligence for matriculation at a University.	*80	4.320
V. Vernacular at Rs. 3	Precedence in the middle Class, Vernacular Examination.	Ditto	Tenable at any zilla school or Normal school, Government or aided, in the provinces or at the Roorkee Civil Engineering College or at the Agra Medical school.	*80	2,880
Special.					
Sanskrit at Rs. 2 to 10.	By nomination of Principal, Benares College, after examination.	1 year	Tanable in the Benares College, Sanskrit Department.	*40	1,200
Civil Engineering at Rs. 5	By nomination of director, the result of the Entrance Examination, lower subordinate department, Roorkee Civil Engineering College.		Tenable at the Roorkee College, on condition of satisfaction to the Principal.	*10	600
			TOTAL	287	18,552

***Half only assignable each year.**

Allahabed	I	True copy
The 21st December 1877.	I	G. Thibaut.

inspar, Benares Divn. Dept. P.I., N.W.P.

M. KEMPSON, M.A.
Director of P.I., N.W.P. and Oudh.

Question 31.–Does the University curriculum afford a sufficient training for teachers in secondary schools, or are special Normal school needed for the purpose?

Ans. 31.–I think the University curriculum is sufficient to afford training for teachers of secondary schools and I do not think any special Normal schools are needed. Only a slight amendment seems necessary. The graduates and undergraduates of the University, employed as teachers, should be required pass a technical examination in the principles of teaching within a certain time, say, year of their appointment and until then they should hold their posts provisionally.

Question 32.–What is the system of school in spection pursued in your province? In what respect is it capable of improvement?

Ans. 32.–The establishment entertained for Inspectors of Schools consists of one Inspector, and each Revenue Division; one Deputy Inspector and one Sub-Deputy Inspector for each district. There are one or two districts in this province in which there is no Sub-Deputy Inspector. The Deputy Inspector and Sub-Deputy Inspectors have to travel for school inspection throughout the year in all the months. A Deputy Inspector, as a rule, is required to visit all the schools of the district twice a year and the Sub-Deputy Inspector perhaps three times, except under certain circumstances, where the nature or climate of the district does not allow rapid movement. The Inspectors travel in the cold season, generally commencing their tour by the end of October and finishing it by the middle of March. They visit all the tahsil and pargana schools–in other words, middle class school in situ and for the examination of primary village schools they halt at central spots in a district where the Deputy Inspector collects the upper class boys of the neighboring schools. The Inspector in this manner is enabled to visit all the middle class schools

and the majority of the lower class. The supervising staff noted above, as it exists at present, is, in my opinion, quite insufficient for the work of inspection–I do not say examination or management. It is next to impossible for a Deputy Inspector and his assistant to have a strict watch over their subordinates, to see whether the teachers who are far from them scattered in the district punctually and regularly open the school and devote certain fixed hours in honesty performing their duty. A village school-master who is not well paid, whose school is often far away from the central station of the district, having no one over himself to watch, is naturally tempted to be lazy. I hardly know a district where primary school teachers are not often punished for unauthorised absence from their duty. There were formerly two Sub-Deputy Inspectors in each district. A short time ago, when a wholesale retrenchment in the Educational Department of these provinces was going on, the number of Sub-Deputy Inspectors was reduced to one for each district. I think the village schools must be visited at least once every month. The visits must be all of a sudden, unexpected and not on any fixed dates. In order to attain this end I think there must be at least four Sub-Deputy Inspectors in each district. They must chiefly confine their attention to test the regularity of the teachers, to see whether they are punctual and attentive to their duty and to see what progress has been made by the boys during the last month. They need not spend so much time in examination as they are required to do now. The question may naturally arise–cannot we turn to any use the members of the District Educational Committees? I can safely answer in the negative. I have seldom known any member visit a village school, much less try to find out the teacher's unauthorised absence. Ask the presidents of the committees to furnish a list of the district school-masters found absent from their schools by any official or non-official members of the committee, with the exception of those reported so by the officer of the Education Department. If any member expresses his desire to help the Department in the work of inspection, let him be called Honorary Deputy Inspector or Inspector and let him take an actual share in the management and visitation of schools.

The Deputy Inspector's chief work should be the management of schools, the searching through examination and

careful testing of the work of his subordinates, the Sub-Deputy Inspector and teachers. If I mistake not, under the departmental rules of these province a Deputy Inspector is required to visit two primary schools or one middle class school every day. This I consider a mistake. The utmost work that we could exact from him is seven hours a day. This time, of course, includes the time spent by him in travelling, examination of schools and office work. When he is required to inspect two schools a day he is naturally let to curtail the examination; the distance between schools and the office duties of course he cannot shorten.

I am averse to the present system of examination conducted by the Inspectors, who collect boys of several schools, in most cases of the upper classes only to a central spot. This examination is neither through nor searching and the Inspectors, as a rule, have to depend on the reports of their subordinates–the Deputy and Sub-Deputy Inspectors. I think that the examination of all the schools by the Inspector must be in situ, i.e. they must go from school to school. They would then have an opportunity of really testing the work of their subordinates and have an insight into the work done. The questions may then arise–How is it possible for an Inspector who has six or seven districts under him, to go from school to school? Let him not visit all the schools of the division. He should see a few schools selected at random in each district. Severe punishment than hitherto should be given to the teachers for absenting themselves from their places without leave of absence and for making false entires in school registers.

Question 33.–Can you suggest any method of securing efficient voluntary agency in the work of inspection and examination?

Ans. 33.–I am sorry to say I cannot suggest any such measure. The members of the educational committees have signally failed to take up this duty. If there are any men willing to undertake the work, let them accept honourary posts in education and let them have a real share in the work.

Question 34.–How far do you consider the text-books in use in all schools suitable?

Ans. 34.–For the text-books, let a separate committee be formed, and let them consider the suitability of text-books. If

I were to offer criticisms on text-books, my answer would be indefinitely prolonged.

Question 35.–Are the present arrangements of the Education Department in regard to examinations or text-books or in any other way, such as unnecessarily interfere with the free development of private institutions? Do they otherwise tend to check the development of natural character and ability or to interfere with the production of a useful vernacular literature?

Ans. 35.–I do not at all think that the present arrangements of the Education Department in regard to examinations or text-books, &c., do in any way interfere with the free development of private institutions. On the other hand, they serve as very good models to them. The system may be of course injurious to those who do not receive a through or deep education.

Question 36.–In a complete scheme of educations for India, what part can, in your opinion, be most effectively taken by the State and by other agencies?

Ans. 36.–The management and supervision of schools should rest entirely in the hands of the Government. The public should be left to watch, review and criticise what is done by Government officials and suggest means of improvement.

Question 37.–What effect do you think that the withdrawal of Government to a large extent from the direct management of schools or colleges would have upon the spread of education and the growth of a spirit of reliance upon local exertion and combination for local purposes?

Ans. 37.–Nothing in India has ever been done by the public. I have already said that there is no such word as "public" in our language. The withdrawal of Government interference would deal a death-blow to the cause of education. I have already stated above that when the Bareilly College was abolished, that when more than a hundred middle class vernacular schools and as many girls schools were closed, what steps were taken by natives of this country with regard to maintaining those institutions. No growth of spirit of reliance upon local exertions and combination for local purposes can be expected at present in India. It will be a blunder to expect Natives to take any steps in this direction.

Question 38.–In the event of the Government withdrawing to a large extent from the direct management of schools or colleges, do you apprehend that the standard of instruction in any class

of institution would deteriorate? If you think so, what measures would you suggest in order to prevent this result?

Ans. 38.–Should the Government withdraw from the direct management of schools, the education of the country would certainly suffer and the standard of instruction in all classes, especially high institutions, would surely deteriorate. We should be able to suggest some measure to prevent this, if we could by any means have inspired into us the same feelings of "nationality" which the Europeans possess.

Question 39.–Does definite instruction in duty and the principles of moral conduct occupy any place in the course of Government colleges and schools? Have you any suggestion to make on this subject?

Ans. 39.–No instruction in duty and principles of moral conduct occupy any place in Government colleges or schools. It is a want extremely felt and such study ought certainly to have a place in the school and college curriculum. Books may be selected hereafter, but in no way should they be such as to interfere with the religious views of any sect of people.

Question 40.–Are any steps taken for promoting the physical well-being of students in the schools or colleges in your province? Have you any suggestions to make on the subjects?

Ans. 40.–Little is done in colleges or schools to promote the physical well-being of the students. More attention is needed. It would be the work of those who understand gymnastics to suggest what particular kind of exercise will be useful to reading students to keep them in good health, with their digestion and brains in good working order.

Question 41.–Is there indigenous instructions for girls in the province with which you are acquainted; and if so its character?

Ans. 41.–There are very few public schools for indigenous instruction of girls. I know one or two of the kind. There is a large school of this class at Benares supported by His Highness the Maharaja of Vizianagram, attended by about 500 girls under the supervision of European ladies. But it must be remembered that almost all the girls are paid for attendance and the majority of them come from the low classes.

The books in use are to a great extent those taught in boys

schools belonging to Government and the standard reached is that of the upper primary examination of Government.

These books are objectionable on several points. I fully agree with Miss Rose Greenfield that the *Prem Sagar* must not be put into the hands of "big girls."

The *Vidhyankura* and *Itihasa Timirnasik* can in no way improve their moral character. Better books containing lessons in morality, house management, &c., should be introduced.

There is little inclination on the part of the natives of this country to send their girls to public schools; they are generally opposed to such a scheme. But we have something like "home" education. Respectable people do not wish to send their girls, of whatever age they be, to a public school, whether under the management of Government of private individuals; and therefore they generally employ a tuitor of their own to educate their girls. The home education is often of a religious character and has little to do with Western enlightenment. Religious books containing lessons on principles of morality and house-hold duty are generally read. The Mohammedans teach the Kuran to their girls.

Question 42.–What progress has been made by the department in instituting schools for girls; and what is the character of the instruction imparted in them? What improvements can you suggest?

Ans. 42.–I cannot but express my deep regret when I say that the attitude of the authorities for the last eight or nine years has been anything but favourable towards this section of popular education. It is true the natives of this country do not wish to educate their females at public schools, but it is the duty of our Government to remove this ignorance from their minds. It cannot be denied that the majority of the schools that were closed by Government had only a nominal existence; yet if they were attended by only a few pupils, they would have accomplished the purpose of stimulating and inducing the public to follow the example. Since the termination of the government of Sir W. Muir there has been a retrogate motion in this direction. I have already noted that by one fiat of Government about 200 girl's schools were closed, the office of Inspectors of Schools was abolished and the remaining schools were made over to the district

committees for management. I cannot but express my regret that the Committee hardly know in what part of the district these schools are, to say nothing of what is being done in them. They are generally left to Deputy Inspectors for supervision, who, in my opinion, can hardly manage them satisfactorily. Their visits, as far as I think, are scarcely calculated to be beneficial. The services of a European Inspectress, not belonging to a Missionary Society, is urgently needed. The standard of instruction reached by Government schools is the lower primary, that of the boy's schools.

The Government, I suppose, grant comparatively a large sum of money to Missionaries for the diffusion of female education. But they devote the amount in a great measure to the education of Christian girls, their aim being chiefly to give religious instruction.

Question 43.–Have you any remarks to make on the subject of mixed schools?

Ans. 43.–I cannot approve of the plan of having mixed schools in this country. The Indians have an invincible prejudice to their girls being simultaneously brought up with boys in the same school. Such a measure is contrary to their feeling of propriety and the rejudices of the "parda" system. Besides, girls in the warm climate of India attain the age of puberty earlier than in cold European countries and therefore the mothers are absolutely opposed to the plan that their girls should mix with boys, of whatever age the former may be. The apathy of the people in the matter of female education is insurmountable and it will be more so should mixed schools be established.

(Question No 44 and 45 are missing)

Question 46.–I the promotion of female education, what share has already been taken by European ladies; and how far would it be possible to increase the interest which ladies might take in this cause?

Ans. 46.–European ladies of the Civil, Military or Educations Departments have shown little interest in female education. Should these ladies do so, the cause of female education in India might prosper and good results might be achieved. The Mission ladies have evinced some interest, but their visits to the zenana have been seldom reckoned as beneficial. They are naturally inclined to inculcate religious principles and free thoughts which,

instead of creating in the minds of native women a desire for education, generally make them averse to it. They are led to consider that the sole aim of such ladies is to convert them and therefore they scrupulously avoid mixing with the supposed enemies of their religion.

(Question No. 47 is missing)

Question 48.–Is any part of the expenditure incurred by the Government on high education in your province unnecessary?

Ans. 48.–I do not consider any expenditure incurred by Government in these provinces on high education is the least unnecessary, except the large pay of the principals and in some cases even that of professors. I think more retrenchment has been made in these provinces in high education than in any other province. The Bareilly College was abolished, the fate of the Agra College trembles in the balance, the M. A. class of the Benares College has been closed. On the other hand, I consider the expenditure in this respect insufficient. We have no able professors of every branch of study in our colleges.

England is not larger in area than the North-Western Provinces and I think it has more colleges than there are in more than half of or even the whole of India. We cannot very well see why the government should grudge us two or three colleges in each province. I am of opinion that a smattering of knowledge afford to many will do less good to the nation than a sound and deep knowledge imparted to a few, as a popular proverb goes :

"A little knowledge is a dangerous thing;
Drink deep or taste not the Pierian spring."

To quote the words of the Government of these Provinces (Vide Government Education Report for 1811, page 17, para 16) :

"It remains briefly to notice the leading characteristics of the present educational status of the provinces, as brought out in your report for the year. It is clear so far as University education is concerned and more especially English University education, there is nothing to be desired, either as regards the character of the institutions at which it is given or the Personnel of the tuitional staff, which is quite capable of doing justice to double or treble the numbers at present under their charge. But the people are still unwilling or unable to take advantage of the opportunities

offered them. The richer classes who are able to pay stand aloof; and the poorer, it is to be feared, regard education simply as giving them a claim to Government appointments hereafter and feel it a grievance if they do not get them. The Agra College, with its staff of able professors and empty class-rooms, is a melancholy proof of how little high class education is deemed to be a desideratum by the upper and well-to-do classes of native society. The besetting fault of middle class schools is evidently to neglect the drudgery required for a through grounding in elementary subjects, in the delusive hope of achieving showy success in the Entrance Examination, the result too often being disappointing and discreditable to masters and pupils alike. Too much pains cannot be taken to disabuse masters of the idea that they will be judged solely by the success of their pupils in this or any other examination and Inspectors should impress on them that their efficiency and claims to promotion are held to depend upon the state of all their classes, low as well as high and the general condition of their schools and should give practical effect to this principle whenever opportunity occurs."

The government says that high education is not cared for, and middle schools instruction is merely showy, and lower education is neglected, I lay before the committee a test of the last seven year's results of the University and Entrance Examination, which will show that a gradual improvement has been made in all the examinations of the University, while progress in primary education has not been retread. We cannot understand why the Government should charge us with apathy when the country is gradually making improvement with regard to education. There is a decrease in the M. A. class students, but this is owing to the abolition of the M.A. class in all other colleges of the province except that at Allahabad. The primary education is not neglected, as the results of the upper and lower primary examinations instituted by Government will bear testimony–

Examination	Government		Other Schools.
	1874-75		
M.A.	1	0	Only one M.A. class, at Allahabad
B.A.	5	0	
F.A.	23	2	
Entrance	74	38	

Examination	Government	Other Schools.	
	1875-76		
M.A.	1	0	Ditto
B.A.	11	0	
F.A.	24	5	
Entrance	31	37	
	1876-77		
M.A.	5	0	Ditto
B.A.	18	0	
F.A.	17	5	
Entrance	79	68	
	1877-78		
M.A.	4	0	Ditto
B.A.	9	0	
F.A.	31	2	
Entrance	69	51	
	1878-79		
M.A.	4	4	
B.A.	14	4	
F.A.	17	17	
Entrance	123	77	
middle Class Examination	330	28	
Upper Primary	Ditto		
	1879-80		
M.A.	3	Nil	
B.A.	9	4	
F.A.	29	15	
Entrance	86	63	
Middle Class Examination	92	71	
Upper Primary Examination	4,175	514	
Lower Ditto Ditto	12,878	916	
	1880-81		
M.A.	4	3	
B.A.	15	7	

Examination	Government	Other Schools.
F.A.	21	27
Entrance	142	125
Middle Class Examination	458	58
Upper Primary Ditto	6,893	674
Lower Ditto	15,540	894

Question 49.–Have government institutions been set up in localities where places of instructions already existed, which might by grants-in-aid or other assistance adequately supply the educational wants to the people?

Ans. 49.–I do not know any such instance.

Question 50.–Is there any foundation for the statement that officers of the Education Department take too exclusive an interest in higher education? Would beneficial results be obtained by introducing into the department more men of practical training in the art of teaching and school management?

Ans. 50.–There is no foundation at all for the statement that officers of the Education Department take too exclusive an interest in higher education. The results of the various examinations already quoted in answer to question 48 will bear testimony to the fact. If we compare the results of the last two years' examinations, we see how graduated and reasonably proportioned the results are, which quite free the officers of the Education Department from the blame. On the contrary, there seems a tendency in aided institutions to attain showy results purely with a view to secure the enjoyment of grants-in-aid; and even at those examination the schools do not cut very satisfactory figures :

Government Schools		
	1879-80	1880-81
M.A.	3	4
B.A.	9	15
F.A.	29	21
Entrance	86	142
Middle Standard		

Government Schools		
Examination	92	458
Upper Primary	4,175	6,893
Lower Ditto	12,878	15,540

Question 51.–Is the system of pupil teachers or monitors in force in your province? If so, please state how it works.

Ans. 51.–The monitorial system is not in force in these provinces, but if introduced it will work successfully.

Question 52.–Is there any tendency to raise primary into secondary school unnecessarily or prematurely? Should measures be taken to check such a tendency? If so, what measures?

Ans. 52.–I do not think there is any such tendency in Government schools as to raise them from the primary to the secondary standard. There appears a tendency of the kind in aided institution in order to secure a larger amount as grant-in-aid and to prevent this the Government of these provinces has rules–

***Extract G. O. No. 49. A., dated 17th March* 1876**

"Para. 2.–In the first place, financial considerations preclude any increase in the total expenditure and render reductions desirable where they can fairly be effected. Secondly, after the ample time that has been given for preparation, it has now become incumbent on the Government to enforce the condition of the grant-in-aid rules strictly. The managers of certain classes of schools were warned, in the orders on the Budget of 1875-76, that the rules would be rigorously applied this year and this warning cannot be permitted to remain a dead letter. Lastly, it must be distinctly understood that the previous fulfillment of all the conditions laid down in Article III of the rules must be proved before any application for assistance can be admitted. It is not the intention of the rules that schools tentatively started should receive aid on the understanding that these conditions should be fulfilled in the future existence of the institution. Their object is to afford a means of assisting schools which permanently supply a local want, not to helping schools

to be opened on the chance of their attracting a sufficient number of scholars to make it worth while to keep them open.

"Para. 4.–It sometimes happens that schools are closed as high schools which have hardly qualified themselves for that rank by their success in the Entrance Examinations. To classify the schools by the result of every year's examination would probably involve many confusing changes, but no school which does not pass one boy a year on an average of three years seems entitled to be aided as a high school. Some such standard as the above should be applied to schools of this class, the managers being first applied of the test and warned that, in the event of failure, the Government will be obliged to aid them as middle. A schools at the rate, not of Rs. 1-8, but of 12 annas a boy."

Question 53.–Should the rate of fees in any class of schools or colleges vary according to the means of the parents or guardians of the pupil?

Ans. 53.–As the Government seems anxious to raise the rate of tuition fee, it will be but sound and just to charge it according to the means of the parents. For a short time the plan was introduced in the Benares College and its dependent school, by Mr. Griffith and if I remember right, it worked very successfully.

Question 54.–Has the demand for high education in your province reached such a stage as to make the profession of teaching a profitable one? Have schools been opened by men of good position as a means of maintaining themselves?

Ans. 54.–I am sorry to say that the demand for high educations has not reached to such a stage and even if it ever did so, India is a place where people have not been in the practice of paying any high fees for education. From the antediluvian period up to the present, the people of this country and even Mohammedans, have received all sorts of education free–whether high, middle or low. Our philosophers, poets, authors, &c., always taught gratis, in hope of reward in the next world.

The profession of teaching cannot be made profitable in India, even a century hence.

If this profession could be made lucrative, the public officials

would not have been pestered with such numerous applicants for employment.

(Question No. 55, 56 and 57 are missing)

Question 58.–What do you consider to be the maximum number of pupils that can be efficiently taught as a class by one instructor in the case of colleges and schools respectively?

Ans. 58.–I think that in schools from 25 to 30 and in college from 10 to 15, students can be efficiently taught by one instructor.

Question 59.–In your opinion, should fees in colleges be paid by the term or by the month?

Ans. 59.–I think the tuition fees should be taken monthly, as has hitherto been the practice. If paid by terms, the payers would feel it hard to pay a lump sum.

Question 60.–Does a strict interpretation of the principle of religious neutrality require the withdrawal of the Government from the direct management of colleges and schools?

Ans. 60.–It is by direct interference of Government that the principle of religious neutrality is observed in its strict sense. Should the Government withdraw, the effect would be contrary, and we are afraid the Missionaries would prevail.

(Question No 61 is missing)

Question. 62.–Is it desirable that promotions from class to class should depend, at any stage of school education, on the results of public examinations extending over the entire province? In what cases, if any, is it preferable that such promotions be left to the school authorities?

Ans. 62.–I consider the present system in this respect satisfactory. In the case of English schools, from the third class upwards, the promotion should depend on the result of public examinations extending over the entire province; and in the lower classes they should be left to the school authorities. In the case of primary vernacular schools they should be entirely left to the Deputy Inspector and his Assistant the Sub-Deputy Inspector.

Question 63.–Are there any arrangements between the colleges and schools of your province to prevent boys who are expelled from one institution or who leave it improperly, from being received into another? What are the arrangements which you would suggest?

Ans. 63.–There is a sort of arrangement of this nature in zilla schools. I know of an order of the Director of Public Instruction of these provinces that no boy who has been at a school could be admitted into another without producing a certificate of good conduct from the former head master. But I am of opinion that there should be no such restriction, which is sure to be injurious and result in retarding the progress of many premising students. Sometimes a school-master is whimsical and unduly harsh to his boys and expels them for slight offences. If such a hard restriction is imposed, many good boys would go without any schooling at all. When a master is unduly hard to a boy he finds no alternative but to change schools. I think boys and their parents or guardians should be left free so choose their own school.

Question 64.–In the event of the Government with drawing from the direct management of higher institutions generally, do you think it desirable that it should retain under direct management one college in each province as a model to other college; and if so, under what limitations or conditions?

Ans. 64.–I am strongly of opinion that the Government should not with draw from them the management of Government schools, and to have only one school in each province would be detrimental to the interests of the country.

Question 65.–How far do you consider it necessary for European professors to be employed in colleges educating up to the B.A. standard?

Ans. 65.–I think the employment of European professors urgently necessary in colleges educating up to the B. A. standard. Able Natives are scarcely available to teach higher mathematics, physical science, English or Philosophy.

Question 66.–Are European professors employed or likely to be employed in colleges under Native management?

Ans. 66.–I do not think any native except the Honourable Sayyid Ahmad Khan, Bahadur, who has already done so, would undertake the management of European professors. Even if the Natives were to take the management of colleges in the own hands, I do not think able European professors would ever like to serve under them, unless very highly paid.

(Question No. 67 and 68 are missing)

Question 69.–Can schools and colleges under Native management compete successfully with corresponding institutions under European management?

Ans. 69.–The schools under Native management can never be expected to compete with those under the management of Government. It is a serious mistake to think so.

Question 70.–Are the conditions on which grants-in-aid are given in your province more onerous and complicated than necessary?

Ans. 70.–I do not think that the conditions of assigning grants are more complicated or unnecessary than the want of the province required.

[भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का यह वक्तव्य डॉ. श्रीनारायण पांडेय की पुस्तक 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : सन्दर्भ की तलाश' से लिया गया है। डॉ. पांडेय का कहना है कि छूटे हुए प्रश्न वे हैं जिनका जवाब भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने नहीं दिया था।]

Self-introduction

I introduce myself to you Sir I am
Poora gentelman;
Take my salam, give me chair,
Honour me very much if you can.
I'm born in a noble faimily, noble
Parent I have too
I get chair in Lat Sab Darbar, my
Number is ninety-two.
I have lot of land here Sir ! in Ghazipur
And Gorakhpur
Parwanas of Delhi Shahas my forefathers
Left Hozur.
I introduce, & c. & c.

I was also Andhari Majister, Chungi
Commissioner justice Pees
Member of Educational Comety,Local
Expenditure Fees

In my room have any thing fit fat
Table, chair bench,and stools;
I speak English write good writing,
Deliver lecture, but in fools.
I introduce, & c.& c.

In the Institute once I very much
Spoke about the marriage Bill
I gave also good many chanda's and
Ready to give it still
Shamla, Chapkan, Topi, Moza, Ghari

Chhari, Roomal and Boot;
Gari, ghora; all in order never I
Walk on emply foot.
I introduce & c. & c.

Short sight I am, use the chashma
Nahin to andhari ke data ram
I go ever in ball and theatre but if
Any one pays to dam.
Now the title became Pakka though it
Had not ....reach
His Honour the Letent Governor praised me
Very much in his speech
I introduce, & c. & c.

When I go Sir! molakat ko, these chaprasis
Trouble me much;
How can I give daily Inam, ever they ask
Me I say such,
Some time they me give gardaniya
And tell bahar niklo tum
Dena na lena muft ke aye yah hain
Bare Darbari ki dum.
I introduce, & c. & c.

I w'nt say any suchchee baten let the
India be barbad
Ever ever but Hoozur Sahab sub kuch such
Hai baja irshad,
Daily banda Hukmi hazir, Karega
Hakim ka darbar
How can I say try for me Sir! that
I may get C. Ostar.
I introduce, & c. & c.

I have no any prejudice Sahab, I drink
Soda-water, wine;
Though beef buri chiz for a Hindoo
But I eat for sake of thine
I d'nt believe on Hindo idols, but I

Worship only to show
Neither my sala sab zat wala zat se
Bahar kare ham ko
I introduce, & c. & c.

When you will leave city then I will
Have a meeting in my Hall
Get a memorial fund for your sake
And will give you fare-well ball
I have no any Sarparast Sir! noble
Raja or the king
You are all my father, mother, brother
Friend and everything
I introduce, & c. & c.

Dharam karam Pooja and Ganga Debi Dewata
Sandhya dhyan
Yah Lok, par Lok, Ishwar, Pittar, Brat
Ekadashi and Asnan
Put head on foot, and I say true,
You are all my, I have none;
Save me father! save me father;
I am your sipharsi son.

I introduce myself to you Sir !
I am poora gentelman
Take my salam, give me chair,
Honour me very much, if you can

[Harischandra Magazine, May 1874]

विविध

भगवद्भक्तितोषिणी

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं के साथ-साथ धार्मिक पत्रिका का सम्पादन-प्रकाशन भी करना चाहते थे। उनकी यह इच्छा पूरी हुई पर पत्रिका के अंक न निकल सके। उन्होंने इस पत्रिका का नाम 'भगवद्भक्तितोषिणी' रखा था। इस का प्रथम प्रूफ भारतेन्दु ने स्वयं देखा था, पत्रिका के पृष्ठों से यह स्पष्ट है। श्री गिरीशचन्द्र चौधरी का मत है कि यह पत्रिका उन के अवसान के निकट ही प्रारम्भ हुई थी। इस के पीछे उन का तर्क है कि 'अब तक मुझे पत्रिका की कोई अन्य प्रति नहीं प्राप्त हुई न ही इस की कोई सूचना ही हरिश्चन्द्र जी के जीवन चरित्र में लिखी गई।

प्रो. गिरीशचन्द्र चौधरी भारतेन्दु के परिवार के हैं। पत्रिका के ये पृष्ठ उन्होंने 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी' की शोध पत्रिका 'प्रज्ञा' में प्रकाशित किए थे। 'भगवद्भक्तितोषिणी' के ये पृष्ठ 'प्रज्ञा' से साभार लिए गए हैं।

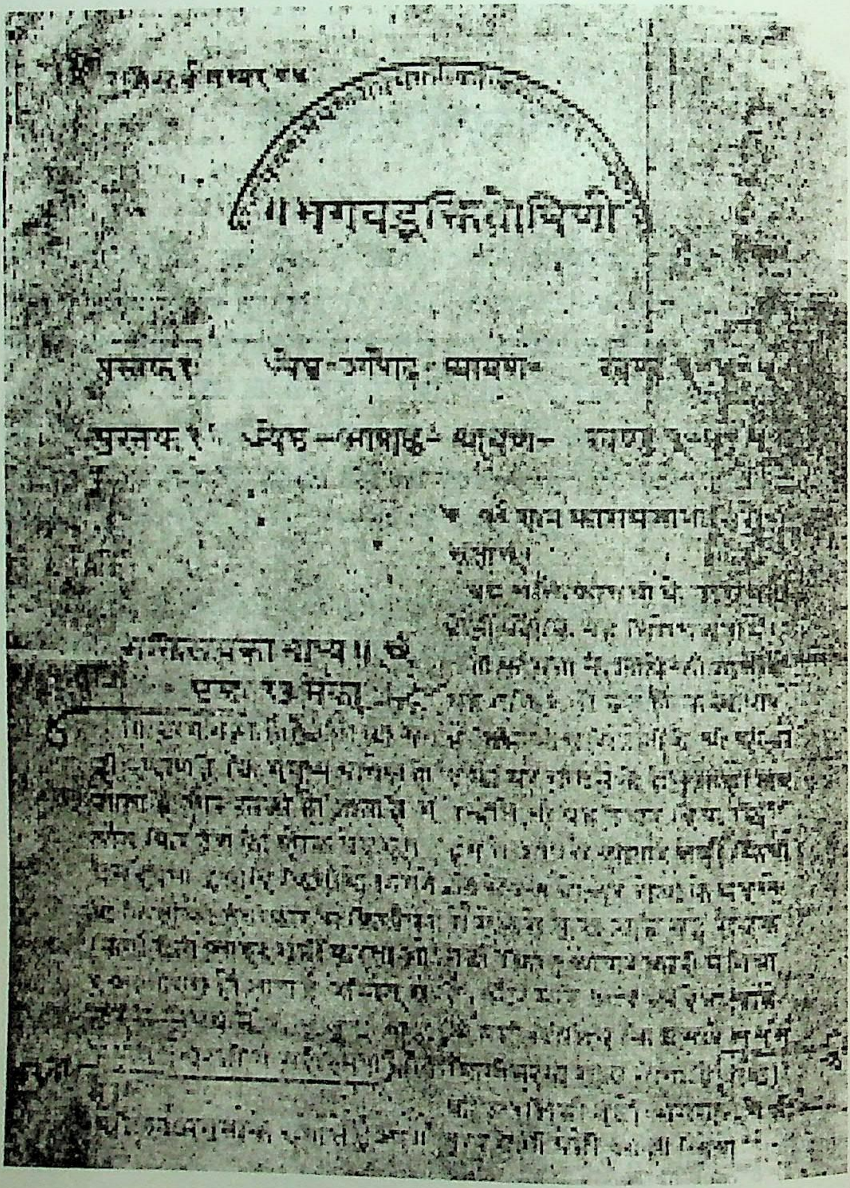
भगवद्भक्तितोषिणी

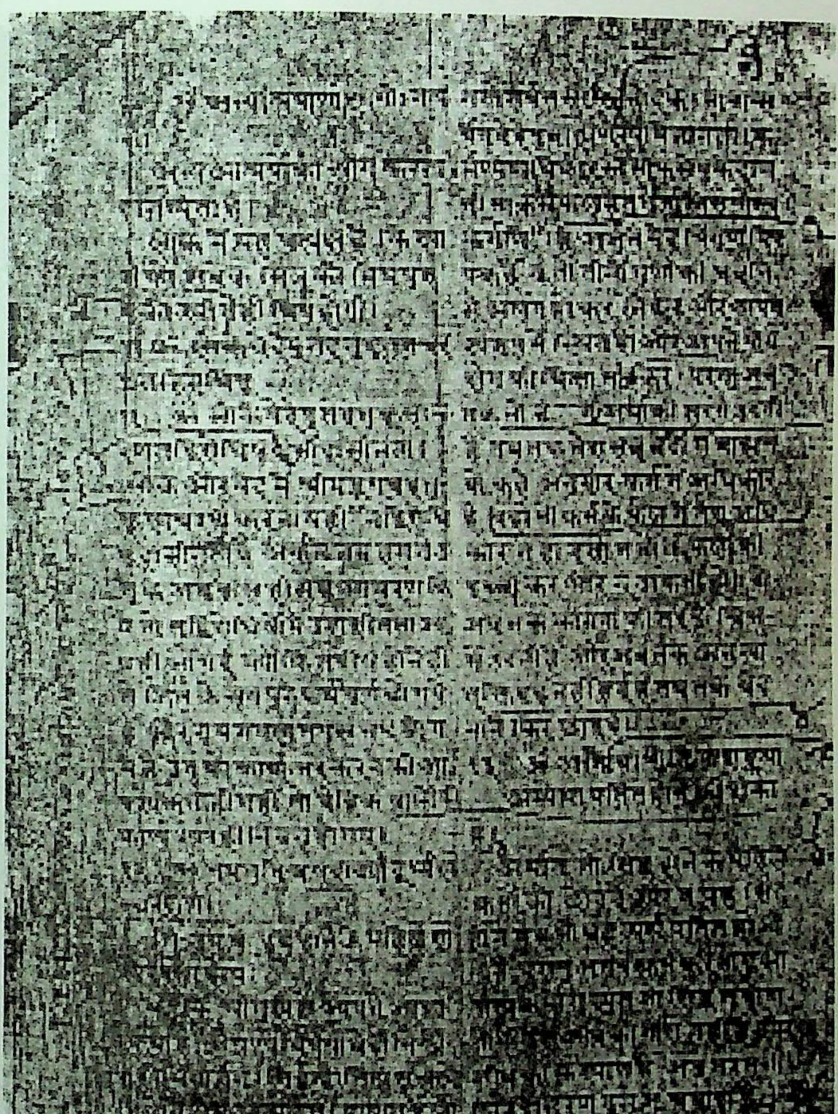

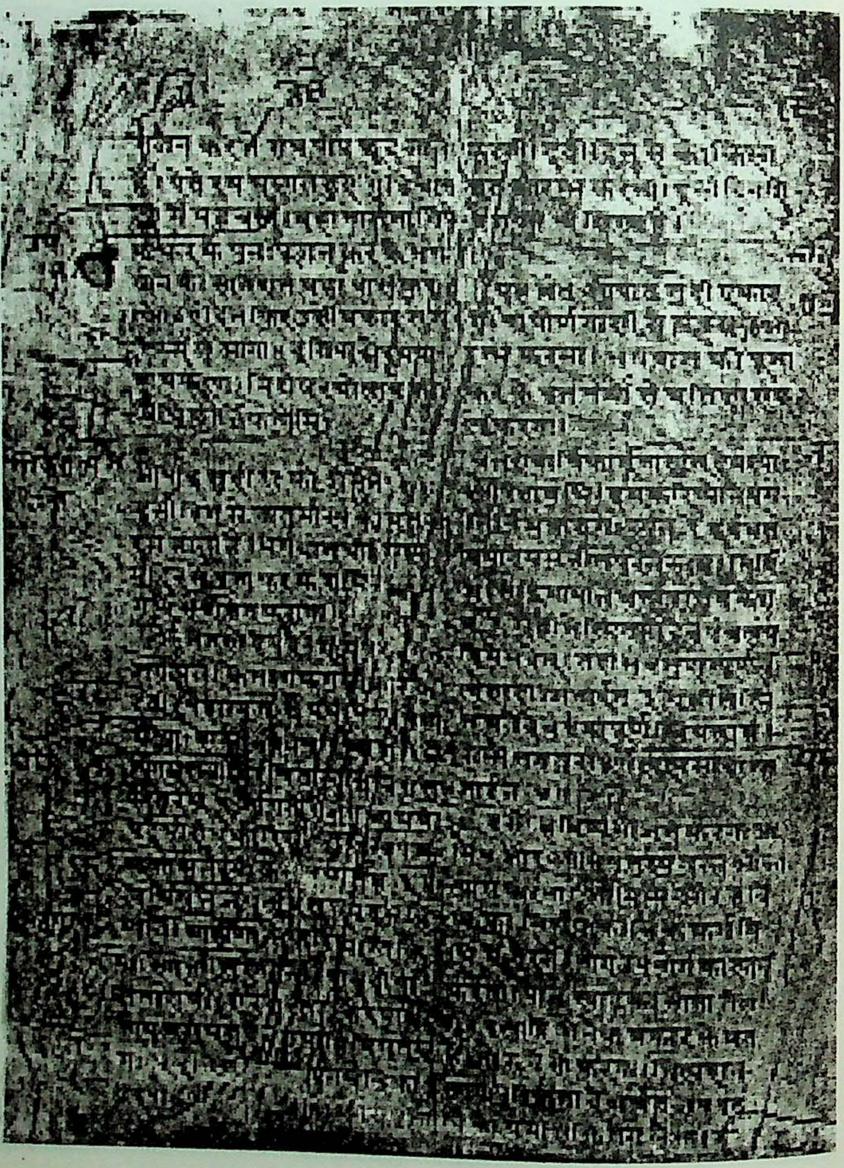

कविवचन सुधा के मुखपृष्ठ पर प्रकाशित होने वाली पंक्तियां

नित नित नव यह कविवचन सुधा सकल रस खानि।
पीवहु रसिक अनन्दभरि परम लाभ जिय जानि॥1॥

सुधा सदा सुर पुर बसै सो नहिं तुम्हरे जोग।
तासों आदर देहु अरु पीवहु एहि बुध लोग॥2॥

बालाबोधिनी के मुखपृष्ठ पर प्रकाशित होने वाली पंक्तियां

जो हरि सोई राधिका जो शिव सोई शक्ति।
जो नारी सोई पुरुष यामैं कछु न विभिक्ति॥

सीता अनुसूया सती अरुन्धती अनुहारि।
शील लाज विद्यादि गुण लहौ सकल जगनारि॥

पितु पति सुत करतल कमल लालित ललना लोग।
पढ़ैं गुनैं सीखैं सुनैं नासैं सब जग सोग॥

वीरप्रसिविनी बुध बधू होइ हीनता खोय।
नारी नर अरधंग की सांचेहिं स्वामिनि होय॥

हरिश्चन्द्रचन्द्रिका के मुखपृष्ठ पर प्रकाशित होने वाली पंक्तियां

श्री हरिः

श्री हरिश्चन्द्रचन्द्रिका

विद्वत्कुलोमलस्वान्त कुमुदामीददायिका।
आर्य्याज्ञानतमीहन्त्री श्रीहरिश्चन्द्रचान्द्रिका॥

कविजन कुमुदगन हिय बिकासि चकोर रसिकन सुख भरै।
प्रेमिन सुधासों सींचि भारत भूमि आलस तम हरै॥
उद्यम सु औषधि पोखि बिरहिन दाहि खल चोरन दरै।
हरिचन्द्र की यह चन्द्रिका परकासि जग मंगल करै॥

न्यौछावर

षट मुद्रा पहिले दिए, बरस बिताये सात।
साथ चन्द्रिका के लिए, दस में दोउ मिल जात॥
बरस गए बारह लगे, दो के दो महसूल।
अलग चन्द्रिका सात खट, वचन सुधा सभ तूल॥
दो आना इक पत्र को, टका पोसटेज् साथ।
सारध आना आठ दै, लहत चन्द्रिका हाथ॥
प्रति पंगति आना युगल, जो कोउ नोटिस देइ।
जौ बिसेस जानन चहै, पूछि सबै कछु लेइ॥

[कविवचन सुधा और हरिश्चन्द्र चन्द्रिका के मूल्य और नियम आदि का पद्यबद्ध विवरण]

चन्द्रग्रहण के अवसर पर सूतक के विषय में भारतेन्दु के विचार

इस वर्ष में जो चन्द्रमा का ग्रस्तोदय ग्रहण हुआ था उस में ज्योतिष के अनुसार तीसरे पहर से लोगों ने सूतक माना और हम लोगों के श्री श्री वल्लभीय सम्प्रदाय की रीति के अनुसार श्री ठाकुर जी भी उसी समय से अलग विराजे, किन्तु ऐसा निश्चय होता है कि शास्त्रमान से सूतक मानने की आवश्यकता नहीं। व्यर्थ ठाकुर जी को इतने पहिले कष्ट दिया क्यौंकि ग्रहण का सूतक ग्रहण के देखे बिना नहीं होता यथा 'सर्व्वेषामेव वर्णाना सूतक राहु दर्शनं', 'स्नानं दानं' तपः श्राद्ध मनन्तं राहुदर्शने', 'दत्तं जप्तं हुतं' स्नातभनन्तं राहुदर्शने' इत्यादि वाक्यों में जो दर्शन शब्द है और 'देखे गहन सुने सूतक' इस लोक कहावत से गहन जब तक लोक के दृष्टिगोचर न हो तब तक उस के सूतक का आरम्भ नहीं होता। अतएव 'सूर्य्यग्रहो यदा रात्रौ दिवा चन्द्रग्रहस्तथा। 'तत्र स्नानं न कर्तव्य दद्याद्दानं च' क्वचित विधान किया है। जो कहो ग्रस्तास्त में शास्त्ररीति से जब तक उग्रह न हो तब तक सूतक क्यों मानते हैं? तो इस से उस से भेद है उस में दर्शन हो कर सूतक लग चुका है, उस की निवृत्ति शास्त्र रीति से उग्रहमान कर करना और यहां सूतक का प्रारम्भ ही नहीं हुआ है। जो कहो कि ऐसा मान कर फिर पहर दिन चढ़ने के भीतर भोजन करना क्यौंकि चन्द्रग्रहण के पहिले केवल तीन पहर निषेध है सो नहीं। इस भोजन के हेतु एक विशेष वाक्य है यथा ''सन्ध्याकाले यदा राहुर्ग्रसते शशिभास्करौ। दिवा तत्र न भोक्तव्य रात्रो नैव कदाचन।''

ऋण का चस्का

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की कलम से)

"एक बेर कोई कलकत्ते से लालरंग की चन्द्रजोति पहले पहल मंगल के मेले में लाया था। घर की नाव तमाशा देखने को हुई थी। हम ने बाल स्वभाव से चार रुपये की पावभर बुकनी मंगाकर उस पर छोड़ दी। पीछे उस का रुपया मुनीबजी ने नहीं दिया। ज़नाने में इत्तिला हुई। मायजी ने भी नहीं दिया। बड़ा पचड़ा हुआ। एक दिन भोजन नहीं क़िया। अन्त में तंग होकर छग्गन लाल नामक एक मनुष्य से पुरजा लिख कर चार रुपया मंगाया तो उन्हों ने उसी समय भेज दिया। वही मानो चस्का लगा। बालकों के सुधारने की इच्छा करनेवाले माता पिता इस किस्से को कान लगा कर सुनें। उस समय वह चार न देना कैसा विष हुआ। अन्त में चार लाख ले गया। बारूद तो जल ही गई थी बिना दिये कैसे काम चलता। यौवनारम्भ में बालक को इतनी कैद वा निगरानी खराब करती है।"

[शिवनन्दन सहाय की पुस्तक 'हरिचन्द्र' से साभार]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की लालसा

"अभी तक मेरे पास पूर्व्ववत बहुत धन होता तो मैं चार काम करता– (1) श्री ठाकुरजी को बगीचे में पधरा कर धूमधाम से षटऋतु का मनोरथ करता, (2) विलायत, फ्रांस और अमेरिका जाता, (3) अपने उद्योग से एक शुद्ध हिन्दी की यूनिवर्सिटी स्थापना करता, और (4) एक शिल्पकला का पश्चिमोत्तर देश में कॉलेज बनाता।"

[बाबू शिवनन्दन सहाय लिखित हरिश्चन्द्र से साभार]

पत्र व्यवहार और ऐसे अन्य कार्य्यों के लिए भारतेन्दु हरिचन्द्र अलग अलग दिन के लिए अलग अलग रंग के कागज का इस्तेमाल करते थे। इन कागजों के शीर्ष पर अलग अलग शीर्षक छपा होता था।

• रविवार को चिट्ठी पत्री लिखने के लिए वे गुलाबी कागजों का इस्तेमाल करते थे। इन कागजों पर यह शीर्षक छपा रहता था—

भक्त कमल दिवाकराय नमः।
सूर्य्यवंशविकाशकाय श्री रामाय नमः॥

'मित्र पत्र बिनु हित लहत, छिनहूं नहिं विश्राम।
प्रफुलित होत न कमल जिमि, बिनु रवि उदय ललाम॥'

• सोमवार के दिन सफेद कागज प्रयोग में लाया जाता था। कागज के शीर्ष पर निम्नलिखित पंक्तियां छपी होती थीं—

'श्री कृष्णचन्द्राय नमः' 'चन्द्रचूड़ाय नमः'

'ससिकुलकैरव सोम जय, कलानाथ द्विजराज।
श्रीमुखचन्दचकोर श्री, कृष्णचन्द महराज॥
बन्धुन के पत्रहि कहत, अर्धमिलन सब कोय।
आप हु उत्तर भेजहू, पूरो मिलनो होय॥'

• मंगलवार को निम्नलिखित शीर्षक युक्त लाल कागज का व्यवहार होता था—

'मंगलम् भगवान विष्णुः मंगलम् गरुड़ध्वजः।
मंगलम् पुंडरीकाक्षः मंगलायतनं हरिः॥'

• बुधवार के लिए हरा कागज था। इस कागज पर यह शीर्षक छपा रहता था—

बुधाराधितचरणाय नमः। विबुधश्रेष्ठाय नमः।

बुधजन दर्पण में लखत, दृष्ट वस्तु को चित्र।
मन अनदेखी वस्तु को, यह प्रतिबिम्ब विचित्र॥

● गुरुवार के लिए पीले कागज पर यह छपा रहता था–

'श्री गुरुगोविन्दाय नमः। श्री गुरुवे नमः।

आशा अमृतपात्र प्रिय, विरहातप हित छत्र।
बचन चित्र अववलम्ब प्रद, कारज साधक पत्र॥

● शुक्रवार को सफेद कागज पर यह शीर्षक रहता था–

'कविकीर्तितयशसे नमः'

दूर लखत कर लेत आवरन हरत राखि पास।
जानत अन्तर भेद जिय पत्र अधिक रस रास॥

● शनिवार को नीचे लिखे शीर्षयुत नीला कागज काम में लाया जाता था–

'आनन्दागन्दकन्दाय नमः, 'श्रीकृष्णाय नमः' 'श्यामाश्यामाभ्यां नमः'

और काज सनि लिखन में, होय न लेखनि मन्द।
मिलै पत्र उत्तर अवसि, यह विनवत हरिचन्द॥

● इनके अलावा कुछ और प्रेम वाक्यों और उपदेश वाक्यों का व्यवहार इनके पत्र लेखन के कागजों पर होता था, जैसे–

कर लै चूमि चढ़ाइ सिर, हिय लगाइ भुज भेंटि।
लखि पाती पिय की लिखी, बांचति धरति समेटि॥
बांचति धरति समेटि खोलि फिरि फिरि तेहि बांचै।
बरन बरन पर प्रान वारि आनन्द जिय रांचै॥
उमगि उमगि हरिचन्द पसीजति पुलकति उर धर।
नैन नीर जुग भरें लिए ही रहति सदा कर॥

● निम्न वाक्य तो इनके सिद्धान्त वाक्य थे–

1. 'यतो धर्म्मस्ततः कृष्णे, यतः कृष्णःस्ततो जयः।'
2. 'Love is heaven and heaven is love' आदि।

[शिवनन्दन सहाय की पुस्तक 'हरिश्चन्द्र' से साभार]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की लिखी अन्तिम कविता

"डंका कूच का बज रहा मुसाफ़िर जागो रे भाई।
देखो लाद चले पन्थी सब तुम क्यों रहे भुलाई॥
जब चलना ही निहचैं है तब लै किन माल लदाई।
हरीचन्द्र हरिपद बिनु नहिं तो रहि जैहो मुंह बाई॥

[बाबू शिवनन्दन सहाय लिखित हरिश्चन्द्र से सभार]

भारतेन्दु का अस्त

...2 जनवरी, 1885 ई. में अकस्मात् भारी ज्वर चढ़ा। 8 पहर तक अपना बल दिखा कर बिलग हुआ। फिर पसली से वेदना आरम्भ हुई। डॉक्टरों को इनके जीवन का संशय हो गया। परन्तु वह पीड़ा भी दूर हुई। कफ बहुत आने लगा और कफ में रुधिर देखा गया। कष्ट बहुत हुआ, परन्तु उससे भी जान बची। 6ठीं जनवरी को सबेरे बहुत अच्छे थे। भीतर से दासी हाल पूछने आई, उससे हंस कर कहा कि, "हमारे जीवन नाटक का प्रोग्राम नित नया नया छप रहा है, पहिले दिन ज्वर की, दूसरे दिन दर्द की, तीसरे दिन खांसी की सीन हो चुकी है। देखें लास्ट नाइट कब होती है।"

उसी दिन दोपहर को दस्त में काला मल गिरा। उसी समय से कुछ श्वास बढ़ा और उसी समय से इन्होंने संसार से चित्त फेर लिया। घर का जब कोई निकट आता तो मुंह फेर लेते।

दो बजे दिन को निज भातृपुत्र श्रीकृष्णचन्द्र को पास बुला कर कहा कि अच्छा वस्त्र पहिन आओ। वह कपड़ा पहिन कर गए। कहा कि इससे भी उत्तम वस्त्र पहिन जाओ। वे दूसरा सुन्दर कपड़ा पहिन कर निकट गए। स्वयं आरामकुर्सी पर लेटे कृष्ण चन्द्र को गोद में बिठाए कुछ अंगूर खिलाया। फिर दोनों हाथ उनके माथे पर रख कर कुछ काल पर्य्यन्त ध्वनावस्थित रहे फिर उनको विदा कर कहा, 'जाओ खेलो'। उसके पश्चात संसार की माया से कुछ सम्बन्ध नहीं रक्खा। श्वास बढ़ता गया; बेचैनी अधिक होने लगी। डॉक्टर वैद्य उपस्थित थे और औषधि भी परामर्श से करते जाते थे, परन्तु "मरज बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की"। प्रतिक्षण में बाबू साहिब डॉक्टरों से नींद आने एवं कफ घटाने की औषधि की इच्छा करने लगे। धीरे धीरे रात हो गई। नौ बजे के समय इन के स्वपरिवार को विपत्तिसागर में डुबोने वाला, स्नेहियों का हृदय बिदारने वाला, नागरी को अभागिनी बनानेवाला, भारत माता का एक सपूत पूत हरनेवाला, निर्दय कराल काल आ पहुंचा। एकाएक पुकार उठे "श्रीकृष्ण! राधाकृष्ण! हे राम! आते हैं मुंह दिखलाओ!" बस इसके साथ ही कंठ रुद्ध होने लगा। कुछ दोहा कहा, कंठावरोध के कारण स्पष्ट सुनाई नहीं दिया। केवल इतना ही सुनने में आया, "श्रीकृष्ण...सहित स्वामिनि"। बस गरदन झुक गई।

[श्री शिवनन्दन सहाय की पुस्तक 'हरिश्चन्द्र' से साभार]

चन्द्रास्त

अर्थात
श्री मान कवि शिरोमणि भारत भूषण भारतेन्दु
श्री हरिश्चन्द्र का सत्यलोक गमन।

— ● —

अद्य निराधाराऽभूतद्दिवं गते श्री हरिश्चन्द्रे।
भारतधरा विशेषाद्भाग्यरूपा महोदयाग्रेन्द्रे॥

— ● —

अतिशय दुःखित
व्यास रामशंकर शर्म्मा लिखित

— ● —

अमीर सिंह द्वारा बनारस हरिप्रकाश
यन्त्रालय में मुद्रित हुआ

— ● —

1885
बिना मूल्य बंटता है

— ● —

अनर्थ! अनर्थ!! अनर्थ!!!

सबसे अधिक अनर्थ

दीन जानि सब दीन्ह एक दुरायो दुसह दुख।
सो दुख हम कहं दीन्ह कछुह न राख्यो बीरबर॥

आज हम को इसके प्रकाशित करने में अत्यन्त शोक होता है और कलेजा मुंह को आता है कि हम लोगों के प्रेमास्पद, भारत के सच्चे हितैषी और आर्य्यों के शुभचिन्तक श्रीमान भारतभूषण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी कल मंगल की अमंगल रात्रि में 9 बज के 45 मिनट पर इस अनित्य संसार से विरक्त हो और हम लागों को छोड़कर परमपद को प्राप्त हुए। उन की इस अकाल मृत्यु से जो असीम दुःख हुआ उसे हम किसी भांति से प्रकट नहीं कर सकते क्योंकि यह वह दुसह दुःख है कि जिसके वर्णन करने से हमारी छाती तो फटती ही है वरंच लेखनी का हृदय भी विदीर्ण होता जाता है और वह सहस्र धारा से अश्रुपात करती है।

हा! जिस प्राण प्यारे हरिश्चन्द्र के साथ सदा विहार करते थे और जिसके चन्द्रमुख दर्शन मात्र से हृदय कुमुद विकसित होता था उसे आज हम लोग देखने को भी तरसते हैं। जिसके भरोसे पर हम लोग निश्चिन्त बैठे रहते थे और पूरा विश्वास रखते थे वही आज हमको धोखा दे गया। हा! जिस हरिश्चन्द्र को हम अपना समझते थे उसको हमारी सुध तक न रही। हरिश्चन्द्र! तुम तो बड़े कोमल स्वभाव के थे परन्तु इस समय तुम इतने कठोर क्यों हो गये! तुम को तो यह चलते भी किसी का रोना अच्छा नहीं लगता था सो अब सारे भारतवर्ष का रोना कैसे सह सकोगे। प्यारे! कहो तो, दया जो सदा छाया सी तुम्हारे साथ रही सो इस समय कहां गई। प्रेम जो तुम्हारा एकमात्र व्रत था उसे इस बेला कहां रख छोड़ा है जो तुम्हारे सच्चे प्रेमी बिलला रहे हैं। हे देशाभिमानी हरिश्चन्द्र! तुम्हारा देशाभिमान किधर गया जो तुम अपने देश की पूरी उन्नति किये बिना अनाथ छोड़कर चल दिये तुम्हारा हिन्दी का आग्रह क्या हुआ, अभी तो वह दिन भी नहीं आये थे जो हिन्दी का भली भांति प्रचार हो गया होता, फिर आपको इतनी जल्दी क्या थी जो इसका साथ ऐसी अधूरी अवस्था में छोड़ा। हे परमेश्वर, तूने आज क्या किया, तेरे यहां कमी क्या थी जो तूने हमारी महानिधि छीन ली। जो कहो कि वह तुम्हारे भक्त थे तो क्या न्याय यही है कि

अपने सुख के लिए भक्त के भक्तों को दुःख दो। अरे मौत निगोड़ी तुझे मौत भी न आई जो मेरे प्यारे का प्राण छोड़ती। अरे दुर्दैव, क्या तेरा पराक्रम यही जो हतभाग्य भारत को यह दिन दिखलाया। हाय! आज हमारे भारतवर्ष का सौभाग्य सूर्य्य अस्त हो गया, काशी का मानस्तम्भ टूट गया और हिन्दुओं का बल जाता रहा। यह एक ऐसा आकस्मिक वज्रपात हुआ कि जिस के आघात से सब का हृदय चूर्ण हो गया। हा! अब ऐसा कौन है जो अपने बन्धुओं को अपने देश की भलाई करने की राह बतलावैगा और तन, मन, धन से उनमें सम्मति और अच्छे उपदेशों के फैलाने का यत्न करैगा। अभागिनी हिन्दी के भंडार को अपने उत्तमोत्तम लेख द्वारा कौन पुष्ट करेगा और साधारण लोगों में विद्या की रुचि बढ़ाने के लिए नाना प्रकार के सामाजिक लेख लिख कर उन का उत्साह कौन बढ़ावैगा। अपनी सुधामयी वाणी से हम लोगों की आशा बेलि कौन बढ़ावैगा। और हा! काव्याऽमृत पान करा के हमारी आत्मा को कौन पुष्ट करैगा। मेरे प्राण प्यारे! अवसर पड़ने पर हमारे आर्य्य धर्म की रक्षा करने के लिए कौन आगे होगा और दीनोद्धार की श्रद्धा किसको होगी। यों तो आर्य्य जाति को जब कोई संकट उपस्थित होता है तो वे तुम्हारे समीप दौड़े जाते थे पर अब किसकी शरण जायंगे। शोक का विषय है कि तुमने इन में से एक पर भी ध्यान न दिया और हम लोगों को निरवलम्ब छोड़ गये। प्रियतम हरिश्चन्द्र! आज तुम्हारे न रहने ही से काशी में उदासी छा रही है और सब लोगों का अन्तःकरण परम दुःखित हो रहा है। तुम को वह मोहन मन्त्र याद था कि जिससे सारे संसार को अपने वश में कर लिया था। पर हा! आज एक तुम्हारे चले जाने से सारा भारतवर्ष ही नहीं, किन्तु यूरोप, अमेरिका इत्यादि के लोग भी शोकग्रस्त होंगे यद्यपि तुम कहने को इस संसार में नहीं हौ, परन्तु तुम्हारी वह अक्षय कीर्ति है कि जो इस संसार में उस समय तक बनी रहैगी कि जब लौं हिन्दी भाषा और नागरी अक्षरों का लोप न होगा। प्यारे! तुम तो वहां भी ऐसे ही आदर को प्राप्त होंगे पर बिला मौत हम लोग मारे गये। अस्तु! परमेश्वर की जो इच्छा। आप की आत्मा को सुख तथा अखंड स्वर्गवास हो, पर देखना अपने दीन मित्र तथा गरीब भारतवर्ष को भूलना मत। अब सिवा इस के रह क्या गया है कि हम लोग उन के उपकारों को याद कर के आंसू बहावैं, इसलिए यहां पर आज थोड़ा सा उनका चरित प्रकाशित करता हूं, चित्त स्वस्थ होने पर पूरा जीवन चरित छापूंगा क्योंकि वह स्वयं भविष्य वाणी कर गये हैं कि–

''कहैंगे सबै ही नैन भरि भरि पाछैं
प्यारे हरिश्चन्द्र की कहानी रह जायंगी।''

मानमन्दिर

प्यारे के वियोग से नितान्त दुःखी

7-1-85

व्यास रामशंकर शर्मा

[भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की मृत्यु के अगले दिन उनके अभिन्न मित्र व्यास रामशंकर शर्मा द्वारा छपवाकर मुफ्त बांटा गया शोक पत्र]

रक्ताश्रु

हाय! हृदय विदीर्ण हुवा जाता है। आंसू रुकते नहीं। हाय-हाय सुनने से पहले ही हमारा निरलज्ज शरीर क्यों न छूट गया। हाय पापी प्राण तुम क्यों न निकल गए। हाय इस अधम जीवन का अन्त क्यों न हो गया। हाय आशा की जड़ कट गई। बस अब क्या है, अभागा भारत डूब जा। अरे अब तेरा कौन है? स्वामी दयानन्द चल बसे। छाती पर पत्थर धर लिया। केशव बाबू सिधार गए, रो-धो के कलेजा थाम लिया। यह दुःख नहीं सहा जाता, हाय!!! अब क्या होगा? हाय हम तो हम, हमारे प्यारे राधाकृष्ण दास को कौन समझावे? काशी ही नहीं अनाथ हुई, भारत माता के कर्म में आग लग गई। हाय देशहितैषिता विधवा हो गई। हाय हम क्या करें ''एरे प्राण कौन सुख देखिबे को रह्यो जात। तूहू किन बात जित प्रीतम सिधरि गो''। हा! हा! हा!!! ''क्या नजर जख्मे अन्दरु आया। चश्म से रोते खूं आया''। दम अटकते-अटकते टूट गया। सर पटकते-पटकते फूट गया! हाय हमें संसार सूना देख पड़ता है। दुनिया उजड़ गई, हाय! इससे तो महा प्रयल हो जाती। हाय प्यारे हरिश्चन्द्र! हाय भारत भूषण!! हाय भारतेन्दु!!! हा हा हा अरे हम भी चलेंगे—हम से नहीं सहा जाता। मेरे पूज्यपाद! मेरे प्रातःस्मरणीय! मेरे प्रेम देव! बुलावो। स्वर्ग में तुम्हारी सेवा कौन करेगा? हा हा हा!!! आ! हा! हा! दिल का क्या हाल करूं खूने जिगर होने तक, हाय कौन लिखे, कौन पढ़े। अरे बज्रहृदय कविवचन सुधारस!!! यह क्या विष उगल दिया? अरे यह अकस्मात बज्रपात, हा! हा! हा! प्रेमाचार्य तो प्यारे से जा मिले, अब भारत का उद्धार कौन करे? क्या...? अनेक देशभक्त जो हैं? कौन? कहां? किस को देख के? हा! ''राका ससि षोडस उवैं तारागण समुदाय। सकल गिरिन सब लाइए रबि बिन राति न जाय।'' कौन अपना सर्वस्व निछावर कर देगा? किस्के वचन दिल को हिला देंगे? हा रससिद्ध कवीश्वर! हा भारत भक्त शिरोमणि!! हा सहृदय समूहाग्रगण!!! हा प्रेमीजन पूजित पादपीठ!!! हाय प्यारे, तुम्हारे निवास के ठौर को बोरत हैं अंसुवां बरजोरन। हाय जनवरी की 6 तारीख चांडाल काल। यह क्या किया? हाय ''कहेंगे सबै ही नैन नीर भरि-भरि अब प्यारे हरिचन्द की कहानी रहि जायगी?'' हाय मैं क्या करूं, कहां जाऊं, हा! हा!! हा!!! हाय आजु भारत अनाथ

सब भांति भयो भारती जू भूषण बिहीन दीसैं मन्द। हाय क्यों न प्रताप दीह ताप सौं करेजो तपै भयो सुखदायक सुधा को सोत बन्द। हाय भावन न हाय हाय के सिवाय कछु उरपुर रुधै है विषदन को बन्द हाय। हाय हाय हय हाय करि कीन्हीं अनरथ कैसी शोक हरिलोकहिं सिधारे हरिचन्द्र हाय॥1॥ बानी प्रेमसानी सों पियूष बरसावै कौन कौन चहुं ओर जस चन्द्रिका पसारे हाय परताप चतुर चकोरन को ताप हरि भारत की भू को तम कौन निरुवारे हाय॥ तेरे बिन हेरत हिरात हियरे को चैन आंसुन में बूड़े जात नैनन के तारे हाय हरिचन्द हाय भारत के चन्द हाय बाबू हरिचन्द। हरिचन्द प्राणप्यारे हाय॥2॥ हा! हा!! हा!!! ताकत तो साँस को भी नहीं आह क्या करूं। क्या बेबसी है ऐस मेरे अल्लाह क्या करूं॥

['ब्राह्मण', 15 जनवरी, 1985 के अंक में प्रकाशित पं. प्रतापनारायण मिश्र का शोकोद्गार]

'नागरी' के नाह

''कौन अब पुस्तक छपाय पढ़वैहे हाय राग रागिनी की रीत भाषत नितै गयो।
कोउ ना दिखात नेक हिन्दु में समझदार जैसी 'हरिचन्द' केर किरती छितै गयो॥
प्रेम के प्रवाह में बहनहार आछो आज काल ग्राह तीखे दन्त धोखै धरि लै गयो।
कैसे नैन लखब सुस्याम घुंघरारे बार हाय 'नागरी' के नाह छाड़ि कै कितै गयो॥''

[उपर्युक्त पंक्तियां यह स्पष्ट करती हैं कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र न केवल पढ़े लिखे लोगों के बीच समादृत थे वरन बनारस की वेश्याओं के बीच भी समादृत थे। बनारस की वेश्याएं उनके महत्त्व को जानती थीं। उनकी मृत्यु पर बनारस की वारांगना हुस्ना ने उक्त पंक्तियां लिखी थीं]

गोदड़ी में लाल

''हाय हरिश्चन्द्र! तू हमलोगों को छोड़ जाएगा इस बात का तो किसी को ध्यान मात्र भी न था, और अभी तक भी तेरा नाम स्मरण करके यह निश्चय नहीं होता है कि कलम दवात लिए, 'बस्ता' सामने धरे उसमें से कागज रूपी बिखड़े रत्नों को हास्यमुख के साथ एक लड़ी में पिरो रहा है और सोच रहा है कि किस आशावान की झोली इस से भरूँ! 'गोदड़ी में लाल' सुना करते थे, परन्तु देखे तेरे ही पास। हा! अब कौन उनको परख सकैगा और कौन उनकी माला बनावैगा?

''प्यारे हरिश्चन्द्र! काशी में, जहां और बड़े-बड़े तीर्थ हैं, वहां तू भी एक तीर्थ स्वरूप ही था। काशीजी में जाकर और तीर्थ पीछे स्मरण होते हैं, तू पहिले मन में स्थान कर लेता था। और तीर्थों पर पाधा पुरोहित घाटियों को प्रसन्न करने, अपने नामवरी कमाने वा दान-दक्षिणा देने को यात्री लोग जाते हैं, पर तेरे पास सब भिक्षा ही के लिए आते थे, पर तेरे पास सब भिक्षा ही के लिए आते थे, और किसकी भिक्षा? प्रेम की भिक्षा, दश्नन की भिक्षा, सत्परामर्श की भिक्षा! तेरे दर्वाजे से कभी कोई विमुख नहीं गया; तू इस संसार में इसलिए नहीं आया कि अपना कुछ बना जावे, किन्तु इसलिए आया था कि बना बनाया भी दूसरों को सौंप दे और उनका घर भरें तेरे चरित्रों से स्पष्ट दिखाई देता था कि तू हर घड़ी इस ससांर को छोड़ने ही का ध्यान रखता था। और इसीलिए किसी संसारी लोगों की दृष्टि में तेरी अपनी वस्तु की तूने कभी रत्तीमात्र भी पर्वा न की। यश कमाने तू आया था, वह तुझसा दूसरा कौन कमावैगा। शेष सब पदार्थों का आजना जाना तूने तुल्य और एक-सा समझ रक्खा था।

''प्यारे हरिश्चन्द्र! आप के यह संसार त्यागने पर लोग शोक, प्रकाश कर रहे हैं। परन्तु हममें यह सामर्थ्य नहीं है। आप के हमें छोड़ कर चले जाने से जो कुछ हमपै बीत रही हैं, हम जानते नहीं कि तुमें किस नाम से पुकारें, हमें जो कुछ शौक है वह ऐसा पर्दों के पर्दों में छिपा हुआ है कि उसका प्रकाश करना हमारे लिए असम्भव है। यह महाशय भाषा के उत्तम कवि थे इस प्रकार के वाक्य लिखकर जो लोग आपके बिछोड़े पर शोक प्रकट करते हैं, वह हमारे कलेजे के टुकड़े उड़ाते हैं, वह हमारे प्यारे

हरिश्चन्द्र की हतक करते हैं, हमसे यह सहन नहीं हो सकता। हम कहते हैं कि जो लोग प्यारे भारतेन्दु के विषय में इतना ही जानते हैं वह चुप रहें, ऐसे फीके वाक्य कहकर हरिश्चन्द्र और भारतेन्दु के चकोरों को दुख न दें।''

[मित्र विलास पत्र के सम्पादक पं. गोपीनाथ लाहौरी का शोकोद्गार]

क़सीदा

अहा हा! क्या मज़ा है क्या बहारे बारिश आई है।
यह फ़स्ले फरहत अफ़जा कैसी सब के जी को भाई है॥
जिधर देखो तमाशाए तरावत बख्श हैं तुर्फ़ा।
जिसे देखो अजब एक ताज़गी चिहरे प छाई है॥
ज़मीं मारे खुशी के मू बतन है, घटा क्या?
चश्मे गरदू अश्के शादी से भर आई है।
इधर जंगल में मोरों को चढ़ी है नाचने की धुन।
उधर गुलशन में कोयल की सरे नग्मासराई है॥
कहे गर इन दिनों वायक कि मय पीना नहीं अच्छा।
तो बेशक मस्त कह बैठें कि तुमने भांग खाई है॥
किसी की कोई कुछ पर्वा नहीं करता ज़माने में।
सब अपने रंग माते हैं कुछ ऐसी बू समाई है॥
खिले जाते हैं, जामे में नहीं फूले समाते हैं।
सबा ने गोशे गुल में हां यह खुशख़बरी सुनाई है॥
कि जिसके नाम पर हरज़िन्दा दिल सौ जी से कुर्बा है।
खुदा का शुक्र वाजिब हैशिफ़ा आज उसने पाई है॥
भला वह कौन है यह मुज़दा सुन कर जो न कह उठता।
मुबारक हो मुबारक हो बधाई है बधाई है॥
ख़याल आया मुझे दिल में य किस्का गुम्ले सेहत है।
कि सारे हिन्द में जिस्की खुशी सबने मनाई है॥
तो मुलहिम ने कहा बाबू हरिश्चन्द्र इस्मे पाक उस्का।
नहीं मालूम? जिस्की मदहख्वां सारी खुदाई है॥
बनारस की ज़मीं नाज़ां है जिस्की पाय बोसी पर।
अदब से जिस्के आगे चर्ख़ ने गरदन झुकाई है॥
वही महताबे हिन्दुस्तां, वही ग़ैरत दिहे नैयर।
कि जिस ने दिल से हर हिन्दू के तारीकी मिटाई है॥

यही ईसाए दौरां जिसने हमकौमां की हिम्मत की।
हजारों साल पीछे लाशे बोसीदा जिलाई है॥
वही जिसने कि उर्दू देवनी के पंजए जुलसे।
बमद तदबीरो हिम्मत जान हिन्दी की बचाई है॥
वही जो आज मालिक है सब इल्मों के ख़जाने का।
वही मुल्के हमा खूबी प जिस्की बादशाई है॥
ज़िहे वह अफ़ज़लुलफुज़ला कि आज उस की शहादत में।
ब सिदक़े दिल हर एक उस्ताद ने उंगली उठाई है॥
सब उसके काम ऐसे हैं कि जिन को देख हैरत से।
हर एक आकिल ने अपनी दांत में उंगली दबाई है॥
उसे रहबर अगर इस मुल्क का कहिए तो लाबुद है।
उसी ने सब को पहिले राहे बहबूदी सुझाई है॥
बहुत लोगों को है दावा वतन की ख़ैरख्वाही का।
कोई पूछे तो इनसे चाल यह किसकी उड़ाई है॥
तरक्की क्या है कैसे होय है होता है क्या उससे।
किसी को कुछ ख़बर भी थी उसी ने सब बताई है॥
सिवा उसके जो सच पूछो तो ऐसा कौन है जिसने।
निकाली बात जो कुछ मुंह से है वह कर दिखाई है॥
उठे हैं किसके बारे इश्के हक़ हमदरदिए अख़वां।
सिवा उसके यह हिम्मत किसी कुदरत किसने पाई है॥
'बरहमन' यह सुरूर आया मुझे वसूफ उसका सुनने से।
कि मेरी रूह इस तन में नहीं फूली समाई है॥
लिखूं तारीफ़ कुछ उस्की यह मेरी तबअ ने चाहा।
तो फिर मुलहिम ने फ़रमाया गुमां बेजा यह भाई है॥
उसे क्या कोई दिखलाएगा अपने खामः के जौहर।
'रसा' है वह खुद उस्के ज़िहन की वां तक रसाई है॥
कि जिस जा ख्वाब में पहुंचे ख़याल इनसां का क्या मुमकिन।
फ़रिश्तों ने जहां जाने में अकसर ज़क् उठाई है॥
जहां तक कीजिए तौसीफ़ उसकी सब बजा लेकिन।
नहीं उरफ़ी को दावा दूसरों की क्या चलाई है॥
यही बिहतर कि उसके हक़ में हम हर दम दुआ मांगें।
यही बस फ़र्ज़ अपना है इसी में सब भलाई है॥
खुदाया खुश रहे वह फक्रे आलम रोजे महशर तक।
कि जिस्की ज़ाते बा बरकत को ज़ेबा सब बड़ाई है॥

[भारतेन्दु ऐसे सर्वजनप्रिय थे कि उनके रोगग्रस्त होने पर सभा में तमाम लोग आरोग्यकामना करते थे और स्वस्थ होने पर आनन्द मनाया करते थे। भारतेन्दु के रोग मुक्त होने पर पं. प्रतापनारायण मिश्र ने यह 'क़सीदा' लिखा था। इस क़सीदे के पूर्व्व उन्होंने यह टिप्पणी भी की थी—''श्रीमनमहामान्य भारत भूषण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी कई मास से बहुत अस्वस्थ थे परमानन्दप्रद भगवान ने बड़ी दया की कि उनको निरोग्य कर दिया। इस बात को सुन के कौन आर्य्य होगा जो प्रसन्न न हो। 23 जुलाई का 'मित्र विलास' देखने से ज्ञात हुआ कि इस मंगल समाचार को सुन के आगरे के बहुत सज्जनों ने उत्सव किया है। हम भी इस सुअवसर में एक क़सीदा बाबू साहब को भेंट करते हैं—शिवनन्दन सहाय 'श्री हरिश्चन्द्र' से साभार।]

आमन्त्रण पत्र

श्रीकृष्णः शरणम् मम।
श्री पंडितवर!

कलाऽऽलयो विष्णुपदा श्रयश्च
सुधासमाल्पाविदिग्विभागः।
श्रीमान 'हरिश्चन्द्र' इति प्रसिद्धो,
यो भारतेऽभूत्किल भारतेन्दुः॥1॥
तदीय सख्येन महानुभावाः,
यशः प्रकाशैः परिपूरिताशाः।
दयाद्वशा सूखिरा भवन्तः
पुमन्तु दत्त्वा ननु दर्शनं नः॥2॥

आपका सेवक
गोकुल चन्द्र

[भारतेन्दु की मृत्यु के पश्चात उनके सुहृद गोकुलचन्द्र के माघ पूर्णिमा सं. 1941 को पंडितों की सभा कराके उनकी आत्मा की शान्ति के लिए दान पुण्य किया था। उस अवसर पर पंडितों को उक्त आमन्त्रण पत्र भेजा गया था—सम्पा.]

[बाबू शिवनन्दन सहाय लिखित हरिश्चन्द्र से साभार]

बाबू रामदीन सिंह को दिया गया अधिकार पत्र

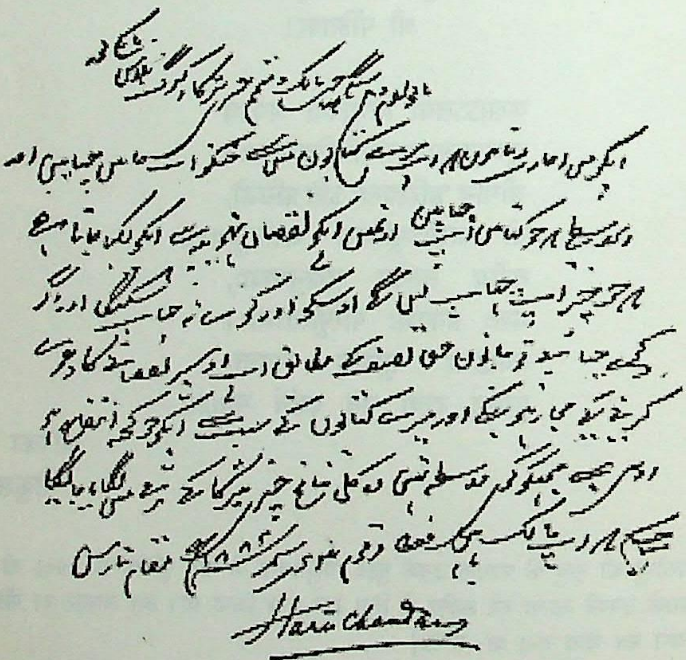

बाबू रामदीन सिंह साहब, मालिक व मुहर्तायन क्षत्रिय पत्रिका, खड्गविलास प्रेस बांकीपुर।

आप को मैं इजाजत देता हूं कि आप मेरे किताबों में से जिनको चाहें छापें और इस वास्ते कि जो किताब आप छापें उन में आप को नुकसान न हो। यह भी आप को लिखा जाता है कि जो चीज आप छाप लेंगे, उसको और कोई नहीं छाप सकेगा, और अगर कोई छापे तो कानून-हक-तसनीफ (कॉपीराइट) के मुताबिक आप उस पर नुकसानी का दावा करने को मजाज होंगे और मेरे किताब के सबब से आप

को जो कुछ इनतिफाअ हो उससे मुझको कोई वास्ता नहीं है। वह कुल मुनाफा क्षत्रिय पत्रिका के खर्चे में लगाया जायगा जिसके कि आप मालिक हैं।

फकत मरकूम 23 सितम्बर, 1882 ई.

मुकाम बनारस

हरिश्चन्द्र

सूचना

मेरी बनाई वा अनुवादित वा संग्रह की हुई पुस्तकों को श्री बाबू रामदेनी सिंह खङ्गविलास के स्वामी छाप सकते हैं जब तक जिन पुस्तकों को में छापते रहें और किसी को अधिकार नहीं कि छापै

[23 सितम्बर, 1882]

‘भारतेन्दु’ की पदवी

पं. सुधाकर जी द्विवेदी अपनी रामकहानी की भूमिका में लिखते हैं कि ‘‘यह मेरे सामने की बात है कि लाहौर के जल्ला पंडित के वंश के पंडित रघुनाथ जंबू के महाराज श्री रणबीर सिंह की नाराज़ी से जंबू छोड़ कर बनारस चले आए थे। उनसे और बाबू हरिश्चन्द्र जी से बहुत मेल था। बनारस के अति प्रसिद्ध विद्वान पंडित बाल शास्त्री ने जब अपनी व्यवस्था से कायस्थों को क्षत्री बनाया, उस समय बाबू साहब ने अपनी मैगजीन में ‘सबै जाति गोपाल की’ इस सिरनामे से काशी के पंडितों की बड़ी धूर उड़ाई। इस पर पंडित रघुनाथ जी बहुत नाराज होकर बाबू साहब से बोले कि ‘‘आप को कुछ ध्यान नहीं रहता कि कौन आदमी कैसा है, सभी का अपमान किया करते हो। जैसे आप अपने सुयश से ज़ाहिर हो उसी तरह भोगविलास और बड़ों के असम्मान करने से आप कलंकी भी हो, इसलिए आज से मैं आप को भारतेन्दु नाम से पुकारा करूंगा।’’ उस समय मैं और भरतपुर के राव श्रीकृष्ण देवशरण सिंह मौजूद थे। हम लोग भी हंसी से कहने लगे कि बस बाबू साहब सचमुच भारतेन्दु हैं। बाबू साहब ने भी हंसकर कहा कि ‘‘मैं नाराज़ नहीं हूं आप लोग खुशी से मुझे भारतेन्दु कहिए।’’ मैंने कहा कि ‘‘पूरे चांद में कलंक देख पड़ता है, आप दूइज के चांद हैं जिसके दर्शन से लोग पुण्य समझते हैं।’’ यह मेरी बात सब के मन में खुशी के साथ समा गई। धीरे धीरे इनकी पोथियों पर दूइज के चांद की सूरत छपने लगी। इस तरह अब आज इज्ज़त के साथ बाबू साहब भारतेन्दु कहे जाते हैं।’’

[हरिश्चन्द्र को भारतेन्दु की पदवी से विभूषित किए जाने से पूर्व ‘सार सुधानिधि’ पत्र में इस आशय की एक विज्ञप्ति छपी थी। तमाम लोगों के सकारात्मक जवाब और प्रयास के बाद ही उन्हें भारतेन्दु की उपाधि से विभूषित किया गया था]

[ब्रजरत्न दास की पुस्तक ‘भारतेन्दु हरिश्चन्द्र’ से साभार]

संक्षिप्त जीविनी

श्रीमान् कविचूड़ामणि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने सन 1750 ई. के सितम्बर मास की 9वीं तारीख को जन्म ग्रहण किया था। जब वह 5 वर्ष के थे तो उन की पूज्य माता जी, वो 9 वर्ष के हुए तो महामान्य पिताजी का स्वर्गवास हुआ, जिससे उन को माता पिता का सुख बहुत ही कम देखने में आया। उन को शिक्षा बालकपन से दी गई थी और उन्हों ने कई वर्ष लों कालेज में अंग्रेजी तथा हिन्दी पढ़ी थी। संस्कृत, फारसी, बंगला, महाराष्ट्री इत्यादि अनेक भाषाओं में बाबू साहिब ने घर पर निज परिश्रम किया था। इस समय बाबू साहिब तैलङ्ग तथा तामील भाषा को छोड़कर भारत की सब देश भाषा के पंडित थे। बाबू साहब की विद्वत्ता, बहुज्ञता, नीतिज्ञता, पांडित्य तथा चमत्कारिणी बुद्धि का हाल सब पर विदित है कहने की कोई आवश्यकता नहीं। इन की बुद्धि का चमत्कार देख कर लोगों को आश्चर्य्य होता था कि इतनी अल्प अवस्था में यह सर्वज्ञता! कविता की रुचि बाबू साहिब को बाल्यावस्था ही से थी, उन की समय की कविता पढ़ने से कि जब वह बहुत छोटे थे बड़ा आश्चर्य्य होता है और इस समय की तो कहना ही क्या है, मूर्तिमान आशुकवि कालिदास थे। जैसी कविता इन की सरस और प्रिय होती थी वैसी आज दिन किसी की नहीं होती। कविता सब भाषा की करते थे, पर भाषा की कविता में अद्वितीय थे। उन के जीवन का बहुमूल्य समय सदा लिखने पढ़ने में जाता था। कोई काल ऐसा नहीं था कि उन के पास कलम, दवात और कागज न रहता रहा हो। 16 वर्ष की अवस्था में कविवचन सुधा पत्र निकाला था, जो आज तक चला जाता है। इस के उपरान्त तो क्रमशः अनेक पत्र पत्रिकाएं और सैकड़ों पुस्तक लिख डाले जो युग युगान्तर तक संसार में उन का नाम जैसा का तैसा बनाये रक्खैंगे। 20 वर्ष की अवस्था अर्थात सन '70 में बाबू साहिब आनरेरी मैजिस्ट्रेट नियुक्त हुए और सन '74 तक रहे वो उसी के लगभग 6 वर्ष लों म्यूनिस्पल कमिश्नर भी थे। साधारण लोगों में विद्या फैलाने के लिए सन 1867 ई. में जब कि बाबू साहिब की अवस्था केवल 17 वर्ष की थी चौखम्भा स्कूल, जो अब तक उन की कीर्ति ध्वजा है, स्थापित किया, जिस के छात्र आज दिन एम.ए., बी.ए. बड़ी बड़ी तनख्वाह के नौकर हैं। लोगों के संस्कार सुधारने

तथा हिन्दी की उन्नति के लिए हिन्दी डिवेटिंग क्लब, अनाथरक्षिणी, तदीय समाज, काव्य समाज इत्यादि सभायें संस्थापित कीं और उन के सभापति रहे। भारतवर्ष के प्रायः सब प्रतिष्ठित समाज तथा सभाओं में से किसी के प्रेसीडेन्ट सेक्रिटरी, किसी के मेम्बर रहे। लोगों के उपकारार्थ अनेक बार देश देशान्तरों में व्याख्यान दिये। उन की वक्तृता सरस और सारग्राहिणी होती थी। उन के लेख तथा वक्तृत्व से देशगौरव झलकता था। विद्या का सम्मान जैसा बाबू साहिब करते थे वैसा करना आज कल कठिन है, ऐसा कोई भी विद्वान न होगा जिस ने इन से आदर सत्कार न पाया हो। यहां के पंडितों ने अपना अपना हस्ताक्षर कर के बाबू साहिब को प्रशंसा पत्र दिया था उस में उन लोगों ने स्पष्ट लिखा है कि–

''सब सज्जन के मान को कारन इक हरिचन्द।
जिमि सुभाव दिन रैन के कारन नित हरिचन्द॥''

बाबू साहिब दानियों में कर्ण थे, इतना ही कहना बहुत है। उन से हजारों मनुष्य का कल्याण होता रहा। विद्योन्नति के लिए भी उन्हों ने बहुत व्यय किया। 500 रु. तो उन्होंने पं. परमानन्द जी को शतसई की संस्कृत टीका का दिया था और इसी प्रकार से कालिज, वो स्कूलों में उचित पारितोषिक बांटे हैं। जब जब बंगाल, बम्बई, वो मदरास में स्त्रियां परिक्षोत्तीर्ण हुई हैं तब तब बाबू साहिब ने उनके उत्साह बढ़ाने के लिए बनारसी साड़ियां भेजी थीं। जिनमें से कई एक को श्रीमती लेडी रिपन ने प्रसन्नतापूर्व्वक अपने हाथ से बांटा था। बाबू साहब ने देशोपकार के लिए ''नेशनल फंड होम्योपैथिक डिस्पेंसरी, गुजरात वो जौनपुर रिलीफ फंड, सेलर्ज होम, प्रिंस ऑफ वेल्स हास्पिटल और लैब्रेरी'' इत्यादि की सहायता में समय समय पर चन्दा दिये हैं। गरीब दुःखियों की बराबर सहायता करते रहे।

गुणग्राहक भी एक ही थे, गुणियों के गुण से प्रसन्न होकर उन को यथेष्ट द्रव्य देते थे, तात्पर्य यह कि जहां तक बना, दिया देने से हाथ नहीं रोका।

देशहितैषियों में पहले इन्हीं के नाम पर अंगुली पड़ती है क्योंकि यह वह हितैषी थे कि जिन्होंने अपने देश गौरव को स्थापित रखने के लिए अपना धन, मान प्रतिष्ठा एक ओर रख दी थी और सदा उस के सुधारने का उपाय सोचते रहे। उन को अपने देशवासियों पर कितनी प्रीति थी यह बात उनके भारतजननी वो भारतदुर्दशा इत्यादि ग्रन्थों के पढ़ने ही से विदित हो सकती है। उन के लेखों से उनकी हितैषिता और देश का सच्चा प्रेम झलकता था।

यद्यपि बहुत लोगों ने उन को गवर्मेन्ट का डिस्लायल (अशुभचिन्तक) मान रक्खा था, यह उनका भ्रम था, हम मुक्त कंठ से कह सकते हैं कि वह परम राजभक्त थे। यदि ऐसा न होता तो उन्हें क्या पड़ी थी कि जब प्रिंस ऑफ वेल्स आये थे तो वह बड़ा उत्सव और अनेक भाषा के छन्दों में बना कर स्वागत ग्रन्थ (मानसोपायन) उन के अर्पण करते। ड्यूक ऑफ एडिनबरा जिस समय यहां पधारे थे बाबू साहिब

ने उन के साथ उस समय वह राजभक्ति प्रकट की कि जिससे ड्यूक उन पर ऐसे प्रसन्न हुए कि जब तक काशी में रहे उन पर विशेष स्नेह रक्खा। सुमनोञ्जलि उन के अर्पण किया था जिसके प्रति अक्षर से अनुराग टपकता है। महाराणी की प्रशंसा में मनोमुकुल माला बनाई। मिस्र-युद्ध के विजय पर प्रकाश्य सभा की, वो विजयिनी विजयबैजयन्ती बनाकर पूर्ण अनुराग सहित भक्ति प्रकाशित की। महाराणी के बचने पर सन 82 में चौकाघाट के बगीचे में भारी उत्सव किया था और महाराणी जन्म दिवस तथा राजराजेश्वरी की उपाधि लेने के दिन प्रायः बाबू साहिब उत्सव करते रहे। ड्यूक ऑफ अलबनी की अकाल मृत्यु पर सभा करके महाशोक किया था। जब जब देश हितैषी लार्ड रिपन आये उनको स्वागत कविता देकर आनन्दित हुए। सन '72 में म्यो मेमोरियल सिरीज में 1500 रु. दिए। यह सब लायल्टी नहीं तो क्या है?

बाबू साहिब भारतवर्ष के एज्यूकेशन कमीशन (विद्या समाज) के सम्य तो हुए ही थे परन्तु इन का गुण वह था कि विलायत में जो नेशनल एंथेम (जातीय गीत) के भारत की सब भाषाओं में अनुवाद करने के लिए महाराणी की ओर से एक कमेटी हुई थी उस के मेम्बर भी थे और उन के सेक्रिटरी ने जो पत्र लिखा था उस में उसने बाबू साहिब की प्रशंसा लिखकर स्पष्ट लिखा था कि "मुझ को विश्वास है कि आप की कविता सबसे उत्तम होगी" और अन्त में ऐसा ही हुआ। क्यों नहीं जब कि भारती जिह्वा पर थी। सच पूछिये तो कविता का महत्त्व उन्हीं के साथ गया। बाबू साहिब की विद्वत्ता और बहुज्ञता की प्रशंसा केवल भारतीय पत्रों ने नहीं की वरंच विलायत के प्रसिद्ध पत्र ओवरलेंड, इंडियन, और होममेल्स इत्यादिक अनेक पत्रों ने की है। उनकी बहुदर्शिता के विषय एशियाटिक सोसाइटी के प्रधान डॉ. राजेन्द्रलाल मित्र, एम.ए. शेरिंग, श्रीमान पंडितवर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर प्रभृति महाशयों ने अपने ग्रन्थों में बड़ी प्रशंसा की है। श्रीयुत विद्यासागर जी ने अपने अभिज्ञान शाकुन्तल की भूमिका में बाबू साहिब को परम अमायिक, देशबन्धु, धार्मिक और सुहृद इत्यादि बहुत कुछ लिखा है। बाबू साहिब अजातशत्रु थे इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं और उन का शील ऐसा अपूर्व्व था कि साधारणों की क्या कथा भारत-वर्ष के प्रधान प्रधान लोग भी इन पर पूरा स्नेह रखते थे। हां! जिस समय ये लोग यह अनर्थकारी घोर सम्वाद सुनेंगे उन को कितना कष्ट होगा।

बाबू साहिब को अपने देश के कल्याण का सदा ध्यान रहा करता था। उन्होंने गोवध उठा देने के लिए दिल्ली दरबार के समय 60000 हस्ताक्षर करा के लार्ड लिटन के पास भेजा था। हिन्दी के लिए सदा जोर देते गये और अपनी एज्यूकेशन कमीशन की साक्षी में यहां तक जोर दिया कि लोग फड़क उठते हैं। अपने लेख तथा काव्य से लोगों को उन्नति के अखाड़े में आने के लिए सदा यत्नवान रहे। साधारण की ममता इनमें इतनी थी कि माधोराव के धरहरे पर लोहे के छह लगवा

दिये कि जिससे गिरने का भय छूट गया। इनकम टैक्स के समय जब लाट साहिब यहां आये थे तो दीपदान की बेला दो नावों पर एक पर 'OH TAX' और दूसरी पर "स्वागत स्वागत धन्य प्रभु श्री सर विलियम म्योर। टैक्स छुड़ावहु सबन को विनय करत कर जोर॥" लिखा था। उस के उपरान्त टैक्स उठ गया लोग कहते हैं कि इसी से उठा। चाहे जो हो इसमें सन्देह नहीं कि वह अन्त तक देश के लिए हाय हाय करते रहे।

सन 1880 ई. के 27 सितम्बर के सारसुधानिधि पत्र में हमने बाबू साहिब को भारतेन्दु की पदवी देने के लिए एक प्रस्ताव छपवाया था और उसके छप जाने पर भारत वर्ष के हिन्दी समाचारपत्रों ने उस पर अपनी सम्मति प्रकट की और सब पत्र के सम्पादक तथा गुणग्राही विद्वान लोगों ने मिल उन को 'भारतेन्दु' की पदवी दी, तबसे वह भारतेन्दु लिखे जाते थे।

बाबू साहिब का धर्म्म वैष्णव था श्रीवल्लभीय। वह धर्म्म के बड़े पक्के थे, पर आडम्बर से दूर रहते थे। उन के सिद्धान्त में परम धर्म्म भगवत्प्रेम था। मत वा धर्म्म विश्वासमूलक मानते थे प्रमाणमूलक नहीं। सत्य, अहिंसा, दया, शील, नम्रता आदि चारित्र्य को भी धर्म्म मानते थे, वह सब जगत् को ब्रह्ममय और सत्य मानते थे।

बाबू साहिब ने बहुत सा द्रव्य व्यय किया, परन्तु कुछ शोच न था। कदाचित् शोच होता भी था तो दो अवसर पर, एक जब किसी निज आश्रित को या किसी शुद्ध सज्जन को बिना द्रव्य कष्ट पाते देखते थे, दूसरे जब कोई छोटे मोटे काम देशोपकारी द्रव्य भाव से रुक जाते थे।

हां! जिस समय हमको बाबू साहिब की यह करुणा की बात याद आ जाती है तो प्राण कंठ में आता है। वह प्रायः कहते थे कि 'अभी तक मेरे पास पूर्व्ववत बहुत धन होता तो मैं चार काम करता—(1) श्री ठाकुर जी को बगीचे में पधरा कर धूम धाम से षट्ऋतु का मनोरथ करता (2) विलायत, फरासीस, और अमेरिका जाता (3) अपने उद्योग से एक शुद्ध हिन्दी की यूनिवर्सिटी स्थापन करता। (हाय रे! हतभागिनी हिन्दी अब तेरा इतना ध्यान किसको रहेगा) (4) एक शिल्प कला का पश्चिमोत्तर देश में कालिज करता।'

हाय! क्या आज दिन उन बड़े बड़े धनिक मित्रों में से कोई भी मित्र का दम भरने वाला ऐसा सच्चा मित्र है जो उनके इन मनोरथों में से एक को भी उनके नाम पर पूरा कर के उनकी आत्मा को सुखी करै। हाय रे! हतभाग्य पश्चिमोत्तर देश, तेरा इतना भारी सहायक उठ गया, अब भी तुझसे उसके लिए कुछ बन पड़ेगा या नहीं? जब कि बंगाल और बम्बई प्रदेश में साधारण हितैषियों के स्मारक चिह्न के लिए लाखों बात की बात में इकट्ठे हो जाते हैं।

बाबू साहिब के खास पसन्द की चीजें राग, वाद्य, रसिक समागम, चित्र, देश देश और काल काल की विचित्र वस्तु और भांति भांति की पुस्तक थीं।

काव्य उनको जयदेव जी, देव कवि, श्री नागरीदास जी, श्री सूरदास जी, और आनन्दघन जी का अति प्रिय था। उर्दू में वजीर और अनीस का। वह अनीस को अच्छा कवि समझते थे।

सन्तति बाबू साहिब को तीन हुई। दो पुत्र एक कन्या। पुत्र दोनों जाते रहे, कन्या है, विवाह को गया।

बाबू साहिब कई बार बीमार हुए थे, पर भाग्य अच्छे थे इसलिए अच्छे होते गए। सन 1882 ई. में जब श्री मन्महाराणा साहिब उदयपुर से मिलकर जाड़े के दिनों में लौटे तो आते समय रास्ते ही में बीमार पड़े। बनारस पहुंचने के साथ ही श्वास रोग से पीड़ित हुए। रोग दिन दिन अधिक होता गया महीनों में शरीर अच्छा हुआ। लोगों ने ईश्वर को धन्यवाद दिया। यद्यपि देखने में कुछ रोज तक मालूम न पड़ा पर भीतर रोग बना रहा और जड़ से नहीं गया। बीच में दो एक बार उभड़ आया, पर शान्त हो गया था। इधर दो महीने से फिर श्वास चलता था, कभी कभी ज्वर का आवेश भी हो आता था। औषधि होती रही शरीर कृशित तो हो चला था पर ऐसा नहीं था कि जिससे किसी काम में हानि होती, श्वास अधिक हो चला क्षयी के चिह्न पैदा हुए। एकाएक दूसरी जनवरी से बीमारी बढ़ने लगी। दवा, इलाज सब कुछ होता था पर रोग बढ़ता ही जाता था। छठीं तारीख को प्रातःकाल के समय जब ऊपर से हाल पूछने के लिए मजदूरिन आई तो आपने कहा कि जाकर कह दो कि हमारे जीवन के नाटक का प्रोग्राम नित्य नया नया छप रहा है, पहिले दिन ज्वर की, दूसरे दिन दर्द की, तीसरे दिन खांसी की सीन हो चुकी, देखैं लास्ट नाइट कब होती है। उसी दिन दोपहर से श्वास वेग से आने लगा कफ में रुधिर आ गया। डाक्टर वैद्य अनेक मौजूद थे और औषधि भी परामर्श के साथ करते थे परन्तु 'मर्ज बढ़ता ही गया ज्यौं-ज्यौं दवा की।' प्रति क्षण में बाबू साहिब डॉक्टर और वैद्यों से नींद आने और कफ के दूर होने की प्रार्थना करते थे, पर करैं क्या काल दुष्ट तो सिर पर खड़ा था, कोई जाने क्या। अन्ततोगत्वा बात करते ही करते पौने 10 बजे रात को भयंकर दृश्य आ उपस्थित हुआ। अन्त तक श्रीकृष्ण का ध्यान बना रहा। देहावसान समय में श्रीकृष्ण! श्रीराधाकृष्ण! हे राम! आते हैं मुख देखलाओ' कहा, और कोई दोहा पढ़ा जिसमें से श्रीकृष्ण...सहित स्वामिनी...' इतना धीरे स्वर से स्पष्ट सुनाई दिया। देखते ही देखते प्यारे हरिश्चन्द्र जी हम लोगों की आंखों से दूर हुए। चन्द्रमुख कुम्हिला कर चारों ओर अन्धकार हो गया। सारे घर में मातम छा गया, गली गली हाहाकार मचा, और सब काशी वासियों का कलेजा फटने लगा लेखनी अब नहीं आगे बढ़ती बाबू साहिब चरणपादुका पर...

हां काल की गति भी क्या ही कुटिल होती है। चाञ्चक काल निद्रा ने भारतेन्दु को अपने वश में कर लिया कि जिसमें सब के सब जहां तहां पाहन से खड़े रह गये। वाह रे दुष्ट काल! तूने इतना समय भी नहीं दिया जो बाबू साहिब अपने परम

प्रिय अनुज बाबू गोकुलचन्द्र जी वो बाबू राधाकृष्ण जी तथा अन्य आत्मीयों से एक बार भी अपने मन की बात भी कहने पाते और हमको जिसे उस समय यह भयंकर दृश्य देखना पड़ा था, इतना अवसर भी न मिला कि अन्तिम सम्भाषण कर लेते। हा! हम अपने इस कलंक को कैसे दूर करैं। वह मोहनी मूर्ति भुलाये से नहीं भूलती पर करैं क्या? बाबू साहिब की अवस्था कुल 34 वर्ष, 3 महीने 7 दिन 17 घं. 7 मि. और 48 से. की थी। पर निर्दय काल से कुछ वश नहीं।

॥इति॥

(यह जीवनी पं. रामशंकर व्यास द्वारा लिखी गई है। इसका प्रकाशन 'चन्द्रास्त' के साथ ही हुआ था।)

A short account of Babu Harischandra

Written by Ramasankara Vyasa

The ancestors of the author of this work were very rich and much respected, holding high positions at Delhi and Gour Royal Durbars. That first settled in Gour (Lakhanouti in Bengal) and then at Rajmahal and Murshidabad. His great-grand-father Babu Fatehchandra Sahu came to Benares and resided there. He had nine brothers, three of them were entitled Rajas; one Ray Bahadur and the rest Babus; but only his great-grand-father had issue. He rendered very good services to the British Government and greatly assisted Judicial authorities in the discharge of their duties. Mr. Duncan was much obliged to him for his valuable services during the Permanent Settlement. Babu Harakachandra was the only son of Babu Fatehchandra and the only heir to such an illustrious family of ten brothers. He was so popular in the country that his name is still sung in the family songs, lavanis, shair, etc. His name is well known in India as a famous Mahajan and man of generosity. Babu Gopalchandra was Babu Harakchandra's only son. He died at the early age of 27 and in the same short period he wrote forty works in Hindi and Sanskrit. He named himself Giridharadasa in his words. He left two sons, the elder of these two is our eminent author and the younger Babu Gokulchanda. Our author was born on the 9th September 1850 A.D. His mother died when he was 5 years old and his reverend father left him totally an orphan at the age of 9. He was educated in the Queen's College' Benares, for a few years but the thorough knowledge which he gained of Sanskrit, Persian and Bengali, was the result of his private study and his own genius. From his early age he used to compose poetry and in 1864 at the age of only 14 his first Drama was published. He was an Honorary Magistrate and a Municipal Commissioner for four years. He

lost no opportunity to come forward in showing loyalty to the Throne when Princes of the Royal blood visited this country. His liberal hand supported good many poor countrymen at all public events. He started a paper Kavivachanasudha, which is still in existence and two monthly magazines. If all the works which he has published in the said papers be collected their number will be more than three hundred. He has contributed not only to these three but to almost all the Hindi Journals and Periodicals. His liberality is so unlimited that for its sake he is often in trouble. A school in the midst of the city is existing as a good example of his liberality. He can read and write almost all the languages of India, Telgu and Tamil. His thoughts also are very liberal and that is the cause that he is not so much liked by the bigoted aristocracy. All Hindi Newspapers and leading Hindi and Sanskrit scholars of India have given him the title of Bharatendu (Moon of India).

List of the books compiled by Babu Harishchandra, Published separately, Benares.

1. Mudrarakshasa Nataka (Translation of Sanskrita Drama, with commentary and a brief review of that period).
2. Satya Harishchandra (an original Drama in Hindi).
3. Kashmirakusuma (History of Kashmir).
4. Karpuramanjari (from original, Prakrita).
5. Niladevi (original Drama).
6. Vidyasundar (translated from a Bengalee Drama).
7. Bharata Durdasha (a farce).
8. Bharata Janani (a Drama).
9. Bharata Biratva (a poem).
10. Bharata Bhiksha (a poem).
11. Vijjayini Vijaya Vaijayanti (a peom).
12. Dhananjay Vijay (from a Sanskrit Drama).
13. Bhakti Sutra Vaijayanti (philosophy of faith).
14. Narada Sutra Bhashya (Do).
15. Tadiya Sarbaswa (Do).
16. Andhera Nagari (a farce).
17. Madhu Mukula (a poem).
18. Prema Taranga (a poem).
19. Premashru Varsana (a poem).
20. Phulon ka Guchchha (a poem).

21. Prema Malika (a poem).
22. Prema Phulawari (a poem).
23. Prema Madhuri (a poem).
24. Gita Gobindananda (a poem from Jayadeva with his life).
25. Prema Jogini.
26. Pratah Smarana Mangala Patha.
27. Utsawawali.
28. Nataka (teaches Drama writing and playing).
29. Bhruna Hatya.
30. Hindi Prathama Vyakarana.
31. Manalila Phula-bujhauwal.
32. Pancha Pavitratma (lives of Mohmet, Fatima, Ali, Hasan and Husain with dates of different Mohamadan Imams).
33. Chakk Chakkawa Chakra (a brief sketch of the dates, &c., of Indian Kings).
34. Gomahima.
35. Satipratapa (a drama on chastity).
36. Varsa Malika.
37. Madhyanha Sarani.
38. Tazirat Shouhar (Persian character).
39. Witness on Education of India (English).
40. Jaina Kutuhala.
41. * Chamanistan Hameshabahar.
42. * Sundari Tilaka.
43. * Rasa Barasata.
44. * Gulzarpurbahar.
45. * Nai Bahar.
46. * Ramarya.
47. Holi.
48. * Sita Ram Vivah Mangal.
49. Stotra Pancharatna.
50. Offering of flowers to H.R.H. the Duke of Edinburgh.
51. Manasopayana to H.R.H. the Prince of Wales.
52. Mano Mukulu Mala to H.E.M. the Empress of India.
53. Louisa biwaha Varnana.
54. Kajali, Malar, Hindola Sangrah.
55. ** Nawa Malika (an original drama).
56. ** Bharatavarsha and Vaishnawism.

57. **Ham Murti pujaka hain.
58. Sita bata Nirnaya.
59. Chandrawali Natika (an original Drama).
60. Sangita Sar (To teach music).
61. *Sri Radha Suddha Shatak.
62. Lives of Vikrama and Bilhana.
63. *Urdhpundra Martanda.
64. Bhakta Sarvaswa.
65. Vaishnawa Sarvaswa.
66. Vallabhi Sarvaswa.
67. Yugula Sarvaswa.
68. Vaidiki hinsa hinsa na bhawati (Vaidic killing is not a killing).
69. Pakhanda Vidambana.
70. Delhi Darbar Darpana.
71. Karttika Karma Vidhi.
72. Karttika Naimittika Kritya.
73. Baisakh Snana Vidhi.
74. Magha Snana Vidhi.
75. Purushottama Masa Vidhana.
76. Margashirsa mahima.
77. Agarwalon ki Utpatti.
78. Karttika Snana (a poem).
79. Prema Pralapa.
80. Kalachakra.
81. Bhangdarbhang.
82. Rajakumar Biwah barnana.
83. Burhwa Mangal.
84. Visasya visa-moushadham (Bhana).
85. Sri Sita Vallabha Stotra.
86. Puranopakramanika (or a key to 18 Purans).
87. Life of Suradas.
88. Life of Ramanuja Swami.
89. Uttarardha Bhaktamala.
90. *Satsayi Shringara.
91. Origin of Khatris.
92. Prema Sarowara.
93. Parihasini.

94. Ramayan ka Samaya (Review of Valmiki's time.)
Besides these his numerous compositions, translations and editions were published in the Kavivachanasudha, Harischandra's Magazine and Balabodhini.

[First life sketch of Bharatendu Harish Chandra Published in 1884 with the book Kashmir-Kusum]

भारतेन्दु की जन्मकुंडली

श्री बाबू हरिश्चन्द्रजी की
जन्मपत्री
यूरोपियन रीत्यनुसर
सुधाकर द्विवेदि-विरचित
1884

जन्मकुंडली

श्रीः
भूमिका

इष्ट समय में क्रान्तिवृत्त और नाड़ीवृत्त का जहां सम्पात हो उस बिन्दु से गणना कर आकाशस्थ पदार्थों का जो मान सिद्ध होता है उसे सायनमान कहते हैं और इसी मान से सब आकाशस्थ पदार्थ यथार्थ आकाश में देख पड़ते हैं। हमारे यहां के अति प्राचीन महर्षिगण भी इसी सायनमान को मुख्य मानते थे यथा वराहमिहराचार्य अपनी संहिता में लिखते हैं कि "आश्लेषार्धाद्दक्षिणमुत्तरमयनं घनिष्ठाद्यम्। नूनं कदाचिदासीद्येनौक्तं पूर्वशास्त्रेषु" अर्थात किसी समय में आश्लेषा नक्षत्र के उत्तरार्ध के आरम्भ ही से दक्षिण अयन और धनिष्ठा नक्षत्र के आरम्भ ही से उत्तर अयन होता था इस में किसी प्रकार का संशय नहीं क्योंकि प्राचीन शास्त्रों में महर्षियों ने ऐसा ही लिखा है। इसी प्रकार ज्यौतिषवेदाङ्ग जिस से प्राचीन ज्यौतिषशास्त्र में कोई पुस्तक नहीं है उस में लिखा है कि "खराक्रमते सोमार्कौ यदा साकं सवासवौ। स्यात्तदादियुगं माघस्तपः शुक्लायनं ह्युदक्" अर्थात जब सूर्य चन्द्रमा दोनों धनिष्ठा के आद्य में हो साथ ही आकाश में चलैं वही आदि युग है और उसी दिन से उत्तर अयन आरम्भ होता है। जिस समय में यह स्थिति रही होगी उस समय में ज्यौतिषसिद्धान्त विद्या के बल से सिद्ध होता है कि तेईस अंश बीस कला ऋण अयनांश था और आजकल बाईस अंश के लगभग अयनांश है इसलिए दोनों का अन्तर पैंतालिस अंश बीस कला वा सोरह हजार तीन सौ बीस विकला हुआ। अब यदि एक वर्ष में अयनांश की गति पचास विकला मानो तो उस समय से आज तक तीन हजार दो सै चौंसठ वर्ष हुए। सृष्टि के आरम्भ ही में लोग सब विद्या में नहीं निपुण हो सत्ता इसलिए पूर्व्व संख्या में दो हजार वर्ष जोड़ के, यूरोप देश के विद्वान लोग सृष्टि के आरम्भ का समय पांच हजार वर्ष के लगभग बताते हैं। वे लोग इस पांच हजार वर्ष को स्थिर करने के लिए हमारे ही शास्त्रों से अनेक प्रमाण देते हैं, इस छोटी सी पुस्तक में जिन का लिखना मैं व्यर्थ समझता हूं।

निदान यह सायन गणना चिरकाल से इस भारतवर्ष में प्रसिद्ध थी पीछे से साधारण

लोगों ने आलस्य से इस सायन गणना को छोड़ निरयण गणना आरम्भ किया। सायन गणना में प्रतिवर्ष यन्त्रादि द्वारा आकाशस्थ पदार्थों का वेध करना पड़ता है तभी सब वस्तु यथार्थ सिद्ध होते हैं अन्यथा अन्तर पड़ने लगता है, ऐसा ही सूर्य्यसिद्धान्त में भी लिखा है कि "गोलंबद्ध्वा परीक्ष्यते नक्षत्रध्रुवकानूस्फुटान" अर्थात गोलयन्त्र को बनाकर नक्षत्रादिकों का ध्रुवा शोधना चाहिए। मैं अनुमान करता हूं कि पीछे से लोग यन्त्रद्वारा वेध करने में आलस्य करने लगे इसीलिए निरयण गणना आरम्भ हुई। अब आजकल भारतवर्ष के ज्यौतिषी लोग सृष्टि के आरम्भ में जिस बिन्दु पर क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्त का सम्पात था उस बिन्दु से गणना करते हैं और इन लोगों के मत से सृष्टि के आरम्भ से आज तक 1972948984 इतने वर्ष हुए, इसलिए हम लोग वेधद्वारा अब कभी नहीं निश्चय कर सकते कि यथार्थ में आजकल वह बिन्दु कहां है और जब तक उस विन्दु का निर्णय न होगा तब तक निरयण गणना ठीक है वा नहीं इसका भी ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए निरयण गणना केवल प्राचीनों के बचन ही के विश्वास से मान्य है आकाश में कोई उसे दिखा नहीं सकता। निदान इन सब बातों का यथार्थ विचार कर और यूरोप देश के गणित के अनुसार अनेक नये मत हुए हैं उन के कारण से यूरोप देश के फलितवेत्ता जाडकील इत्यादि अनेक प्रकार के फल कहते हैं इत्यादि जान, श्रीमान भारतभूषण भारतेन्दु गुणिजनगुणगणज्ञैकमूर्त्ति श्रीबाबू हरिश्चन्द्र महाशय ने मुझसे कहा कि जिस सायन गणना से महाराज[1] रामचन्द्रादि की कुंडली पूर्व्व समय में बनी हुई है उसी गणना से आप एक हमारी कुंडली ऐसी बनाइए कि जिस के देखने से अनेक चमत्कार जान पडैं। इसलिए केवल पूर्वोक्तं महाशय की इच्छा पूरी करने के लिए और गुणिजनों के विनोदार्थ सायन और निरयण गणना दोनों पर से मैंने इस कुण्डली की रचना की। जिस प्रकार से गर्ग्गाचार्य्यादिकों ने श्रीकृष्णचन्द्रादिकों की कुण्डली यथार्थ आकाशस्य दृश्य ग्रहों पर से बनाकर भाग्योदयादि का विचार किया है ठीक उसी प्रकार से इस कुंडली में भी सब यन्त्रद्वारा ठीक ठीक यथार्थ दृश्यग्रह लिखे हुए हैं। इस कुंडली के अन्त्य में हमारे यहां के प्राचीन ऋषियों के मत से जो गुलिक और धूमादि उपग्रह उत्पन्न होते हैं उनको भी चमत्कारार्थ लिख दिया है। यद्यपि केतुओं की गति अनियत है तथापि हमारे यहां के प्राचीन महर्षियों ने कितने केतओं की वेध द्वारा नियत गति जान कदाचित गुलिकादि और धूमादि नाम से उन का प्रकाश किया हो तो आश्चर्य्य नहीं। विशेष वस्तु इस कुंडली के देखने ही से विदित हो जायगा मेरा विशेष लिखना कुछ आवश्यक नहीं।

बनारस, खजुरी
1883 ईसवी

सुधाकर द्विवेदी

---

1. सायन गणना न मानने से श्री रामचन्द्रजी का जन्म नवमी तिथि को नहीं आता।

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

स जयति सिन्धुरवदनो देवो यत्पादपङ्कजस्मरणम्।
वासरमणिरिव तमसां राशिं नाशयति विघ्नानाम्॥1॥

सन 1850 सेप्टेम्बर मास की नवीं तारीख़ सोमवार के आधीरात के अनन्तर 4 घंटा 37 मिनट 12 सेकंड पर काशी में (जहां का अक्षांश=25°; 16') श्रीमान बाबू हरिश्चन्द्र जी का जन्म हुआ। उस समय में ग्रीनविच यन्त्रालय में दोपहर के अनन्तर 11 घंटा 5 मिनट 30 सेकंड बजे थे। दोपहर दिन में ग्रहों का ज्ञान कर जन्म समय का ग्रह जानने के लिए चालन का समीकरण $\frac{\text{गति}}{2}-\frac{\text{गति}}{20}+\frac{\text{गति}}{80}-\frac{\text{गति}}{2880}$ इसे लाघव से $\frac{\text{गति}}{2}(1-\frac{1}{10}+\frac{1}{40}-\frac{1}{1440})$ ऐसा भी लिख सकते हैं।

पूर्वोक्त समीकरण से जन्म समय का रवि अयनांश संस्कृत=166°। 51'। 46'.7 इसे 5 राशि 16 अंश 51 कला 47 विकला ऐसा भी बोलते हैं उस समय में रवि अपनी कक्षा क्रान्तिवृत्त को छोड़ उस के उत्तर 0'.55 इतने अन्तर पर था, पृथ्वी[1] के मध्य से सूर्य्य की दूरी का लघुरिक्थ (अर्थात Logarithms) =0.0027851 रवि की उत्तरक्रान्ति अर्थात लङ्का से जितना उत्तर ओर हटा हुआ है उस्का मान=5°। 11'। 26'7। स्पष्ट सायन चन्द्र=216°। 38'। 9'.6=7 राशि 6 अंश 38 कला और 10 विकला, चन्द्रमा और रवि के कक्षावृत्तों का अन्तर अर्थात उत्तर शर=5°। 10'। 13' लङ्का में चन्द्रमा का दक्षिण अन्तर अर्थात

दक्षिणा क्रान्ति=8°। 51'। 35'.1
बुध की दक्षिण क्रान्ति=7°। 14'। 35'.7
पृथ्वी के मध्य से दूरी का लघुरिक्थ=0.0058696
शुक्र की दक्षिण क्रान्ति=13°। 30'। 20'.5
दूरी का लघुरिक्थ=9.9435764
मङ्गल की दक्षिणा क्रान्ति=4°। 5'। 52'.4
दूरी का लघुरिक्थ=0.3908982
वेस्टा की उत्तर क्रान्ति=8°। 40'
दूरी का लघुरिक्थ=0.5181
जूनो की दक्षिण क्रान्ति=3°। 16'।
दूरी का लघुरिक्थ=0.6004

1. मध्यमान से भू से रवि की दूरी=91533000 मील इसका अपवर्त्तन तब सब दूरियों का लघुरिक्थ निकाला गया और जिस्का लघुरिक्त ऋण आता है उसमें दश जोड़ के धनभाग किया है।

पलाश की उत्तरा क्रान्ति=5°। 12'
पलाश की दूरी का लघुरिक्थ=0.3812
सीरीज़ की दक्षिणा क्रान्ति=12°। 10'
सीरीज़ की दूरी का लघुरिक्थ=0.3008
वृहस्पति की उत्तरा क्रान्ति=1°। 5'। 24'
वृहस्पति की दूरी का लघुरिक्थ=0.8078884
प्रशन की उत्तरा क्रान्ति=5°। 13'। 20'.5
दूरी का लघुरिक्थ=0.9297921
जे आरजेन वा यूरेनस अथवा हर्षल को उत्तरा क्रान्ति=10°। 54'। 3'.7 दूरी का लघुरिक्थ=1.2815007

जन्म के समय में सूर्य्यलोक में बसने वालों के अभिप्राय से ग्रहों का मान

बुध=269°। 15'। 24'.1=8 राशि 29 अंश 15 कला 24 वि. क्रान्तिवृत्त से दक्षिण अन्तर अर्थात दक्षिण शर=4°। 45'। 34'.6 सूर्य्य से बुध की दूरी का लघुरिक्थ=9.6655258 इसी प्रकार
शुक्र=288°। 40'। 48'8=9 राशि 18 अंश 40 कला 49 वि.
सूर्य्य सम्बन्धि दक्षिण शर=1°। 51'। 58.7
सूर्य्य से दूरी का लघुरिक्थ=9.8620967
मङ्गल=206°। 32'। 42'.7= 6 राशि 26 अंश 32 कला 43 वि.
सूर्य्य सम्बन्धि उत्तर शर=0°। 41'। 16'9
सूर्य्य से दूरी का लघुरिक्थ=0.8620697
वेस्टा–172°। 30'=5 राशि 22 अंश 30 कला
सूर्य्य सम्बन्धि उत्तर शर=6°। 40'
सूर्य्य की दूरी का लघुरिक्थ=0.3618
जूनो=220°। 54'=7 राशि 10 अंश 54 कला
सूर्य्य सम्बन्धि उत्तर शर=10°। 5'
सूर्य्य की दूर का लघुरिक्थ=0.5216
पलाश=331°। 54'=11 राशि 1 अंश 54 कला
सूर्य्य सम्बन्धि उत्तर शर=13°। 48'
सूर्य्य से दूरी का लघुरिक्थ=0.5220
सीरीज़=358°। 53'=11 राशि 28 अंश 53 कला
सूर्य्य सम्बन्धि दक्षिण शर=10°। 31'
सूर्य्य की दूरी का लघुरिक्थ=0.4691
गुरु=182°। 11'। 15'.9=6 राशि 2 अंश 11 कला 16 वि.
सूर्य्य सम्बन्धि उत्तर शर=1°। 18'। 9'.4

सूर्य्य की दूरी का लघुरिक्थ=0.7363454

शनि=16°। 26'। 49'.5=0 राशि 16 अंश 26 कला 40 वि.

सूर्य्य सम्बन्धि दक्षिण शर=2°। 28'। 4'.11

सूर्य्य से दूरी का लघुरिक्थ=0.9716068

जे आरजेन वा यूरेनस अथवा हर्षल=27°। 53। 43'.7=0 राशि 27 अंश 53 कला 44 विकला

सूर्य्य सम्बन्धि दक्षिण शर=0°। 33'। 5'.9

सूर्य्य की दूरी का लघुरिकूथ=1.2981616।

सूर्य्यलोक का ग्रह जान के उस पर से सूर्य्य और ग्रह का अन्तर जान भूलोक का ग्रह जानने के लिए नीचे लिखे हुए समीकरण सब गणकों के लिए बहुत उपयोगी हैं।

$$\frac{\text{ज्यामश.रक}}{\text{त्रि}} = \text{इ}, (1) \quad \frac{\text{त्रि.इ}}{\text{भूक}} = \text{ज्यास्पश} \, (2)$$

$$\frac{\text{भूक.कोज्यास्पश}}{\text{त्रि}} = \text{भू'क}, (3) \quad \frac{\text{रश्रु. ज्याअं}}{\text{भू'क}} = \text{ज्याशीफ} \, (4)$$

इन चारों समीकरणों में

मश=सूर्य्य सम्बन्धि ग्रहों का शर।

रक=सूर्य्य से दूरी का मान

भूक=पृथ्वी से दूरी का मान

स्पश=पृथ्वी सम्बन्धि शर

भूक=योजनात्मक स्पश की कोटिज्या

अं=रवि और ग्रह का अन्तर

रश्रु=पृथ्वी से सूर्य्य की दूरी

शीफ=रविलोक का ग्रह और भूलोक का ग्रह इन का अन्तर।

पूर्वोक्त चारों समीकरणों से जन्म समय में भूलोक के अभिप्राय से ग्रहों के मान

बुध=193°। 12'। 45'.1=6 राशि 13 अंश 12 कला 45 विकला, स्पष्ट शर=2°। 10'। 19' दक्षिण

शुक्र=211°। 45'। 14'.8=7 राशि 1 अंश 45 कला 15 विकला, स्पष्ट शर=1° ।13' ।44' दक्षिण

मङ्गल=191°। 24'। 0'.7=6 राशि 11 अंश 24 कला 1 विकला, स्पष्ट शर= 0°। 26'। 51' उत्तर

वेस्टा=170°। 47'=5 ऱाशि 20 अंश 47 कला स्पष्ट शर=4°। 43'। 54' उत्तर

जूनो=208°। 58'=6 राशि 28 अंश 58 कलास्पष्ट शर=8'°। 23'। 46' उत्तर

पलाश=325° । 21'=10 राशि 25 अंश 21 कला स्पष्टशर=19° । 15' । 40' उत्तर

सीरीज़=5° । 8'=0 राशि 5 अंश 8 कला स्पष्टशर=15° । 35' । 59' दक्षिण

गुरु=179° । 48' । 52'.9=5 राशि 29 अंश 48 कला 53 विकला, स्पष्टशर=1° । 6' । 17' उत्तर

शनि=19° । 47' । 57'.5=0 राशि 19 अंश 47 कला 57 विकला स्पष्ट शर=2° । 43'. । 43' दक्षिण

यूरेनस=29° । 52' । 32'.7=0 राशि 29 अंश 52 कला 33 विकला स्पष्ट शर=0° । 34' । 23' दक्षिण

स्पष्ट ग्रहों का चक्र संस्कृत के अनुसार

र	चं	बु	शु	मं	वे	ञ्र	प	सौ	गु	श	यू	अ
5	7	9	7	6	5	6	10	0	5	0	0	रा
16	6	13	1	11	20	28	25	5	29	19	29	अं.
51	38	12	45	24	20	58	21	8	48	47	52	क.
47	10	45	15	1	0	0	0	0	53	57	33	वि.
उ	द	द	द	द	उ	द	उ	द	उ	उ	उ	दिशाक्रान्ति
5	8	7	13	4	8	3	5	12	1	5	10	अं.
11	51	14	30	5	40	16	12	10	5	13	54	क.
27	35	36	20	52	00	00	00	00	24	20	4	वि.
उ	उ	द	द	उ	उ	उ	उ	द	उ	द	द	दिशाशर
0	5	2	1	0	4	8	19	15	1	2	0	अं.
0	10	10	13	26	43	23	15	35	6	43	34	क.
1	13	19	44	51	54	49	40	59	17	43	23	वि.

स्पष्ट ग्रहों का चक्र अंगरेजी के अनुसार

Geo-centric=भूकेन्द्राभिप्राय से

	Longitude.	Declination.	Latitude.
☉	29°...53'	N.10°54'	S. 0°34'
☾	19°...48'	N. 5°13'	S. 2°44'
♃	29°...49'	N. 1°5'	N. 1°6'

⚳	5°...8'	S.12°10'	S.15°36'
⚴	25°...21'	N. 5°12'	N. 19°16'
⚵	28°...58'	S. 3°16'	N. 8°24'
⛢	20°...27'	N. 8°40'	N. 4°44'
	11°...24'	S. 4°6'	N. 0°27'
♀	1°...45'	S. 13°30'	S. 1°14'
☿	13°...13'	S.7°15'	S. 2°10'
☾	6°...38'	S.8°52'	N. 5°10'
☉	16°...52'	N.5°11'	N. 0°0'1"

शीघ्र ज्ञान होने के लिए ग्रहों का और राशियों का स्वरूप

☉=रवि	⚴=पलाश	♈=मेष	♎=तुला
☾=चन्द्र	⚳=सीरीज़	♉=वृष	♏=वृश्चिक
☿=बुध	♃=गुरु	...=मिथुन	♐=धन
♀=शुक्र	♄=शनि	♋=कर्क	...=मकर
♂=मंगल	⛢=यूरेनस	♌=सिंह	...=कुम्भ
⚶=वेष्ट	☊=राहु	♍=कन्या	♓=मीन
⚵=जूनो	☋=केतु	N=उत्तर	S=दक्षिण

Longitude=ग्रह का राश्यादि. Declination=क्रान्ति. Latitude=शर.

गणितशास्त्र के अनुसार राहु और केतु की ग्रहों में गणना नहीं है परन्तु भारतवर्ष के फलितवेत्ताओं ने ग्रह माना है इसलिए जन्मसमय में सायन राहु=132°। 50'। 42"=4 राशि 12 अंश 50 कला 42 विकला, सायन केतु=312°। 50'। 42"=10 राशि 12 अंश 50 कला 42 विकला।

यदि जन्मसमय में साढ़े इक्कीस अंश अयनांश मानो तो निरयण ग्रह

र=4 रा=25 अंश 21 क 47 वि।	चं=6 रा 15 अंश 8 क 10 वि।
बु=5 रा 21 अंश 42 क 45 वि।	शु=6 रा 10 अंश 15 क 15 वि।
मं=5 रा 19 अंश 54 क 1 वि।	वे=4 रा 28 अंश 57 कला।
जू=6 रा 7 अंश 28 कला।	प=10 रा 3 अंश 51 कला।
सौ=11 रा 13 अंश 38 कला।	गु=5 रा 8 अंश 18 क 53 वि।

श=11 रा 28 अंश 17 क 57 वि। यू=0 रा 8 अंश 22 क 33 वि।

ये ठीक ग्रह वैसे जैसे आजकल श्रीबापूदेवशास्त्री के पञ्चाङ्ग में सब ग्रह लिखे रहते हैं अर्थात यदि जन्म के समय में बापूदेवशास्त्री का पञ्चाङ्ग होता तो उसके अनुसार वेस्टा, जूनो, पलाश, सीरीज़ और यूरेनस को छोड़ बाकी सब ग्रह पूर्व्व लिखे हुए ग्रहों के तुल्य होते। जन्म समय में निरयण राहु=3 रा 21 अं 20 क 42 वि, निरयण केतु=9 रा 21 अं 20 कला 42 विकला। जन्म समय में स्पष्ट दिनार्ध=6 घंटा 9 मिनट 50 सेकंड। आकाश के बीच से पूर्व्व की ओर झुका हुआ रवि का भूतकाल=7 घंटा 17 मिनट 50 सेकंड। रवि का विषुवांश=167° । 54° । 55°6 इसमें नवकाल का अंश घटा देने से आकाश के मध्य का विषुवांश=58° । 27' । 31 6 आकाश के मध्य का भुजांश=60° । 37' । 8" अर्थात उस समय में आकाश का मध्य मिथुन राशि के 37 कला 4 विकले पर था। आकाश का मध्य और लग्न का अन्तर=91° । 2' । 15" इसे आकाश के मध्य में जोड़ देने से सायन लग्न=149° । 29' । 47" =4 राशि 29 अंश 29 कला 47 विकला। निरयण लग्न=4 रा 7 अं 57 कला 47 विकला

और सायन पृथ्वी

= 10 राशि 16 अंश 51 कला 47 विकला, सूर्य्यलोक के वश से और निरयण पृथ्वी

= 10 राशि 25 अंश 21 कला 47 विकला, सूर्य्यलोक के वश से।

सायन जन्मकुंडली

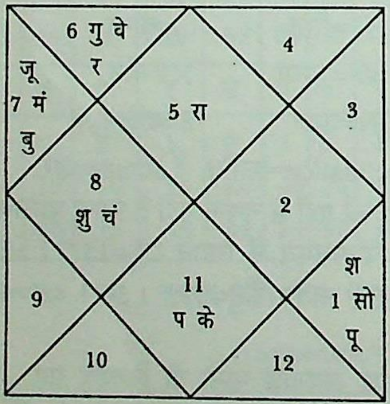

निरयण जन्मकुंडली

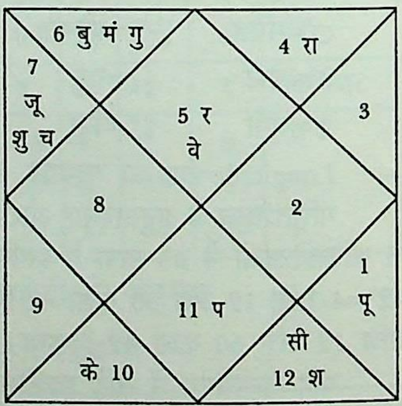

विलायत में यदि जन्मकुंडली भेजना हो तो ठीक नीचे को नकल भेजना चाहिए।

Babu Harischandra is born at 4th 37m 12" A. M. of September 9, 1850 at Benares, in lat. 25° 16' N. and long. 83' E. of Greenwitch.

SPECULAM

Planetes	Geocentric Longitude.	Apparent Declination.	Latitude.
☉	29°...53'	N.10°54'	S. 0°34'
☾	19°...48'	N. 5°13'	S. 2°44'
♃	29°...49'	N. 1°5'	N. 1°6'
⚳	5°...8'	S.12°10'	S.15°36'
♀	25°...21'	N. 5°12'	N. 19°16'
⚵	28°...58'	S. 3°16'	N. 8°24'
⚶	20°...27'	N. 8°40'	N. 4°44'
	11°...24'	S. 4°6'	N. 0°27'
♀	1°...45'	S. 13°30'	S. 1°14'
☿	13°...13'	S.7°15'	S. 2°10'
☾	6°...38'	S.8°52'	N. 5°10'
☉	19°...52'	N.5°11'	N. 0°0'1"

[The right ascension of the maridian was 60° 37' 4" are. 29° 29" 47" of Leo was ascending.

Medical Hall Press, Benares.]

श्रीभारतेन्दुकविवर्यवणिग्वरस्य
विद्वज्जनैकशरणस्य महोदयस्य।
जन्मेष्टकालवशतो हरिचन्द्रनाम्नः
पत्री मया विरचितेह सुधाकरेण।

इसी वर्ष में अर्थात सन 1850 में मई के आरम्भ ही में रवि मङ्गल के क्षेत्र में और मङ्गल रवि के क्षेत्र में है इस कारण से मई मास के आरम्भ ही में काशी में पीपा छूटा था क्योंकि दोनों अग्निप्रकृति हो परस्पर दूसरे के स्थान से अग्नि का उपद्रव आरम्भ किए। इस प्रकार आऽकील साहअ के मतानुसार बहुत से फलों का ज्ञान हो सकता है निरयण और सायन दोनों के सम्बन्ध से।

शुभम्

वृद्धों को कारिका है कि दिनमान का आठ विभाग कर दिनपति से गणना करने से जो विभाग शनि का आवै वह गुलिक और बुध के विभाग का नाम अर्द्धप्रहरक इत्यादि पांच उपग्रह बनाये हैं बाकी विभागों को त्याज्य कर दिया है। रात्रि के समय में राशि का आठ विभाग कर दिनपति के पांचवां ग्रह जो हो वहां से पूर्वोक्त गणना कर गुलिकादि जानना।

पूर्व्वयुक्त से यदि जन्म समय में गुलिकादि ले आवो तो नीचे लिखे हुए के तुल्य होते हैं।

सायन गुलिकादि	निरयण गुलिकादि
1 राशि 14 अं 27 क 46 वि=गु=	0 रा 22 अं 57 क 46 वि
2 रा 8 अं 35 क 15 वि=काल=	1 रा 17 अं 5 क 15 वि
3 रा 19 अं 12 क 50 वि=मृत्यु=	2 रा 27 अं 42 क 50 वि
4 रा 8 अं 16 क 33 वि=अर्धप्रहरक=	3 रा 16 अं 46 क 33 वि
रा 4 27 अं 14 क 12 वि=यमघंट=	4 रा 5 अं 44 क 12 वि

केरल शास्त्र के मतानुसार पांच और उपग्रह रवि के कारण से उत्पन्न होते हैं। उन्हें कमलासन नाम के ऋषि इस प्रकार से लिखते हैं। रवि में 4 राशि 17 अंश के जोड़ने से धूम होता है, धूम को बारह राशि में घटा देने से पात होता है, पात

में छः राशि जोड़ने से परिवेष, परिवेष को बारह राशि में घटा देने से इन्द्रधनु और इन्द्रधनु में 17 अंश जोड़ देने से केतु होता है।

ऊर्ध्व लिखित प्रकार से यदि जन्म समय में इन का मान निकालो तो नीचे लिखे हुए के तुल्य होते हैं—

सायन धूमादि	**निरयण धूमादि**
9 रा 29 अं 51 क 47 वि=धूम=	9 रा 8 अं 21 क 47 वि
2 रा॰ 0 अं 8 क 13 वि=पात=	2 रा 21 अं 38 क 13 वि
8 रा 0 अं 8 क 13 वि=परिवेष=	8 रा 21 अं 38 क 13 वि
3 रा 29 अं 51 क 47 वि=इन्द्रधनु=	3 रा 8 अं 21 क 47 वि
4 रा 16 अं 51 क 47 वि=केतु=	3 रा 25 अं 21 क 47 वि

सन 1851 ई. से यूरोप देश के ज्यौतिषी लोग नेपच्यून नामक ग्रह को भी अपने पञ्चांग में लिखने लगे परन्तु फलित के माननेवाले फलादेश में इस नये ग्रह को नहीं मानते क्यौंकि बारहो राशि में एक फेरा इस का लगभग 164 बरस में होता है तो कहीं 164 बरस के अनन्तर तब इस का कुछ कुछ स्वभाव जान पड़ैगा।

जन्म समय में सायनमान से नेपच्यून मीन राशि में या और निरयण मान से कुम्भ राशि में।

इस नये ग्रह का चिह्न यूरोप के ज्यौतिषियों ने (ı) ऐसा कल्पना किया है।

वेस्टा और जूनों का स्वभाव प्रायः गुरु के सदृश है और सीरीज़ और पलाश का प्रायः शनि के सदृश।

सायन मिश्रित कुंडली

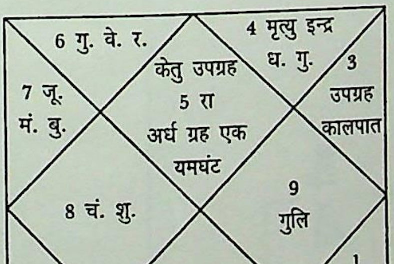

निरयण मिश्रित कुंडली

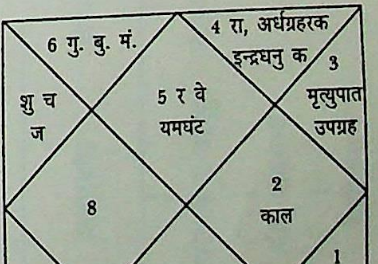

महोपग्रहोपितमेतत्मग्रं
मयाकारि विहज्जनानन्ददातृ।
चमत्कारयुक्तं बुधैनन्निरीक्ष्य
करोतु श्रमं मे फलौधेन पूर्णम्॥

पं. सुधाकरेण्

[सायन गणना से जन्मकुंडली बनाना कठिन काम है। कहा जाता है कि श्री रामचन्द्र आदि की जन्मकुंडलियां इसी गणना से बनाई गई थीं। पं. सुधाकर द्विवेदी ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की कुंडली उसी रीति से बनाई थी। साथ ही साथ उन्होंने पाश्चात्य रीति से भी हरिश्चन्द्र की कुंडली बनाई थी। यहां पर दोनों कुंडलियां दी गई हैं।]

वंश वृक्ष

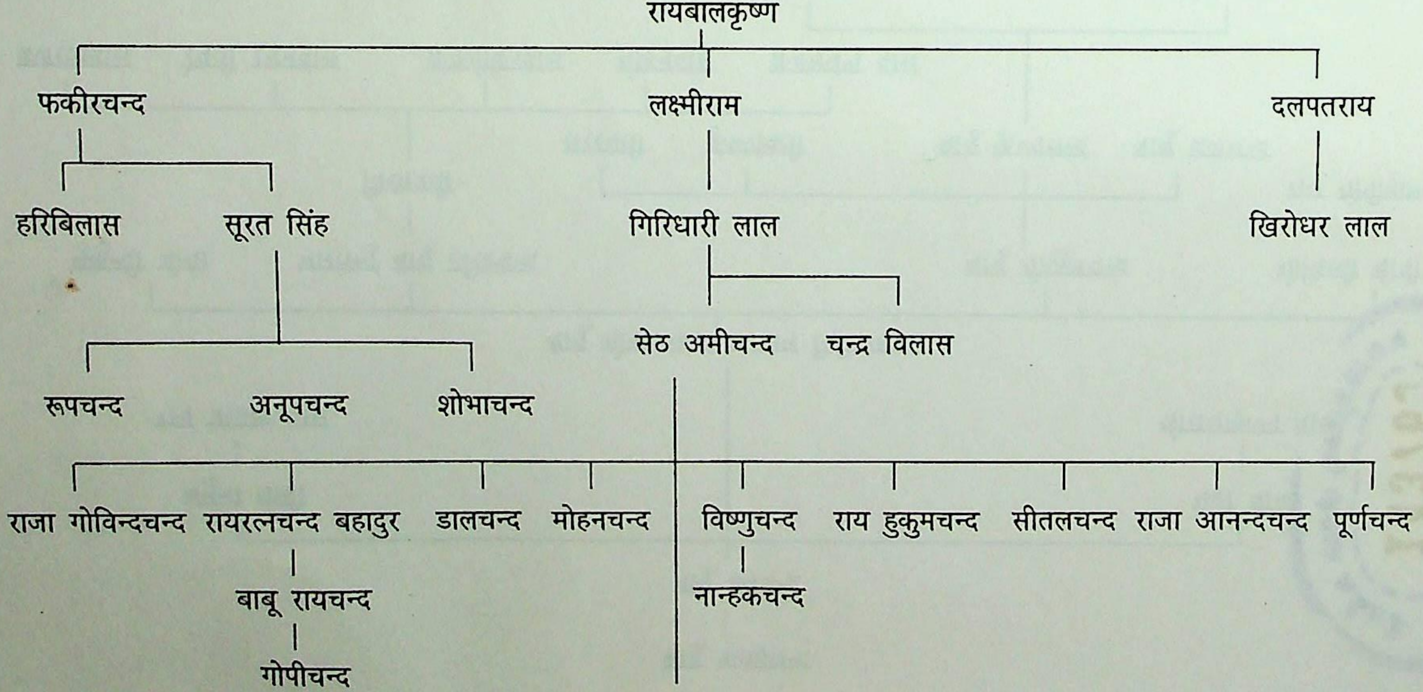

रायबालकृष्ण
फकीरचन्द
लक्ष्मीराम
दलपतराय
हरिबिलास
सूरत सिंह
गिरिधारी लाल
खिरोधर लाल
सेठ अमीचन्द
चन्द्र विलास
रूपचन्द
अनूपचन्द
शोभाचन्द
राजा गोविन्दचन्द
रायरत्नचन्द बहादुर
डालचन्द
मोहनचन्द
विष्णुचन्द
राय हुकुमचन्द
सीतलचन्द
राजा आनन्दचन्द
पूर्णचन्द
बाबू रायचन्द
गोपीचन्द
नान्हकचन्द

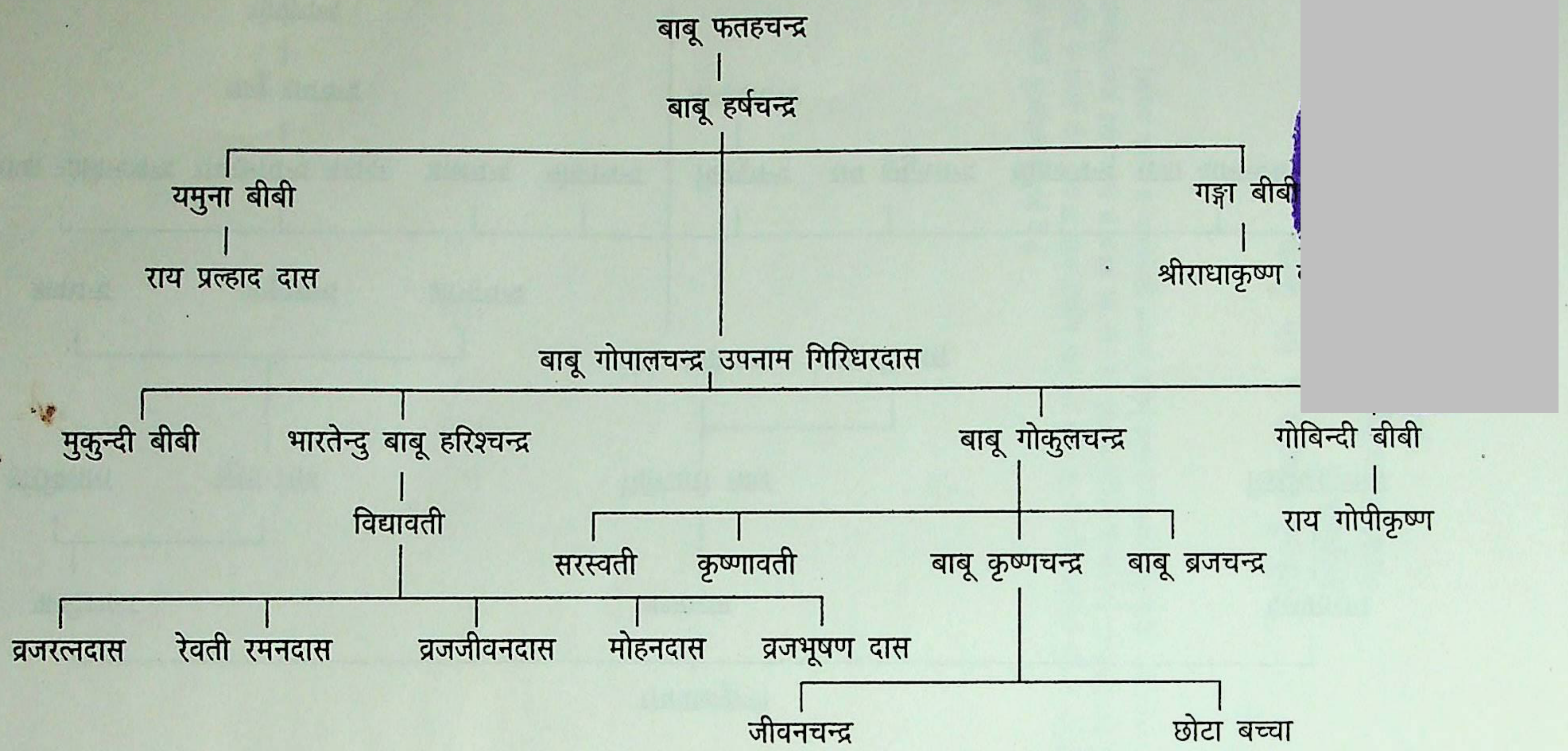
बाबू फतहचन्द्र
बाबू हर्षचन्द्र
यमुना बीबी
राय प्रल्हाद दास
गङ्गा बीबी
श्रीराधाकृष्ण
बाबू गोपालचन्द्र उपनाम गिरिधरदास
मुकुन्दी बीबी
भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र
बाबू गोकुलचन्द्र
गोबिन्दी बीबी
राय गोपीकृष्ण
विद्यावती
सरस्वती
कृष्णावती
बाबू कृष्णचन्द्र
बाबू ब्रजचन्द्र
व्रजरत्नदास
रेवती रमनदास
व्रजजीवनदास
मोहनदास
व्रजभूषण दास
जीवनचन्द्र
छोटा बच्चा

□□□

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

जन्म : सितम्बर 1850 ई., बनारस के एक समृद्ध वैश्य परिवार में।

शिक्षा : घर और क्वींस कालेज बनारस में स्कूली शिक्षा का सिलसिला अचानक टूट गया लेकिन पढ़ने-लिखने का सिलसिला जारी रहा। शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' जैसे मशहूर व्यक्ति से उन्होंने अंगरेजी पढ़ी।

अल्पायु में पिता की मृत्यु और विवाह से पारिवारिक जिम्मेदारियों में इजाफा पर उनके निर्वहन में पूरी तरह असफल।

अद्‍भुत साहित्यिक प्रतिभा के धनी, नाटक, काव्य, निबन्ध, कहानी, यात्रावृत्तान्त, अनुवाद आदि अनेक विधाओं में विविध विषयों पर प्रचुर साहित्य का लेखन।

कविवचन सुधा, बालाबोधिनी, हरिश्चन्द्र मैगजीन, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका आदि पत्रिकाओं के माध्यम से हिन्दी पत्रकारिता का प्रारम्भ और विकास। धर्म और ईश-भक्ति के प्रचारार्थ अनेक तरह के प्रयास।

निधन : 6 जनवरी, सन 1885 ई.

ओमप्रकाश सिंह

जन्म : सन 1958 ई., उ.प्र. में जौनपुर जिले के एक गांव टड़वां में।

शिक्षा : आरम्भिक शिक्षा गांव और आसपास के विद्यालयों में। उच्च शिक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी में। अक्टू. 1988 से नवम्बर 1990 तक एनसीईआरटी में कार्य। दिसम्बर 1990 ई. से ज.ने.वि०, नयी दिल्ली के भारतीय भाषा केन्द्र में अध्यापन और शोध।

रचनाएं : + आदिकाल एवं मध्यकाल के प्रमुख हिन्दी कवि + प्रेमचन्द के कथा साहित्य में हिन्दू-मुसलिम सम्बन्ध + प्रेमचन्दोत्तर कथा साहित्य और साम्प्रदायिक समस्याएं + आधुनिक काव्यधारा : विचार और दृष्टि + चिन्तामणि भाग-4 (सम्पादन)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ग्रन्थावली (आठ भागों में सम्पादन)

प्रकाशन संस्थान

4715/21 दयानंद मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
फोन: 23253234, 65283371, फैक्स: 23287713